भारत में बाइबिल

[प्रथम भाग]

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

गा-पुस्तकमाला का पचहत्तरवाँ पुष्प

भारत में बाइबिल

[प्रथम भाग]

लेखक

संतराम बी० ए०

हिंदू-धर्म ही इबरानी और
ईसाई धर्मों का मूल स्रोत है

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द २)] सं० १९८९ वि० [सादी १॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

निवेदन

प्राचीन भारत के विदेशी भक्तों में फ्रांसीसी विद्वान् श्रीयुक्त जकालियट का स्थान सर्वोच्च है। इस पुण्य आर्य-भूमि की प्राचीन ज्ञान-गरिमा पर जितना मुग्ध आप हुए हैं, उसकी जितनी प्रशंसा मुक्त कंठ से आपने की है, उतनी और किसी भी विदेशी ने नहीं की। जकालियट महाशय की दृष्टि में भारत जगद्गुरु है, जो समस्त संसार को सभ्यता, धर्म और ज्ञान का दान देता रहा है। अपने इसी मत की पुष्टि और स्पष्टीकरण के लिये ही आपने इस पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक का महत्त्व इसी से प्रकट हो जायगा कि ऋषि दयानंद-जैसे मौलिक विचारक ने भी अपनी जगद्विख्यात पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाश में इसका उल्लेख किया है। कहें तो कह सकते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ;
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।

मनु महाराज के इस कथन को प्रमाणित करने के लिये ही यह पुस्तक लिखी गई है।

श्रीयुत जकालियट चंद्रनगर में फ्रेंच चीफ़ जस्टिस अर्थात् प्रधान न्यायाधीश थे। उन्होंने राम शास्त्री नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण से संस्कृत तथा हिंदू-धर्म का अध्ययन किया। उस अध्ययन का फल यह हुआ कि आपने इस पुस्तक के रूप में भारत को श्रद्धांजलि अर्पित की।

आपने यह पुस्तक अपनी मातृ-भाषा फ्रेंच में लिखी थी। इसके छपने के बाद, दूसरे ही वर्ष, इसका अँगरेज़ी में अनुवाद हो

गया। परंतु इस अनुवाद में मूल की बहुत-सी बातें छोड़ दी गईं। उस अनुवाद का एक संस्करण, कुछ वर्ष हुए, प्रयाग के पाणिनि आफ़िस ने भी छापा था। किंतु उसमें और भी अधिक काट-छाँट कर दी गई है। इसलिये श्रीयुत जकालियट की फ़्रेंच पुस्तक के जो भी अँगरेज़ी अनुवाद इस समय मिलते हैं, वे सब अधूरे हैं। उनमें, विशेष कारणों से, अनेक उपयोगी बातें छोड़ दी गई हैं। परंतु बड़े हर्ष की बात है कि मेरा यह हिंदी-अनुवाद सर्वांगपूर्ण है। यह मूल फ़्रेंच पुस्तक से मिलाकर किया गया है। जो बातें अँगरेज़ी अनुवाद में छोड़ दी गई हैं, वे सब इसमें दे दी गई हैं।

मूल फ़्रेंच पुस्तक की एक पुरानी प्रति दैवयोग से मित्रवर पं० भगवद्दत्तजी, बी० ए० को मिल गई थी। मुलतान-गवर्नमेंट कॉलेज के संस्कृत-प्रोफ़ेसर पं० गणपत रायजी एम्० ए० ने मेरे लिये उन छोड़े हुए अंशों का अनुवाद कर दिया। इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पुरानी बस्ती, होशियारपुर
३० कार्त्तिक, १९७६ विक्रमी

संतराम

उपोद्घात

श्रीयुत संतरामजी द्वारा अनुवादित यह पुस्तक हिंदू-जाति के लिये एक विशेष महत्त्व रखती है। मूल-पुस्तक का लेखक, श्रीयुत जकालियट, उस फ्रेंच जाति का एक रत्न था, जो योरप में सचाई और समता आदि उच्च भावों के साथ प्रेम रखने के लिये प्रसिद्ध है। योरप महाद्वीप में केवल एक फ्रेंच ही ऐसे लोग हैं, जो संसार की दूसरी जातियों और उनकी पुराण-कथाओं को भी उसी आदर और सत्कार की दृष्टि से देखते हैं, जिससे कि अपनी जाति तथा अपनी पुराण-कथाओं को। फ्रेंच होने के कारण श्रीयुत जकालियट का हृदय पूर्ण रूप से विशाल और उदार था। वह अपनी जाति के उच्च कोटि के विद्वानों में से थे। इसी कारण वह चंद्रनगर के फ्रेंच उपनिवेश में न्यायाधीश के पद पर सुशोभित थे। उन्होंने हिंदू-जाति के प्राचीन काल को उन्हीं आँखों से देखने का यत्न किया था, जिनसे कि हिंदू लोगों को उसे देखने का स्वभाव है।

आजकल अँगरेज़ी शिक्षा के प्रभाव के कारण हमारे नेत्रों में ऐसी चकाचौंध हो रही है कि हम अपनी जाति के प्राचीन गौरव और महत्ता का अनुभव और सम्मान नहीं कर सकते। हमारे अनेक भाई वर्तमान पश्चिमी शिक्षा के मद से इतने उन्मत्त हो चुके हैं कि अपनी प्राचीन महत्ता की बातें उन्हें कपोल-कल्पित जान पड़ती हैं। इसलिये हमें यह देख आश्चर्य-सा होता है कि किस प्रकार एक विदेशी विद्वान् उन्हीं सब बातों को, जो हमारे लिये स्वप्न-राज्य के समान हैं, सत्य मानता और ज़ोर देकर लिखने पर उद्यत हो जाता है।

हो सकता है कि श्रीयुत जकालियट की कल्पनाओं के साथ हम पूर्ण रूप से सहमत न हों, अथवा हम यह समझें कि वह इन कल्पनाओं पर ऐसे मुग्ध हो गए थे कि इनकी व्याख्या में उन्होंने अत्युक्ति से काम लिया है। परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं हो सकता कि श्रीयुत जकालियट के विचार तथा कल्पनाएँ अपने विषय पर सर्वथा अपूर्व और मौलिक हैं। इनको असत्य कहने का केवल वही व्यक्ति साहस कर सकता है, जो यह समझता हो कि हिंदू-जाति का अतीत काल असभ्य जंगली जातियों का-सा था। यदि एक बार हम यह मान लें कि इस जाति के पूर्वज उस समय सभ्यता अर्थात् तत्त्वज्ञान और विद्याओं के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके थे, जब योरप की वर्तमान जातियों ने मकान बनाना और वस्त्र पहनना भी न सीखा था, तो श्रीयुत जकालियट की कल्पनाओं के संबंध में हमारा सारा विस्मय दूर हो जायगा। जिस प्रकार वर्तमान जातियों का अंधकार से निकलकर उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो जाना संभव है, उसी प्रकार यह भी संभव है कि यह आर्य-जाति उन्नति के शिखर से गिरकर आज ऐसी दुरवस्था को प्राप्त हो गई हो कि उसे अपना अतीत गौरव झूठ देख पड़े।

श्रीयुत जकालियट के विपक्षी पादरियों की यह धारणा है कि दक्षिण के ब्राह्मणों ने उन पर जादू डालकर उन्हें एक प्रकार के भ्रम-जाल में डाल दिया था। इस बात के स्वीकार करने में तो कोई हानि नहीं कि श्रीयुत जकालियट का ब्राह्मण विद्वानों से बहुत मेल-जोल था। उन्हों-ने आर्य-जाति की प्राचीन उन्नति के संबंध में सारा ज्ञान इनसे ही प्राप्त किया था। यदि इस देश में आकर उनका इन ब्राह्मण विद्वानों से संसर्ग न होता, तो वह बाइबिल और मानव-धर्मशास्त्र की सचाइयों की तुलना न कर सकते, और न इस तुलना से अपने विशेष

परिणाम ही निकाल सकते। हम सब संसार में अपना अनुभव दूसरों की सहायता से सीखते हैं। और, यदि श्रीयुत जकालियट ने ब्राह्मणों के संसर्ग से ज्ञानार्जन किया, तो कोई पाप नहीं किया। श्रीयुत जकालियट की विशेषता इस बात में है कि जहाँ सैकड़ों-सहस्रों योरपियन इस देश में वाणिज्य के लिये आए, और व्यापार या लूट-खसोट से धन इकट्ठा करके अपने घर को लौट गए, वहाँ अकेले श्री० जकालियट में ही ऐसी उच्च आत्मा निवास करती थी, जिसे सांसारिक धन की अपेक्षा संसार के ज्ञान को बढ़ाने की इच्छा अधिक प्रबल थी।

एक बात बड़ी विचित्र है। जिस काल में श्री० जकालियट आर्य-धर्म की प्राचीन पुस्तकों को पढ़कर और ब्राह्मण विद्वानों से आर्य-सभ्यता की सच्चाइयों को सीखकर नवीन कल्पनाएँ स्थापित कर रहे थे, उसी समय के लगभग उत्तर भारत में आर्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंदजी महाराज भी प्राचीन आर्य-धर्म तथा आर्य-सभ्यता का मनन करके उसी प्रकार के परिणामों पर पहुँच रहे थे। ऋषि दयानंद की शिक्षा का सारांश भी इसी कल्पना के अंतर्गत है कि संसार में जितने भी धार्मिक तथा शास्त्रीय सत्य फैले हैं, उन सब-का आदि-मूल यही आर्य-जाति है। इसी जाति ने संसार को धर्म, ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा दी है। स्वामी दयानंद के सिद्धांतों को माननेवाले इस समय सहस्रों-लक्षों हिंदू विद्वान् मौजूद हैं। यदि स्वामी दयानंद अथवा उनके इतने अनुयायी न होते, तो कदाचित् हम श्रीयुत जकालियट की बातों को बच्चों की बातें समझकर ही टाल देते। परंतु जब इन बातों को माननेवाला एक इतना भारी दल है, तो हमारे लिये उनके विचारों का गंभीरता-पूर्वक मनन करना अत्यावश्यक हो जाता है। साथ ही हमें इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि इन विचारों को उपस्थित करनेवाला एक सत्या-नुरागी विदेशी विद्वान् है।

प्रो० जकालियट का बड़ा सिद्धांत, जैसा कि इस पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, यह प्रतीत होता है कि जिसको आज सारा योरप अपनी धर्म-पुस्तक मान रहा है, उसकी सारी शिक्षा मिसर-निवासियों की धार्मिक शिक्षा से और उसके अनुष्ठान मिसरियों के अनुष्ठानों से लिए गए हैं। यह तो सब पर विदित ही है कि प्राचीन काल में यहूदी लोग मिसर में बहुत आया-जाया करते थे, बल्कि एक बार सारी यहूदी जाति को मिसर में जाकर रहना पड़ा था। फिर उनका बड़ा पैग़ंबर मूसा उनको मिसर से निकालकर अपने पुराने देश की ओर ले आया। सारांश यह कि सारी-की-सारी यहूदी सभ्यता मिसर से ली गई थी।

अब श्रीयुत जकालियट का दूसरा पग यह प्रमाणित करना है कि प्राचीन यहूदी धर्म के सारे सिद्धांत आर्यों के प्रसिद्ध धर्मशास्त्र, मनुस्मृति, से लिए गए हैं। श्रीयुत जकालियट ने मनु के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि मानव धर्मशास्त्र ही मिसर की सभ्यता का मूल उद्भव है। इसीलिये वह स्वभावतः इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि बाइबिल का उद्गम-स्थान प्राचीन आर्यावर्त है, और उसकी शिक्षा आर्य-धर्म से निकली है। हाल में बंगाल के विद्वान् श्रीयुत दास ने 'ऋग्वेदिक इंडिया'-नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में बड़ी विद्वत्तापूर्ण युक्तियों और वेदों की भीतरी साक्षियों से यह सिद्ध किया गया है कि बाबल और मिसर की प्राचीन सभ्यता को फैलानेवाली आर्य-जाति की वे शाखाएँ थीं, जो दक्षिण से चलकर उन देशों में पहुँची थीं। 'ऋग्वेदिक इंडिया' को पढ़कर इस बात में संदेह के लिये तनिक भी गुंजाइश नहीं रह जाती कि श्रीयुत जकालियट का सिद्धांत सर्वथा सत्य है। हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार इस विद्वान् ने, आज से पचास से भी अधिक वर्ष पूर्व, उन सचाइयों को देख लिया, जिनको

आज हम बड़े अनुसंधान के पश्चात् मालूम करने में समर्थ हुए हैं।

श्रीयुत जकालियट केवल बाइबिल पर ही अपना अनुसंधान समाप्त नहीं कर देते। उन्होंने यह भी सिद्ध करने का यत्न किया है कि जिस व्यक्ति की आज सारा योरप पूजा करता है, वह क्राइस्ट वास्तव में कृष्ण के सिवा और दूसरा कोई न था। क्राइस्ट के जन्म के संबंध में तथा अन्य ईसाई ऐतिह्य ऐसे हैं कि वे स्पष्ट रूप से कृष्ण के जन्म तथा अन्य भारतीय ऐतिह्यों से लिए हुए जान पड़ते हैं।

यद्यपि इँगलैंड तथा फ़्रांस के अन्य कई विद्वानों ने भी संस्कृत-भाषा तथा संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया है, और उनका प्रथम भाव संस्कृत के गौरव तथा आर्य-सभ्यता के पक्ष में ही देख पड़ता है, परंतु उन पर उनके स्वदेशी ईसाई पादरियों का प्रभाव इतना प्रबल सिद्ध हुआ कि वे अपनी अनुभव की हुई सचाई को स्वीकार करते हुए भी डरते हैं, और जिस धर्म के वायु-मंडल में उनका जन्म-दिन से पालन-पोषण हुआ है, जिसे उनके समाज ने ग्रहण किया है, उसे उच्च प्रकट करने के निमित्त वे इस सचाई के सामने प्रकट रूप से सिर नहीं झुका सकते। अध्यापक मैक्समूलर-जैसा संस्कृत का विद्वान् सब कुछ देखता और जानता हुआ भी पादरियों से इतना डरता है कि वह बाइबिल को ही सबसे उत्तम और पवित्र पुस्तक कहता है। हमें श्रीयुत जकालियट ही एक ऐसे व्यक्ति देख पड़ते हैं, जिनके मन में न अपने देश के धर्म का पक्षपात है और न अपने समाज का ही कोई भय, और जो मुक्त कंठ से एक सचाई को स्वीकार कर अपने देश-बंधुओं पर उसका प्रकाश करने का साहस करते हैं। इसलिये मैं अपने हिंदू भाइयों से यह अपील करना आवश्यक समझता हूँ कि वे इस अद्भुत पुस्तक

को न केवल आप पढ़ें, वरन् अपने मित्रों में भी इसका प्रचार करें।

मैं समझता हूँ, श्रीयुत संतरामजी ने इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करके हिंदू जनता का बड़ा उपकार किया है।

भाई परमानंद

ग्रंथकार की भूमिका

जातियों के ह्रास का धार्मिक स्वेच्छाचारिता, आडंबर कल्पना-मूलक प्रपंच और मनुष्यों की किसी विशेष श्रेणी के शासन का फल सिद्ध किया जा सकता है।

स्पेन देश अभी मोमबत्तियों और पवित्र जल के विरुद्ध क्रांति कर रहा है। हमें अपने निर्णय को स्थगित कर देना चाहिए।

इटली ने अभी अपनी एकता के संघटन को पूर्ण नहीं किया।

रोम एक बड़ी सभा में आधुनिक बुद्धि की विजय, विचार की स्वतंत्रता, मन की स्वाधीनता और नागरिक स्वातंत्र्य इत्यादि सबको धमकाने की तैयारी कर रहा है।

समाज-बहिष्कार अपनी निःसत्व गर्जनाओं को पुनर्जीवित करने और सम्राटों, राजों और प्रजाओं को झुकाकर अपने वश में करने का प्रयत्न कर रहा है।

अँगरेज़ लाट पादरी लूथर के नाम पर सिद्धांत की एकता के लिये चेष्टा कर रहे हैं, ताकि वे शक्तिशाली बन जायँ, और वे कोलेंज़ो* के बहिष्कार की घोषणा करते हैं।

इँगलैंड आयरलैंड के आर्तनाद को दबा रहा है।

उमर के अनुयायी अल्ला के नाम पर उन सुधारों का विरोध और बहिष्कार कर रहे हैं, जिनसे रूम देश की रक्षा हो सकती है।

पोलैंड का अस्तित्व मिट चुका है, मस्कोवाईट (Muscovite) तलवार ने मरणासन्न कोसकियस्को के भविष्यकथन का अनुभव कर लिया है।

* Eveque de Natal, qui a nis la divinite du Christ.

रूस का ज़ार पोप है ।

फिर भी मंदिर, मसजिद, या गिरजा में चले जाइए, सब कहीं परमेश्वर के छत्र के नीचे घोर असहिष्णु उपद्रव और कष्ट रक्खा हुआ है ।

यह मध्यकालीन धर्मोन्माद नहीं है, क्योंकि अंध-श्रद्धा का प्राणांत हो चुका है । यह दंभ है, जो शस्त्र-प्राप्ति के लिये भूतकाल के शस्त्रागारों की तलाश कर रहा है, ताकि उनसे प्रजा भयभीत होकर एक बार फिर अंधकार और भोलेपन की धूल में घुटनों के बल रेंगने लगे ।

हाँ, परंतु स्वतंत्रता वह तरुण और सुदृढ पेड़ है, जिसकी जितनी अधिक काँट-छाँट होगी, उतनी ही अधिक वृद्धि ।

एक-मात्र फ़्रांस में ही समता का नियम है । इसका प्राणभूत रस बलशाली है । इसलिये इसे विना किसी राज्य-क्रांति और विना किसी अमर्यादा के स्वतंत्र संस्थाओं की शांतिपूर्ण विजय तक पहुँचने दो ।

बल का अटल परिणाम विभाग (Division) और त्रास (Dread) है । यहाँ तक कि स्वयं स्वतंत्रता से भी डर उत्पन्न करके उन्नति को रोकना होता है ।

परंतु, उन सब लोकप्रवादों के बीच, जो उन्नति को पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक घेरे हुए हैं, वह किसी कारण कभी-कभी संकोच करती प्रतीत होती है ? उसकी गति को कौन रोकता है ? उसे किसका डर है ?

क्या तरुण संतान, (क्या नवीन फ़्रांस) उस भूतकाल की निस्सत्त्वता का शपथ-पूर्वक परित्याग करने को प्रस्तुत नहीं है, जिसे वह पुनः प्राप्त नहीं कर सकती, और क्या वह उस आगे बढ़नेवाली पताका का वीरता से अनुसरण करने को उद्यत नहीं है, जिसके द्वारा भीतर स्वतंत्रता और बाहर सम्मान की प्राप्ति होगी ?

तब आगे बढ़े चलो !

पुरोहितों और धर्म-आंदोलकों का समय बीत चुका । हम याजक-सत्ताकराज्यों की शक्ति का मूल्य जानते हैं, और हमें यह भी ज्ञात है कि आज की सफलता के नियमों का, उन्हें विरोधी समझकर, किस प्रकार सुगमता से परित्याग कर दिया जाता है ।

अब हम उन्हें न्यायाध्यक्ष के आसन पर नहीं बैठावेंगे ।

अब हम मार्ग-क्रम में हैं । इसलिये आओ, भक्ति और धीरता से प्रगति को सहायता दें ।

पुनर्जीवित होनेवाले क्रोधों और उन सब धार्मिक कलहों के बीच, जो योरप को खंड-खंड कर रहे हैं, मैं आपके सामने एक ऐसी मनुष्य-जाति का जीवन रखने आया हूँ, जिसकी नीति, साहित्य और आचरण अभी तक हमारी सभ्यता में व्याप्त है, और जिसके पाँव पर उसके पुरोहितों ने कुल्हाड़ा चलाया था । मैं तुम्हें यह दिखलाने आया हूँ कि मनुष्य-समाज के चिंताशील तत्त्वज्ञान और स्वतंत्र बुद्धि के उच्चतम प्रदेशों तक पहुँच जाने के उपरांत किस प्रकार उस धर्म-वेदी ने उसका गला घोंट दिया, और उसके पाँव में ज़ंजीर डाल दी, जिसने मानसिक जीवन को निकालकर उसका स्थान कल्पनाकारी दुर्बलता के अर्द्ध-पाशविक भाव को दिया ।

सभा की बैठक होनेवाली है, स्वतंत्रता के सभी शत्रु महान् विवाद के लिये तैयारी कर रहे हैं, और मैं यह दिखलाने के लिये उठता हूँ कि उनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है, और उनका पवित्र ईश्वरीय ज्ञान कहाँ से लिया गया है । और, मैं फ़्रांस की सरकार से कहता हूँ—

हिंदुओं के पौराणिक धर्म के पुरोहितों से सावधान ! वे भी प्रारंभ में दरिद्र और आत्मत्यागी थे; परंतु अंत में धनाढ्य और स्वेच्छाचारी बन गए ।

प्राचीन ब्राह्मणों के विषय में कैथोलिक पादरी डूबाइस की सम्मति सुनिए। हम उस पर पक्षपात का संदेह नहीं कर सकते—

"न्याय, मनुष्यता, उत्तम श्रद्धा, अनुकंपा, निरपेक्षता इत्यादि सारे सद्गुणों से वे सुपरिचित थे। वे अपने आचरण और कथन द्वारा उनकी शिक्षा दूसरों को देते थे। इसीलिये हिंदू, कम-से-कम चिंता की रीति से नीति के प्रायः उन्हीं सिद्धांतों को अंगीकार करते हैं, जिनको स्वयं हम करते हैं।"*

इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये कृष्ण के दिव्य नियमों (व्यवस्थाओं) को अपना सहायक बनाकर लोगों को वश में कर लिया और जब राजों ने—जिन्होंने उनकी सफलता में उन्हें सहायता दी थी—उनके अधिकार को दूर करने की चेष्टा की, तो पुरोहितवर्ग ने उन्हें और भी गिराकर दास बना दिया। भूतकाल की यह कैसी भयानक शिक्षा है। इससे भविष्यत् को लाभ उठाना चाहिए!

भारतवर्ष संसार का जन्म-स्थान है; यहीं से हम सबकी साझे की माता ने अपनी संतान को दूरतम पश्चिम तक भेजकर, हमारे उत्पत्ति-स्थान के अक्षय प्रमाण के रूप में, अपनी भाषा, अपनी नीति, अपने सदाचार, अपने साहित्य और अपने धर्म का उत्तराधिकार हमको दिया है।

उसकी संतान फ़ारस, अरब और मिसर से गुज़रकर अपनी सूर्य-तप्त जन्म-भूमि से बहुत दूर, शीतल और बादलों से घिरे हुए उत्तर में भी पहुँची। चाहे उसके चमड़े की रंगत भूरी रहे या पश्चिम के हिम के स्पर्श से गोरी हो जाय, उसके द्वारा प्रतिष्ठित सभ्यताओं के समृद्ध राज्य चाहे नष्ट हो जायँ, और खुदे हुए खंभों के कुछ थोड़े-से खँडहरों के अतिरिक्त उनका कोई भी चिह्न शेष न रह जाय,

* "Moeurs des Indes," par l' Abbe Dubois, t. ii.

पहली जातियों की भस्म से चाहे नवीन जातियाँ उत्पन्न हो जायँ, पुराने नगरों के स्थान पर चाहे नए नगर बसने लगें, परंतु काल और विनाश, दोनों मिलकर भी जन्म-स्थान के सदा सुपाठ्य मुद्रा-लेखों को मिटाने में असमर्थ हैं।

विज्ञान अब इस बात को एक प्रमाणित सत्य के रूप में स्वीकार करता है कि प्राचीन समय की सारी भाषा-पद्धतियाँ सुदूर पूर्व से ली गई थीं, और भारतीय भाषाओं के तत्त्वज्ञानियों को धन्यवाद है कि उनके परिश्रम से हमारी आधुनिक भाषाओं को अपनी व्युत्पत्ति और धातु वहाँ मिल गए हैं।

यह अभी कल की बात है कि स्वर्गीय बर्नोफ़ ने अपनी श्रेणी का ध्यान इस बात की ओर दिलाया था कि "संस्कृत का अध्ययन आरंभ कर देने के कारण अब हम ग्रीक और लैटिन भाषाओं को पहले की अपेक्षा अधिक उत्तम रीति से समझने लगे हैं।"

क्या अब हम जर्मन और स्लेवोनिक भाषाओं का भी वही उत्पत्ति-स्थान नहीं मानते ?

मिसरी, इबरानी, यूनानी और रोमन व्यवस्था को मनु ने प्रोत्साहित किया था, और उसका प्रभाव अभी तक हमारी योरप की नीति की सारी युक्ति में व्याप्त है।

कयिन ने किसी स्थान पर कहा है—"भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास संसार के दर्शन-शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास है।"

परंतु केवल इतना ही नहीं।

स्वदेश-त्यागी जातियाँ अपनी नीति, अपने आचार, अपने प्रचार और अपनी भाषा के साथ-साथ अपना धर्म—अपने उस घर के देवतों की पवित्र स्मृति, जिसको उन्हें फिर कभी नहीं देखना था—उन गृह-देवतों का धर्म भी लाईं, जिनको उन्होंने सदा के लिये स्वदेश-त्याग के पहले जला दिया था।

इसलिये, मूल स्थान को लौटकर, हम प्राचीन और अर्वाचीन जातियों के सारे कविता और धर्म-संबंधी इतिहास को भारत में पाते हैं। ज़र्दुश्त की पूजा, मिसर के चिह्न, इल्युसिस के रहस्य और वस्ता की देवियाँ, बाइबिल का उत्पत्ति-कांड और भविष्यद्वाणियाँ, सामियन-युग का सदाचार, बैतलहम के तत्त्वदर्शी की श्रेष्ठ शिक्षा, सब वहाँ मिलते हैं।

इस पुस्तक का उद्देश उन सब सचाइयों को सुपरिचित कराना है, जो अब तक विचार के उच्चतर प्रदेशों को आंदोलित करती रही हैं, जिनका निस्संदेह अनेक लोगों ने अनुभव किया है ; परंतु उनको संसार के सामने विघोषित करने का, प्रकट करने का, साहस नहीं किया।

यह उस धर्म-संबंधी ईश्वरीय ज्ञान का इतिहास है, जो अविद्या के आख्यानों और सब समयों के पुरोहित-धर्मों से यथासंभव मुक्त है। और सब जातियों तक पहुँचा है।

मैं भली भाँति जानता हूँ कि मेरी इन बातों से कुछ लोग रुष्ट हो जायँगे, परंतु मैं उनका सामना करने से नहीं डरता। माईकेल सर्वे-टस, सबनरोला, और स्पेन के दूसरे फिलिप के समयों की तरह अब हमें खूँटे के साथ बाँधकर जीते जी नहीं जलाया जाता; अब स्वतं-त्रता के वायुमंडल में स्वतंत्र विचार खुले तौर पर विघोषित किया जा सकता है। इसलिये मैं अपनी पुस्तक को पाठकों की भेंट करता हूँ।

भारत में बाइबिल

भारत के शब्द

प्राचीन भरत-भूमि, मनुष्य-जाति के जन्म-स्थान, तेरी जय हो! पूजनीय और समर्थ धात्री, जिसको नृशंस आक्रमणों की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो!

श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृ-भूमि, तेरी जय हो! क्या कभी ऐसा दिन भी आवेगा, जब हम अपने पाश्चात्य देशों में तेरे अतीत काल की-सी उन्नति देखेंगे!

तेरी उच्च प्रकृति की भाषा समझने के उद्देश से मैंने तेरे गूढ़ वनों में वास किया है, और बर्गद तथा इमली के पत्तों में सरसरानेवाली साँझ की पवन ने मेरे कानों में ये तीन मायामय शब्द कहे हैं—ज़ीउस, जहोवा और ब्रह्म।

प्राचीन देवालयों और मंदिरों की ड्योढियों के नीचे मैंने ब्राह्मणों और पुरोहितों से पूछताछ की है। उन्होंने उत्तर दिया है—

"जीना विचार करने के लिये है, विचारना परमेश्वर का अध्ययन करना है, जो कि सब कुछ है, और सबमें है।"

मैंने पंडितों और ज्ञानियों के उपदेशों को ध्यान-पूर्वक सुना है; उन्होंने कहा है—

"जीवन ज्ञान-प्राप्ति के लिये है, और ज्ञान-प्राप्ति दिव्य शक्ति की असंख्य अभिव्यक्तियों की, उनके इंद्रिय-ग्राह्य सारे रूपों में, जाँच और पहचान करना है।"

मैं दार्शनिकों के पास गया हूँ। उनसे जाकर मैंने कहा है—

"छः सहस्र से अधिक वर्षों से यहाँ बैठे हुए आप लोग क्या कर रहे हैं ? यह कौन-सी पुस्तक है, जिसे आप सदा घुटनों पर रक्खे मूर्खता करते रहते हैं ?"

उन्होंने मुसकिराते हुए कहा है—

"जीवन उपयोगी और न्यायपरायण बनने के लिये है, और इस वेद-ग्रंथ के अध्ययन से, जो सनातन ज्ञान का भांडार है--हमारे पूर्वजों पर ईश्वर द्वारा प्रकाशित महासूत्र है, हम उपयोगी और न्यायपरायण बनना सीखते हैं।"

मैंने कवियों के गान सुने हैं, और प्रेम, सौंदर्य, सुगंध तथा पुष्पों ने भी मुझे अपना दिव्य उपदेश दिया है।

मैंने साधुओं को काँटों और धधकते हुए कोयलों की शय्या पर लेटे हुए, दुःख में भी मुसकिराते, देखा है। कष्ट उन्हें परमात्मा का स्मरण कराता था।

मैं गंगा के स्रोतों तक गया हूँ, जहाँ सहस्रों हिंदू, सूर्योदय होने पर, पवित्र नदी के तट पर, पूजा करते हैं और मंद-मंद चलनेवाली पवन ने मुझे ये शब्द सुनाए हैं—

"खेत धान के साथ हरे हैं, और नारियल का पेड़ अपने फल के बोझ से झुक रहा है। आओ, हम इनको देनेवाले दाता को धन्यवाद दें।"

और, फिर इस अगाध श्रद्धा, इन जीवित विश्वासों के होते तथा ब्राह्मणों, ज्ञानियों, तत्त्वदर्शियों और कवियों के इन श्रेष्ठ उपदेशों के रहने, निर्धन वृद्धा हिंदू माता, मैंने तेरे पुत्रों को पाशविक विकारों से क्षीण, दुर्बल और धर्म-भ्रष्ट हुआ भी देखा है। मैंने उन्हें तेरे रुधिर, तेरी संपत्ति, तेरी कुमारी पुत्रियों, और तेरी स्वतंत्रता को विना किसी शिकायत के मुट्ठी-भर अत्याचारी व्यापारियों के हाथ सौंपते भी देखा है।

कितनी बार मैंने सायंकाल की वायु मे निकलते हुए दुःख के गंभीर आर्तनाद को सुना है, जो मरुस्थली, दलदलों, अँधेरे मार्गों, नदी के किनारों अथवा जंगल की छाया इत्यादि मे उठता प्रतीत होता था ! क्या यह अतीत काल का नाद था, जो विलुप्त सभ्यता और विनष्ट ऐश्वर्य पर अश्रुपात करने आया था ? क्या यह उन मरते हुए सिपाहियों की करुण रोदन-ध्वनि थी, जिनको विद्रोह के पश्चात बच्चों और स्त्रियों सहित कुछ लालकुरती के अँगरेज़ सैनिकों ने अपने सताए जाने का बदला लेने के लिये गोली से मार डाला था ? क्या यह उन शिशुओं का चीत्कार था, जो भूख मे मरी हुई माताओं की ठंडी छातियों में वृथा दूध ढूँढ रहे थे ?

हाय ! मेरे भाग्य में कैसी भीषण वेदनाओं का देखना लिखा था ! एक जाति उस कठोर हाथ के नीचे उदासीनता से हँस रही है, जो उसका नाश कर रहा है, और अपने हाथ से अपनी प्राचीन कीर्ति, अपनी स्मृति और अपनी स्वतंत्रता की चिता सहर्ष तैयार कर रही है।

मैं मन-ही-मन सोचता हूँ कि कौन-सा अमंगल प्रभाव इस छिन्न-भिन्न होने का कारण हुआ है ? क्या यह केवल समय का ही कार्य है, और क्या, मनुष्य की तरह, जातियों के भाग्य में भी जरा-जीर्ण होकर मर जाना बदा है ?

क्या कारण है कि पवित्र आदिम सिद्धांतों को, वेदों के उच्च उपदेशों को, अंत में ऐसी विफलता हुई ? फिर भी, अब तक मैंने ब्राह्मणों, ज्ञानियों, दार्शनिकों और कवियों को आत्मा की अमरता पर, बड़े-बड़े सामाजिक सद्गुणों पर, और देवत्व पर गंभीर संभाषण करते सुना है !

अभी तक मैंने प्रजा को उसके सामने सिर नवाते देखा है, जिसने उसे बादलों से मुक्त सूर्य और उपजाऊ भूमि दी।

परंतु अंत को मैंने बड़े खेद के साथ अनुभव किया कि यह केवल एक ख़ाली दिखावा था। मैंने बड़े शोक के साथ देखा कि इस जाति ने अपने श्रेष्ठ विश्वासों के बदले में शाब्दिक धर्मोन्माद, स्वाधीन मनुष्यों की स्वतंत्र इच्छा और विचार-स्वातंत्र्य के बदले में क्रीत दास की अंध और निर्बोध पराधीनता ख़रीद ली है।

तब मैंने भूतकाल को छिपानेवाले परदे को उस पर से उठा देने और इस मरती हुई जाति के उत्पत्ति-स्थान का पिछला पता लगाने की चेष्टा की। इस जाति में न घृणा की शक्ति है और न प्रेम की ही, न पुण्य के लिये उत्साह है और न पाप के लिये ही। यह एक ऐसे नट का रूप धारण किए हुए है, जिसके भाग्य में मूर्तियों के सामने अपना खेल दिखाना बदा है।

अहा! वह कैसा सुंदर काल था, जो उस समय मेरी चिंता और ज्ञान के सम्मुख उपस्थित हुआ! मैंने मंदिर के कोने में इतिहास को बुलवाया; खँडहरों और स्तूपों से पूछताछ की, उन वेदों से प्रश्न किया, जिनके पृष्ठ सहस्रों वर्षों के हैं, और जिनसे जिज्ञासु युवक उस समय से भी बहुत काल पहले जीवन की विद्या प्राप्त करते थे, जब सहस्र द्वारोंवाले थेबस या महान् बेबीलोन की नींव रक्खी गई थी।

मैंने उन प्राचीन कविताओं की आवृत्तियों को सुना, जो ब्रह्मा के चरणों में उस समय गाई गई थीं, जब उत्तरीय मिसर और यहूदिया के गड़रियों का जन्म भी न हुआ था। मैंने मनु की उस स्मृति को समझने की चेष्टा की, जो सिनाई-पर्वत के शिखर से बिजली और कड़क के बीच, इबरानी नीति की पट्टिकाओं के उतरने से अनेक युग पहले, देव-मंदिरों की ड्योढ़ियों के नीचे आरंभ की गई थी।

तब भारत मेरे सामने अपनी अपूर्वता की सारी सजीव शक्ति में प्रकट हुआ। संसार में मुझे उसकी उन्नति का पता उसके संस्कार के विस्तार में लगा। मैंने उसे अपनी नीति, अपनी रीति, अपना

सदाचार और अपना धर्म मिस्र, फ़ारस, यूनान और रोम को देते देखा। मैंने जैमिनि और वेदव्यास को सुक़रात और अफ़लातूँ का पूर्ववर्ती पाया, और कुमारी देवांगनी (देवकी) के पुत्र कृष्ण को बैतलहम की कुमारी के पुत्र का अग्रगामी देखा।

तर्क के राजत्व में महत्ता का यह विशेष काल था।

तब मैंने ह्रास के चरण-चिह्नों का अनुसरण किया। मुझे जान पड़ा कि उस जाति का अब बुढ़ापा आ पहुँचा है, जिसने संसार को शिक्षा दी थी, उस पर अपने सदाचार और सिद्धांत की ऐसी अमिट छाप लगाई थी, जिसको कि काल अभी तक नहीं मिटा सका, जिसने बैबीलोन और ननवाह को, एथेंस और रोम को सर्वथा विलुप्त कर दिया है।

मैंने उन ब्राह्मणों और पुरोहितों को देखा, जो वाणी और पवित्र धार्मिक क्रियाओं द्वारा राजा लोगों की मूढ़ स्वेच्छाचारिता को याजकीय सहायता दे रहे थे, और अपने मूल तत्त्व को भूलकर, उस भ्रष्ट ईश्वर-कर्तृक शासन (पुरोहितशाही) के नीचे भारत का गला घोट रहे थे, जिसने कि पिछली महिमा की स्मृति के रूप में—जो इसका दूषण थी—शीघ्र ही उस स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया, जो इस पुरोहितशाही को पराजित कर डालती।

तब मैंने स्पष्ट देखा कि ये लोग धार्मिक पराधीनता के दो सहस्र वर्षों के उपरांत, अपने विनाशकों को मार हटाने और बदला लेने में क्यों असमर्थ हैं, अँगरेज़ व्यापारियों के घृणित प्रभुत्व के सामने निश्चेष्ट होकर क्यों झुक रहे हैं, और दिन-रात मस्तक को झुकाए उस परमेश्वर की आराधना करते हैं, जिसके नाम से पुरोहितों ने उनका नाश किया था।

चंद्रनगर,
२५ फ़रवरी, सन् १८६८ ई०) ग्रंथकार

पहला अध्याय

अपनी भाषा, अपनी रीति, अपनी नीति और अपने ऐतिहासिक व्यक्तियों के द्वारा संसार को सभ्य बनानेवाला भारत

स्वदेशी सभ्यता और इतिहास के अभिमान और अतिशय पूर्व-संस्कारों से ठसाठस भरा हुआ कोई योरपियन जब पहलेपहल भारत-भूमि पर पैर रखता है, तो उसके मन में यह पूर्ण प्रतीति होती है कि मैं अपने देश से एक ऐसी नीति लाया हूँ, जो अत्यंत श्रेष्ठ है, एक ऐसा तत्त्वज्ञान लाया हूँ, जो अत्यंत युक्तिसंगत है, और एक ऐसा धर्म लाया हूँ, जो अत्यंत पवित्र है। तब वह ईसाई पादरियों के व्यर्थ प्रयत्नों को देखकर, जो कुछ नीच जाति के ईसाई बनाए हुए लोगों को बड़ी कठिनता से एकत्र करते हैं, अपनी अर्द्ध-पाशविक धर्मोन्माद-जनित अवज्ञा को प्रकट करता है। इसके बाद कुछ ऐसे अनुष्ठानों को, जिनको वह समझ नहीं सकता, कुछ ऐसी विकट मूर्तियों को, जिनके दर्शन से उसे कंधे सिकोड़ने पड़ते हैं, और सिमन स्टाईलाइट्स-जैसे कुछ ऐसे फ़क़ीरों को, जिनका आत्मपीड़न और यष्टि-प्रहार उसके हृदय में घृणा उत्पन्न कर देता है, देखने के उपरांत वह स्वदेश को लौट जाता है।

यदि कोई अभागा भक्त विष्णु या शिव के मंदिर की पैड़ियों पर से बड़ी कठिनता से उठकर भिक्षा की याचना करता है, तो वह योरपियन भिक्षावृत्ति के विरुद्ध हमारे दंड-विधान की धाराओं को मुँह में ही बड़-बड़ाता हुआ शायद उस पर करुणा की दृष्टि डालता है; परंतु रोमनगर में चाहे उसी ने अधिक भाग्यवान् पश्चिम के फ़क़ीर—जोसफ़ लबरे—के काँपते हुए हाथों पर कुछ 'अबोली' (रोम का एक सिक्का) धर दिए हों।

ऐसे यात्रियों में से बहुत थोड़े ही लोगों ने भारत को समझने की चेष्टा की है, बहुत थोड़ों ने ही उसके अतीत ऐश्वर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक परिश्रम स्वीकार किया है। बल्कि कुछ ऊपरी बातों को देखकर उन्होंने उसकी प्राचीन समृद्धि को स्वीकार करने से ही इनकार कर दिया है, और अपनी दोषदर्शिता में अयुक्तिसंगत विश्वास रहने के कारण वे स्वयं अज्ञान के सहज शिकार बन गए हैं।

जैक्यूमांट (Jacquemont) पूछता है- "संस्कृत से क्या लाभ है?" वह अपनी वाचालता पर गर्व करता हुआ एक आचार-सिद्ध पूर्व (conventional East) बनाने लगता है, जिसकी इसके उत्तराधिकारियों ने नक़ल की है, जिसको सब पुस्तकालयों ने ग्रहण किया है, और जो आज भी उन सब भूलों का स्रोत है, जो उस देश के विषय में योरप की ज्ञानराशि का तीन-चौथाई भाग बनाती है।

फिर भी कितनी ही छिपी हुई संपत्ति अभी बाहर निकालने को पडी है—साहित्य और इतिहास के, सदाचार और तत्त्वज्ञान के कैसे-कैसे ख़ज़ाने संसार के सामने प्रकट करने को पड़े हैं!

स्ट्रेंज, कोलब्रुक, विलियम जोन्स, वेबर, लासन और बर्नौफ़ के परिश्रम ने इन सब वस्तुओं पर अवश्य कुछ प्रकाश डाला है। हमें आशा रखनी चाहिए कि इनके पीछे पूर्वीय विद्याओं के और कई पंडित उत्पन्न होंगे; वे एक ऐसे युग के पुनर्निर्माण में सफलता प्राप्त करेंगे, जिसकी टक्कर की कोई भी चीज़ हमारी सभ्यता और ऐश्वर्य में नहीं है, और जिसने संसार को विधिरचना, सदाचार, तत्त्वज्ञान और धर्म के सभी बड़े-बड़े नियमों की शिक्षा दी थी।

यह दुःख का विषय है कि इस रहस्यमय देश में बिना रहे, इस-की रीति-नीति और संस्कृत का (जो इसके युवाकाल की भाषा है) तथा तामिल का (जो इसकी सजीव विद्वत्तापूर्ण भाषा और भूतकाल

के साथ हमारे संलाप का एक-मात्र मार्ग है) गहरा ज्ञान प्राप्त किए बिना इसके बाल्यकाल का पता चलाना असंभव है।

अनुवादकों और पूर्वीय विद्याओं के पंडितों के गंभीर ज्ञान की जहाँ एक ओर मैं प्रशंसा करता हूँ, वहाँ साथ ही मेरा उनसे यह उलाहना है कि भारत में न रहने के कारण वे कवियों के गीतों, प्रार्थनाओं और अनुष्ठानों के सांकेतिक आशय को समझने और उसे यथार्थ रीति से प्रकट करने में असमर्थ हैं, जिससे वे बहुधा क्या अनुवाद में और क्या सारासार को पहचानने में भारी भूलें कर देते हैं। प्रसिद्ध अँगरेज़ विलियम जोन्स और कोलब्रूक के लेखों को छोड़कर मैंने और किसी के लेख ऐसे नहीं देखे, जिनको ब्राह्मण लोग अपने ग्रंथों का यथार्थ अर्थ स्वीकार करते हों, और इसका कारण वे इन विद्वानों का उनमें रहना, उनसे सहायता पाना और उनकी शिक्षा से लाभ उठाना समझते हैं। वास्तव में हिंदुओं के समान अस्पष्ट और गूढ़ार्थ-लेखक शायद ही कोई दूसरा होगा। उनके विचारों को कविता की शोभा, आलंकारिक रूपक और धार्मिक प्रार्थनाओं के वायुमंडल से अलग करने की आवश्यकता है; क्योंकि ये निश्चय ही वर्णित विषय को स्पष्ट करने में सहायता नहीं देते। फिर प्रत्येक प्रकार की कल्पना अथवा विचार के लिये संस्कृत में भिन्न-भिन्न प्रकार के असंख्य शब्द हैं, जिनका हमारी आधुनिक भाषाओं में कोई भी पर्याय नहीं मिलता, और जिनका अनुवाद केवल बड़े घूम-घुमाव के साथ ही हो सकता है, जिसके लिये उस आभ्यंतर ज्ञान की आवश्यकता है, जिसकी प्राप्ति उन लोगों के देश, आचार, रीति, नीति और धार्मिक ऐतिह्यों से हो सकती है, जिनकी उत्पत्ति का हम अध्ययन और जिनके ग्रंथों का हम अनुवाद करते हैं।

प्राचीन भारत की थाह लेने में योरप में प्राप्त किया हुआ सारा ज्ञान कुछ भी काम नहीं देता। जिस प्रकार बच्चा पढ़ना सीखता है,

उसी प्रकार फिर से अध्ययन करना आवश्यक है। उदासीन उद्यम से कुछ भी फल नहीं प्राप्त हो सकता।

अंत में देखोगे कि उस श्रम का कैसा मनोहर दृश्य हमारे नेत्रों के सामने आ उपस्थित होता है, और हमारे लंबे समय के उद्योग का कितना यथेष्ट फल हमें मिलता है!

भारत में दिलचस्पी लेनेवाले लेखको और विद्वानो, भारत में आकर हिंदुओं के साथ उनके घनी छायावाले गृहों में रहो; आओ, और उनकी प्राचीन भाषा को सीखो; उनके अनुष्ठानों में, उनके गीतों में, उनकी प्रार्थनाओं में उनके साथ सम्मिलित होओ; धर्म-पंडितो, ब्रह्मा और उसकी पूजा का अध्ययन करो; पंडित और ब्राह्मण तुम्हें वेद और मनु के धर्म-शास्त्र की शिक्षा देंगे; अतिप्राचीन साहित्य के खँडहरों में आनंद लूटो, अतिपुरातन युगों के दान इन वर्तमान भवनों की परीक्षा करो, जो अपनी लाक्षणिक वास्तुविद्या में, उस ह्रास के बीच, जिसको कोई रोक नहीं सकता (क्योंकि यह अदृष्ट का, दयाहीन दैव का नियम है), एक विनष्ट समृद्धि के स्मारक खड़े हैं। इस प्रकार उनकी दीक्षा प्राप्त कर लेने पर भारत-भूमि तुम्हें मनुष्य-जाति की जननी, हमारे सभी रीतियों का जन्म-स्थान, दिखाई देगी।

प्राचीन भारत इतिहास, सदाचार, कविता, दर्शन-शास्त्र, धर्म, विविध विद्याओं और चिकित्सा पर इतने ग्रंथ छोड़ गया है कि उनके पाठ-मात्र के लिये ही अनेक पीढ़ियों का जीवन कठिनता से पर्याप्त होगा; क्रमशः प्रत्येक अपना-अपना साहाय्य देगा; क्योंकि विज्ञान में भी पर्वतों को हिला देने की श्रद्धा है, और जिनमें यह रूह फूँकता है, उन्हें बड़े-से-बड़े त्याग करने में समर्थ बना देता है।

वंग-देश में एक सभा ने वेदों को एकत्र और प्रकाशित करने का कार्य हाथ में लिया है। उनके अध्ययन और मनन से हमें पता लग जायगा कि मूसा और पैग़ंबरों ने अपने पवित्र धर्म-शास्त्र कहाँ

से लिए थे, और जिस 'राजों की पुस्तक' (बाइबिल के एक अंश) को वे खो गई बतलाते हैं (परंतु जो मेरी राय में उनके पास कभी थी ही नहीं, और जिसे वे ऐतिह्य-मात्र में अपनी बाइबिल के लिये नक़ल नहीं कर सके), उसी पुस्तक को शायद हम ढूँढ लेंगे।

लोग कहेंगे कि तुमने यह पहली ही पुस्तक लिखी है, और इसी में विचित्र प्रतिज्ञाएँ भरी पड़ी हैं। धैर्य रखिए, और देखिए। इसमें आपके सामने वे प्रमाण उपस्थित किए जायँगे, जो एक दूसरे को पुष्ट और प्रबल करनेवाले होंगे। और, इसीलिये हम यह भी उचित समझते हैं कि यहीं पर इस ग्रंथ के प्रधान विचार की घोषणा कर दी जाय। वह यह है—

"जिस प्रकार हमारा अर्वाचीन समाज प्रत्येक पग पर प्राचीन काल को ढकेलता है, जिस प्रकार हमारे कवियों ने होमर और वर्जिल की, सोफ़ोक्लीज़ और युरीपिडीज़ की, प्लौटुस और टरंस की नक़ल की है, जिस प्रकार हमारे दार्शनिकों ने सुक़रात, पीथागोरस, अफ़लातूँ और अरस्तू से प्रत्यादेश प्राप्त किया है, जिस प्रकार हमारे ऐतिहासिक टाईटस लिवियस, सल्लस्ट या टैसीटस को आदर्श मानते हैं, जिस प्रकार हमारे वाग्मी वक्ता डिमास्थनीज़ या सिसरो को अपने लिये नमूना समझते हैं, जिस प्रकार हमारे वैद्य हिपोक्रटीज़ के ग्रंथों का अध्ययन और हमारे धर्म-शास्त्र जस्टिनियन की नक़ल करते हैं, उसी प्रकार स्वयं उस समय प्राचीन काल के सामने भी एक अपेक्षाकृत प्राचीन काल था, जिसका वह अध्ययन और अनुकरण करता था। इससे अधिक सरल और अधिक न्यायसंगत और क्या हो सकता है ? क्या जातियाँ एक दूसरे के पहले और पीछे नहीं होतीं ? क्या एक जाति का बड़े परिश्रम से प्राप्त किया हुआ ज्ञान उसके अपने ही प्रदेश में सीमाबद्ध होकर बंद रहता है, और जिस पीढ़ी ने उसे उत्पन्न किया था, उसी के साथ नष्ट हो जाता है ?

क्या इस प्रस्ताव में कोई असंगति हो सकती है कि छः सहस्र वर्ष के पिछले भारत ने (जोकि उज्ज्वल, सभ्य और जनता से भरा-पुरा था) मिसर, फ़ारस, यहूदिया, यूनान और रोम पर वैसी और उतनी ही अमिट छाप लगाई थी, उतना ही गहरा संस्कार डाला था, जितना कि इन देशों ने हम पर डाला है ?

यही समय है कि हम अपने उन पूर्व-संस्कारों को ठीक करें, जो यह प्रकट करते हैं कि प्राचीन लोगों के उच्चतम दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक विचार श्रमसाधित नहीं, प्रत्युत प्रायः स्वयंसिद्ध थे। हाँ, उन पूर्व-संस्कारों को शुद्ध करने का समय है, जो अपनी अकपट प्रशंसा में विज्ञान, कला-कौशल और साहित्य की प्रत्येक बात को कतिपय महापुरुषों के सहज बोध का और धर्म को ईश्वरीय ज्ञान का फल बताते हैं।

हम चिरकाल से कथन-मात्र प्राचीन काल से भारत को जोडने-वाली बीच की शृंखलाओं को खो बैठे हैं। पर क्या यह इस बात के लिये पर्याप्त युक्ति है कि हम अभी तक भ्रम को पूजते जायँ, और उसके यथासंभव समाधान की तलाश न करें ?

क्या हमने, भूतकाल से सहमत न होकर, परीक्षण द्वारा, तराज़ू और गुठाली से, मध्यकालीन तंत्र-विद्याओं का खंडन नहीं किया ?

आओ, हम विचार-क्षेत्र में भी परीक्षण के उसी नियम पर कार्य करें। दार्शनिको, आओ, हम सहज-ज्ञान को अस्वीकार कर दें ! युक्तिवादियो, आओ, हम ईश्वर-प्रत्यादेश से इनकार कर दें !

जिन लोगों ने प्राचीनता का विशेष रूप से अध्ययन किया है, उन सबसे मैं पूछता हूँ, क्या बीसों बार उनके मन में यह विचार नहीं उत्पन्न हुआ कि इन प्राचीन लोगों ने अपना ज्ञान अवश्य किसी ऐसे स्रोत से प्राप्त किया है, जिसका हमें पता नहीं ? अस्पष्टता के

कारण किसी ऐतिहासिक या दार्शनिक विषय के समझ में न आने पर क्या उन्होंने मन-ही-मन अनेकों बार यह नहीं कहा—"हा ! यदि अलेकज़ेंड्रिया का पुस्तकालय न जलाया जाता, तो शायद हम वहाँ अतीत काल के खोए हुए रहस्य को पा लेते !"

एक बात मुझे सदा आश्चर्य में डालती है। हम जानते हैं कि हमारे विचारकों, हमारे नीतिकारों और हमारे व्यवस्थापकों ने किन ग्रंथों के अध्ययन से अपने को बनाया है। परंतु मिसर के मेनीस, मूसा, मिनोस, सुक़रात, अफ़लातूँ और अरस्तू के अग्रगामी कौन थे ?

कम-से-कम ईसा का अग्रगामी या पथ-प्रदर्शक कौन था ?

क्या यह कह सकते हैं कि इनका अग्रगामी कोई न था ?

मेरा उत्तर यह है कि मेरा तर्क इन लोगों के ज्ञान की स्वयं-सिद्धता- सहज-बोध—को, जिसे कुछ लोग ईश्वरीय प्रत्यादेश बताते हैं, स्वीकार नहीं करता !

मैं इस मार्ग पर अपनी अग्रगति में केवल स्वतंत्र तर्क द्वारा की गई दोषालोचना को ही स्वीकार करता हूँ, जो कम-से-कम मेरी समझ में अंधकाराच्छन्न भूतकाल से दूर ले जाकर अंत में सत्यरूपी लक्ष्य तक पहुँचा देती है।

जातियाँ यदि अपने अग्रगामी लोगों के ज्ञानालोक से सहायता न पावें, तो वे केवल दीर्घ और दुःखदायक शैशव के उपरांत ही कीर्ति-लाभ करती हैं। देखिए, जब तक कुस्तुंतुनिया के पतन से प्राचीन काल का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ था, अर्वाचीन समाज अंधकार में कैसी ठोकरें खा रहा था। स्वदेश-त्यागी हिंदुओं ने भी मिसर, फ़ारस, यहूदिया, यूनान और रोम की यही सेवा की थी, यह मैं सिद्ध करूँगा। निस्संदेह मैं इसकी वैसी पूर्ण व्याख्या करने का वचन नहीं देता, जैसी कि मैं चाहता हूँ ; क्योंकि यह काम एक मनुष्य की शक्ति

से बाहर है। मैं एक ऐसा विचार उपस्थित करता हूँ, जिसे सत्य समझता हूँ। इसकी पुष्टि के लिये कुछ प्रमाण तो मैंने पूर्वीय विद्याओं के पंडितों के ग्रंथों से लिए हैं, और कुछ अपने निर्बल उपायों से प्राप्त किए हैं। दूसरे लोग शायद इस खान को अधिक उत्तम रीति से और अधिक गहरा खोदें। तब तक कुदाल की पहली चोट को देखिए।

मैं यहाँ, सदा के लिये, एक ही बार यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि मेरा उद्देश्य न तो किसी से विवाद करना है, और न किसी को खिझाना। उनके सब विश्वासों का पूर्ण सम्मान करते हुए भी मैं अपने विचार की पूर्ण स्वाधीनता में उनका सर्वथा त्याग कर देने के लिये स्वतंत्र हूँ।

जिन लोगों ने मिसर को अपनी खोज का विषय बनाया है, और जिन्होंने उस देश को मंदिर से लेकर क़ब्र तक खोदकर छान डाला है, वे हमें विश्वास दिलाते हैं कि मिसर ही हमारी सभ्यता का उत्पत्ति-स्थान है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो बहाने से यह कहते हैं कि भारत ने अपने वर्ण, अपनी भाषा और अपनी नीति मिसर से ली है, जब कि इसके विपरीत मिसर में केवल एक शुद्ध भारतीय प्रवृत्ति ही मिलती है। इन लोगों को सब प्रकार का लाभ है। उनको सरकार का प्रोत्साहन और विद्वत्समाजों का आश्रय है। परंतु तनिक धैर्य रखिए; सत्य का प्रकाश स्वयं प्रकट होगा। यदि उदासीन उत्साह रखनेवालों के लिये भारत बहुत दूर है, यदि इसकी गरमी मनुष्य को मार डालती है, यदि इसकी संस्कृत बहुत कठिन है, यदि इसके पास विकृत लिपियुक्त प्रस्तर-खंडों को उठा ले जाने-भर को धन नहीं, तो दूसरी ओर कुछ ऐसे विश्वासी भी हैं, जिनके लिये भारत धर्म है, जो न खाइयाँ खोदते हैं, और न रेत को उलटते हैं; किंतु पुस्तकों को निकालने, उनका अध्ययन तथा जीर्णो-

द्धार करने में निरंतर लगे हुए हैं। ये लोग शीघ्र ही एक स्वतःसिद्ध सत्य के रूप में इस प्रतिज्ञा की प्रतिष्ठा करेंगे कि भारत का अध्ययन करना मनुष्य-समाज के स्रोतों का पता लगाना है।

यूनानी प्रकाश की प्रशंसा से चौंधियाए हुए अन्य लेखक इसे सब कहीं पाते हैं, परंतु असंगत कल्पनाओं के शिकार हो जाते हैं।

फ़िलरेटी चेजलस (Md. Philarete Chasles) ने पूर्व पर लिखी हुई अपनी पुस्तक में इस बात को कि यूनानी प्रभाव प्रायः सारे देश में फैल गया था, और उसने प्राचीन हिंदू-सभ्यता, कला और साहित्य को सजीव किया था, उत्तर-भारत पर सिकंदर के प्रायः पौराणिक आक्रमण का परिणाम मान लिया है। यह बात उतनी ही युक्ति-संगत है, जितना यह मानना कि चार्ल्स मार्टेल के समय के सेरेसन-आक्रमण का रोमन-विजय के पूर्व गॉल-जाति पर कुछ प्रभाव था।

ऐसी सम्मति एक सरल कालगणना-संबंधी असंगति है। भारत का समृद्धि-काल सिकंदर के समय से पहले ही बीत चुका था। सिकंदर के युग में उसका ह्रास हो रहा था ; उसके तत्त्व-ज्ञान, आचार, साहित्य और व्यवस्था के उत्तम-उत्तम ग्रंथों को बने दो सहस्र से अधिक वर्ष हो चुके थे। मैं फिर ललकारकर कहता हूँ, चाहे कोई हो, वह मुझे, भारत में यूनानियों की उपस्थिति प्रकट करने के लिये, उन लोगों की भिन्न-भिन्न भाषा-पद्धतियां, उनकी रीतियों, उनके साहित्य, उनके अनुष्ठानों या उनके धर्म में कोई थोड़ा-सा भी चिह्न या कोई छोटा-से-छोटा एक पद भी दिखलावे।

भारत में सिकंदर की उपस्थिति केवल एक पाशविक—असंलग्न, परिमित और यूनानी ऐतिह्य द्वारा बढ़ाई हुई—घटना है, जिसको हिंदुओं ने अपने इतिहास में स्थान देना भी स्वीकार नहीं किया। मैं उस लेखक पर अनिच्छा से भी चोट नहीं करूँगा, जिसकी योग्यता

की मैं सच्चे हृदय से प्रशंसा करता हूँ। परंतु मैं उसको यह बताने से रुक नहीं सकता कि यह लेखनी के संदेह से उत्पन्न हुआ एक स्वप्न है, एक ऐसा विरोधाभास है, जो वाद-प्रतिवाद के आभास को भी सहन करने में असमर्थ है, और मुझे आश्चर्य है कि डू मेरिल महाशय (M. du Meril)-जैसे प्रसिद्ध प्राच्य भाषाओं के पंडित ने गंभीरता से इसका उत्तर देने का कष्ट उठाया।

प्रमाणाभाव में (जब कि हम हिंदुस्तान के इतिहास में विजित योरप का भी यूनानी में बदला हुआ नाम नहीं पाते) आज यह बात बनाना कि एथेंस ने हिंदू-प्रतिभा को उसी प्रकार प्रोत्साहित किया था, जिस प्रकार उसने योरप की कलाओं में प्राण-प्रतिष्ठा की थी, भारत के इतिहास की उपेक्षा करना है, पिता को पुत्र का शिष्य बताना और वास्तव में संस्कृत को भूल जाना है।

योरपियन जातियों की भारतीय उत्पत्ति और भारत के मातृत्व का अतीव अखंडनीय और अतीव सरल प्रमाण स्वयं संस्कृत ही है।

यहाँ पर मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, उसमें शायद कुछ लोगों को कुछ भी नवीनता न मालूम हो; परंतु उन्हें यह बात न भूल जानी चाहिए कि एक नवीन विचार का प्रतिपादन करने में मैं उन सब आविष्कारों से काम ले रहा हूँ, जो इसकी पुष्टि करते हैं। इसमें मेरा उद्देश्य यह है कि जिन साधारण लोगों के पास ऐसे अध्ययन के लिये न तो साधन ही हैं और न समय, उनको उस असाधारण, आदिम सभ्यता का परिचय और ज्ञान करा दिया जाय, जिसके आगे हम अभी तक बढ़ नहीं पाए हैं।

यदि यूनानी भाषा को वस्तुतः अन्य सब प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं के सदृश (जिसके लिये मैं आगे चलकर अनेक प्रमाण उपस्थित करूँगा) संस्कृत ने बनाया है, तो यह भाषा इन भिन्न-भिन्न देशों में केवल स्वदेश-त्यागी लोगों के एक दूसरे के बाद जाते

रहने से ही पहुँची होगी। इसके विरुद्ध मानना असंगत होगा। और, इतिहास (यद्यपि वह इस विषय पर अभी अंधकार में ही ठोकरें खा रहा है) इस प्रतिज्ञा का विरोध नहीं, बल्कि सहायता ही करता है।

यह मानकर फिर इस परिणाम पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है कि जो लोग ऐसी संस्कृत और परिमार्जित भाषा बोलते थे, उनकी सभ्यता बहुत ऊँची थी, और उन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ अपने साहित्य, अपनी स्मृति और अपने ऐतिहासिक तथा धार्मिक ऐतिह्यों की भी अवश्य रक्षा की होगी ।

यदि भाषा (अपने अनेक विकारों के होने पर भी, और अनेक अन्य भाषाओं को जन्म देने के उपरांत भी) अभी तक—चाहे इसकी प्राथमिक अवस्था न रह गई हो—अर्वाचीन भाषा-पद्धतियों में, और अपने स्रोत के निकटतर होने के कारण, प्राक्कालीन वाक्संप्रदायों में अधिक स्पष्टता से अपने को दिखलाती है, तो हमें न्याय-संगत रीति से यह स्वीकार करना पड़ता है कि ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक और व्यवस्था-संबंधी ऐतिह्य (जो प्राचीन काल में प्रायः वही हैं) अवश्य ही रूपांतरित और दुर्बल होकर हमारे अर्वाचीन समयों तक पहुँचे होंगे ।

मनुष्य के लिये अन्वेषण करने को यह कितना विस्तृत और नवीन क्षेत्र है ! प्राचीन भारतीय सभ्यता की सहायता से आदि-मूल की ओर चढ़ते हुए हम जातियों का, उनके शैशव से उनके युवाकाल तक क़दम-ब-क़दम अनुसरण कर सकते हैं, प्रत्येक जाति के जन्म-स्थान का निरूपण कर सकते हैं, इतिहास के कुहरों को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं, और जिस प्रकार आधुनिक भाषातत्त्ववेत्ता लोग प्रत्येक भाषा को संस्कृत से ली हुई सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक रीति और प्रत्येक ऐतिह्य में हम वह अंश स्थिर कर सकते हैं, जो उसने भारत की रीतियों और ऐतिह्यों से लिया है ।

इसलिये हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वे काल्पनिक, पौराणिक और वीर-युग, जिनको स्वीकार करने से इतिहास गंभीरता-पूर्वक विमुख है, कभी थे ही नहीं।

वे केवल हिंदू-ऐतिह्य हैं, जो उपनिवेश बसानेवाले लोगों के साथ एशिया-माइनर से यूनान में आए थे, और जिनको उनके लेखकों ने जन्म-स्थान की स्मृति के रूप में ग्रहण कर लिया है।

हमें इतिहास को कविता और कल्पना से अलग कर देना चाहिए।

अपने पूर्वजों के देशांतरगमन से अनभिज्ञ होते हुए भी क्या बहुत-सी प्राचीन काल की जातियों में उनकी पूर्वीय उत्पत्ति का विचार न फैला हुआ था? और, क्या स्वयं रोम ने किसी आश्रय के अनुसंधान में समुद्र को पार करनेवाले पराजित ट्रोजन लोगों द्वारा इटली का उपनिवेशन और अपनी प्रतिष्ठा नहीं मानी?

मैं अपनी बात को फिर दुहराता हूँ। विचारशील आत्मा का—जो एक अनुपम सभ्यता की प्रायः किसी विकार के विना स्वतः सिद्ध उत्पत्ति में विश्वास नहीं कर सकती—रहस्य के समाधान के लिये पूर्व-विद्यमान समाज को प्रमाण मानना आवश्यक है।

आप लोग (जो काव्यमय दृष्टिभ्रमों* और ईश्वरीय प्रत्यादेशों से संतुष्ट हैं) चाहे हरक्युलीज़, थीस्युस, जेसन, ओसिरिस, एपिस बैल, जलती हुई झाड़ी, मूसा और इबरानियों की पवित्र उत्पत्ति में विश्वास रक्खें; पर मेरी पूछो, तो मुझे एक अन्य आदर्श का प्रयोजन है, और इसलिये मैं मूर्खता-भरी इन कूट-रचनाओं को अनादर-पूर्वक दूर फेंकता हूँ।

एक ऐसी पुस्तक में, जो इतने विषयों को स्पर्श करती है, और वस्तुतः जिसमें एक ही विचार का अधिक वर्णन है, मैं भाषातत्त्व-

---

* Juventus Mundi, to wit.

संबंधी विस्तृत उपमाओं का उल्लेख नहीं कर सकता ; परंतु यदि आप यूनानी आख्यानों और देवताओं के सभी नामों की उत्पत्ति जानना चाहते हैं, तो प्रमाण-रूप से मैं उन्हें संक्षेप में यहाँ देता हूँ। ये नाम संस्कृत से मिलते-जुलते और उसके रूपांतर जान पड़ते हैं*—

हरक्युलीज़ (Hercules)—संस्कृत में हरकल (काल) युद्ध का देवता है—यह नाम हिंदू-कविता में युद्धों के देवता शिवजी के लिये आया है।

थीसियस (Theseus)—संस्कृत में तः-सह, शिव का साथी (गण)।

ईएकस (Æacus)—यूनानी देवतों में नरक का विचारपति ; संस्कृत में अहिक, कठोर विचारपति, योग्यता का विशेषण, जो साधारणतः यम—हिंदू-मतानुसार नरक का अधिष्ठाता—के नाम के साथ लगाया जाता है।

अरियन (Ariadne)—थीसियस की त्यागी हुई भाग्यहीना राजकुमारी, जिसने अपने को अपने वंश-शत्रु के हाथ सौंप देने का अपराध किया था। संस्कृत में अरिण्या ari-oina—शत्रुओं द्वारा लाई हुई।

र्‌यडेमंथस (Rhadamananthus)—यूनानी देवतों में नरक का एक और विचारपति; संस्कृत में जिसे राधमंत कहते हैं।

एंड्रोमेडा (Andromeda)—नेपच्यून देवता के लिये बलि दिया हुआ, और पर्सियस (Perseus) द्वारा सहायता पानेवाला। सस्कृत में अंभमेध, अंध्रमेध—जलदेवता के क्रोध को शांत करने के लिये बलि दिया हुआ।

पर्सियस—(Perseus)—प्रसाहाय्य।

* इन सब नामो को ठीक-ठीक लिखने मे मुझे मित्रवर पं० चेतरामजी शर्मा से बहुत सहायता मिली है, जिसके लिये मै उनका कृतज्ञ हू।—संतराम

ओर्यस्टस (Orestes)—अपनी विक्षिप्तता के कारण प्रसिद्ध। संस्कृत में अरक्षित—विपद्भाजन।

पॅलेड्यस (Pylades)—ओर्यस्टस का मित्र। संस्कृत में पुलद, अपनी मित्रता से सांत्वना देनेवाला।

इफ़ीजीनिया (Iphigenia) —बलि दी हुई कुमारी। संस्कृत में अफलिनी (अभागिन)—जो बिना संतान के मर गई हो।

कॅंटूर (Centaur)—देवतों में आधा मनुष्य-जैसा और आधा घोड़ा-जैसा। संस्कृत में 'कंतुर' मनुष्य-घोड़ा। ओलिंपियन देवतों का भी यही मूल है।

जूपिटर (Jupiter)—संस्कृत में द्युपितृ, अर्थात् आकाश का पिता, अथवा द्युःपितृ (Zeus-Pitri)। इसी का यूनानियों ने 'Zeus' शब्द और बरानियों ने यहोवा (Jehovah) बनाया है।

पालस (Pallas)—बुद्धि की देवी। संस्कृत में पालसा (Palasa)—बुद्धि-रक्षिका।

अथेनय (Athenaia)—सतीत्व की यूनानी देवी। संस्कृत में अतनय—संतानहीन।

मिनर्वा (Minerva)—रोमन लोगों की सतीत्व की देवी। इसमें यूनानियों की देवी से साहस का गुण अधिक है। संस्कृत में मा-नर-वह (Ma-nara-va)—जो बलवानों को सहायता देती है।

बैलोना (Bellona)—युद्ध की देवी। संस्कृत में बलिनी (Bala-na)—संग्राम-शक्ति।

नेपच्यून (Neptune)—संस्कृत में नपचून Na-pata-na —जो प्रचंड तरंगों पर शासन करता है।

पोसीडन (Poseidon)—नेपच्यून का दूसरा यूनानी नाम। संस्कृत में पस-उद (Pasa-uda)—जलों को शांत करनेवाला।

मार्स (Mars)—युद्ध का देवता। संस्कृत में मृ-मार—जो मारता है।

प्लूटो (Pluto)—नरक का देवता। संस्कृत में प्लुष्ट (Plushta)—जो आग से मारता है।

अब जातियों में से कुछ उदाहरण लीजिए। स्वदेश-त्याग को प्रमाणित करने के लिये नामों की व्युत्पत्ति से बढ़कर और कोई अच्छी रीति नहीं है।

पेलस्गी (The Pelasgi)—संस्कृत में पलसा-ग (Palasa-ga)—जो निर्दय होकर लड़ते हैं।

ल्यलीगस (The Leleges)—संस्कृत में ललग (lala-ga)—जो विभीषिका फैलाते हुए चलते हैं।

इन शब्दों का आशय युवा युद्ध-प्रिय जातियों की रुचि के, और उनके अपने स्वभावों के तुल्य नाम देने के लिये कितना उपयुक्त है।

हेलनूज़ (The Hellenes)—संस्कृत में हेलन (हेला), योद्धा-गण—चंद्रोपासक। क्या यूनान देश अपने को हेलस (Hellas)—नहीं कहता ?

स्पार्टन्ज़ (The Spartans)—संस्कृत में स्पर्द्धिन् (Spardha-ta)—प्रतिस्पर्द्धी।

और ये निम्न-लिखित संस्कृत शब्द यूनान में जाकर प्रसिद्ध पुरुषों के नाम बन गए—

पीथागोरस (Pythagoras)—पीठगुरु—अध्यापक।

अनक्सेगोरस (Anaxagoras)—संस्कृत में अनंगगुरु—कामनाओं का गुरु (Spirit-master)।

प्रोटागोरस—(Protagoras)—प्रतगुरु—निखिल-शास्त्र-निष्णात, गुरु।

यदि हम यूनान से इटली, गॉल, जर्मनी और स्कंडेनेविया में जायँ, तो वहाँ भी हमें यही संस्कृत-मूल मिलते हैं—

इटालियंस (The Italians)—इटालस (Italus) से, जो कि एक ट्रोजन (Trojan) वीर का पुत्र था। संस्कृत में इतल (Itala) (इतर)—नीचजातीय जन।

ब्रेटी (The Bretii)—भरत—शिल्पी लोग।

टाइरेनियंस (The Tyrrhenians)—त्वरिन् (Tyra-na)—शीघ्रगामी।

सॅबिनयस (The Sabines)—सभ्य (Sabha-na) (सभा) युद्ध करनेवाली जाति।

सॅम्नाइट्स (The Samnites)—समूनत (Samnat-ta)—निर्वासित लोग।

कॅल्ट्स (The Celtes)—कल्लत (Kall-ta)—आक्रमणकारी नायक।

गॉल्स (The Gauls)—गलत (Ga-lata)—वे लोग, जो चलते-चलते विजय करते हैं।

बल्ज (Belge)—बलज—बलवानों की संतान।

सिक्केनस (Siquanes)—शक (Saka-na)—उत्तम योद्धा।

सिकंब्रस (The Secambres)—सुकंब्री (Su-kam-bri)—अच्छे भूम्यधिकारी।

स्कंडेनेवियन (The Scandinavians)—स्कंदनव—लड़ाइयों के देवता स्कंद के उपासक।

वोडिन् (Odin)—योधिन्—योद्धाओं का मुखिया।

स्वीड—(Swede)—सुयोध—अच्छे सिपाही।

नार्वे (Norway)—नरवाज—नाविकों अथवा सामुद्रिक लोगों का देश।

बाल्टिक (The Baltic)—बल तक (Bala-ta-ka)—शक्तिशाली विजेताओं का समुद्र ।

अलामनी (The Alamanni)—जर्मन—अल-मनु (Ala-manu)—स्वतंत्र मनुष्य ।

बलक्स (The Valaques)—संस्कृत में बालक—नीचाशय जाति ।

मोल्डवियंस (The Moldavians)—मलधव—नीचतम जाति के लोग ।

आयर्लंड (Ireland)—एरिन (Erin)—खारे पानी से घिरी हुई चट्टानें ।

थेन (Thane)—प्राचीन स्कॉट के मुखिया—थन (Thana)—योद्धाओं का मुखिया ।

एशिया में कैखुसरो (Xerxes) और अर्दशीर (Artaxe-rxes) का सारा वंश हिंदू-मूलक है । नगरों, देशों और दुर्गों के सभी नाम प्रायः शुद्ध संस्कृत हैं । उनके कुछ उदाहरण लीजिए—

म (ma)—एशिया और पूर्व की सभी जातियों का चांद्र देव । संस्कृत में म (ma)—चंद्र ।

अर्टैक्सरक्सयस (Artaxerxes)—अर्थक्षत्रिय (Artha-xatrias—महाराजा) । क्या ग्रीक लोग (यूनानी) उसको इस नाम से नहीं पुकारते थे ?

मेसोपोटेमिया (Mesopotamia)—मध्यपोतम्—नदियों के बीच का देश ।

कस्टबल (Castabala)—दृढ़ स्थान, काष्ठबल—दुर्भेद्य शक्ति ।

ज़ोरोष्टर (Zoroaster)—जिसने एशिया में सूर्य की पूजा चलाई—संस्कृत में सूर्याख्य ।

परंतु इतना ही पर्याप्त न होगा । इस भाषातत्त्व-विषयक प्रश्न का

यथार्थ रीति से वर्णन करने के लिये कई ग्रंथों का प्रयोजन होगा। इसके अतिरिक्त विज्ञान के क्षेत्र में अब पूरा-पूरा अन्वेषण हो चुका है। इसलिये सारी प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं को संस्कृत से निकली सिद्ध कर देना अब कोई नई बात नहीं रही। इनका संबंध इतना स्पष्ट और इतना निश्चित है कि इसमें संदेह की छाया भी नहीं ठहर सकती।

यदि मैंने काल्पनिक और वीर-युगों तथा मुख्य-मुख्य प्राचीन एवं अर्वाचीन जातियों से कुछ नाम चुने हैं, तो केवल इसलिये कि मेरी युक्ति को स्पष्ट करने के लिये वे उदाहरण का काम दें।

वीरों, देवतों, योद्धाओं, दार्शनिकों, देशों या जातियों के इन नामों का, उन भाषाओं में, जिनके कि ये माने जाते हैं, रचना-संबधी कुछ भी अर्थ नहीं है। पर इन्हें निरर्थक, केवल यदृच्छा का फल मानना भी असंगत है। इसलिये इसका सबसे सरल और युक्तिसंगत समाधान यही है कि इनका संबंध संस्कृत से दिखलाया जाय। संस्कृत न केवल इनकी व्याकरण-संबंधी उत्पत्ति को ही बताती है, प्रत्युत इनके लाक्षणिक या वास्तविक, ऐतिहासिक या अलंकारात्मक आशय की भी व्याख्या कर देती है।

इस प्रकार हिंदुओं से उत्पन्न हुई आईओनियन, डोरियन इत्यादि जातियाँ यूनान में बस्ती बसाने के लिये एशिया-माइनर से होकर गुज़रीं। वे अपने जन्म-स्थान की अनुचिंताओं (अर्थात् कविता में सुरक्षित सारे ऐतिह्यों) को अपने साथ लाईं। निस्संदेह इन ऐतिह्यों का रूपांतर हो गया था। परंतु, फिर भी, अब तक उनकी ऐसी विशेष छाप बनी रही है कि यद्यपि इन बातों को हुए अब अनेक युग बीत चुके, जिससे ये बहुत कुछ अस्पष्टता और विस्मृति के परदे में छिप गई हैं, फिर भी आज इनको पुनः प्राप्त कर लेना और इनकी व्याख्या करना असंभव नहीं।

नवीन भूमि में बस्ती बसानेवाले इन लोगों के अभिज्ञान में सबसे प्रधान इनके हिंदू-पूर्वजों के युद्ध-देवता—शिव—के असंख्य विक्रम हैं। वे इस देवता का नाम भूल गए हैं। उत्तरीय एशिया के देवतों में इस देवता के युयुत्सु गुण भी नहीं रहे, केवल उसकी 'हरकाल' उपाधि ही उनके पास रह गई है। यह उपाधि उसे हिंदू-कवि उस समय देते हैं, जब वह युद्ध का अधिष्ठाता होता है।

हरकाल (अर्थात् युद्ध करने में वीर) हरक्युलीज़ बन गया है। नवीन समाज ने उसे उस नाम से ग्रहण किया है, और यूनान—हिंदू कथा के अनुसार—उसे सिंहों, सर्पों, जल-व्यालों, यहाँ तक कि समग्र सेनाओं का विनाशक बनाता चला आया है। केवल ऐतिह्य (परंपरा) ही अपने को जारी रख रहा है।

ज़ीउस, परमेश्वर, अर्थात् हिंदू त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, शिव—का नाम अपरिवर्तित रूप में ज्यों-का-त्यों सुरक्षित है।

शिव का सहचर तः सह (Tha-Saha) थीस्युस बन गया है।

अहिक, राष्ट्रमत, मा-नर वह, अथनय, नपतन, ब.लेनी, पालसा, अंध्रमेध, अरिणया, ईकस, हडेमंथुस, मिनर्वा, एथनइया, नेपच्यून, बेलोना, पैलस, अड्रामेडा, और एरियेन, बन गए हैं।

ब्रह्मा (जो द्युस्-पितृ [Zeus-Pitri] अर्थात् दिव्यदेव भी कहलाता है) जूपीटर बन गया है। यदि यूनानी भाषा में इस शब्द को संयुक्त कर दिया जाय, और इसके अर्थ को लुप्त न होने दिया जाय, तो इस भाषा में संस्कृत के दो शब्द, जिनसे यह बना है, अपने विशुद्ध रूप में मिल जायँगे—अर्थात् द्युम् और पितृ, यूनान में, ज़ीउस और पेटर हैं।

प्रत-गुरु और अनंग गुरु प्रोटागोरस और अनक्सगोरस बन गए हैं। ये नाम विशेष विशेष्य नहीं, परंतु उन मनुष्यों के वर्णनात्मक गुण हैं, जिन्होंने विज्ञान और दर्शन में नाम पाया था। पाइथागोरस—जो पीठगुरु से निकला है—यूनान में पुनर्जन्म के हिंदू सिद्धांत का

प्रचार करके अपने हिंदू-मूलक होने की और भी अच्छी घोषणा करता है।

यही दशा शेष सबकी है। प्राचीन कथा के सभी नामों में अर्थ और उत्पत्ति का वही हिंदू-संपर्क है। इस पुस्तक का प्रधान उद्देश यह नहीं है; अन्यथा सारे नामों का विश्लेषण करना और उनके शब्दों तथा अर्थों की व्युत्पत्ति का निरूपण करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि दूसरे लोग इस खान को मुझसे अधिक गहरा खोदेंगे। विद्वानों के लिये यहाँ खोज का एक विशाल क्षेत्र है। मैं इस विषय में हाथ न लगाता, यदि मैंने युक्तिपूर्वक यह विचार न कर लिया होता कि बाइबिल के प्रत्यादेशों को भारत की उपज सिद्ध करने से यह सिद्ध करना आवश्यक हो जाता है कि भारत से ये प्रत्यादेश अकेले ही नहीं लिए गए थे, प्रत्युत सभी प्राचीन और अर्वाचीन जातियों ने अपनी भाषा, अपने ऐतिहासिक ऐतिह्य (अपना तत्त्व-ज्ञान) और अपनी राज्य-व्यवस्था इसी देश से ली है।

मैंने जो कुछ प्राचीन यूनान के वीरों और उपदेवतों के विषय में कहा है, वह अधिक अर्वाचीन जातियों के नामों पर भी समान रूप से लागू है। इन नामों की मैंने कुछ व्युत्पत्तियाँ भी दी हैं, जैसा कि ग्रेटी, टाइहेनियन, सम्नाईट, केल्ट, गॉल, मीक्रेन, सिकंबर, स्कडीनेवियन, बेल्जियन, नॉर्वेजियन, जर्मन, वेलक, मॉल्डेवियन इत्यादि। इन सब जातियों के वंश और जन्म की एकता तब निर्विवाद हो जाती है, और यह सर्वथा स्पष्ट है कि हिमालय के मूल के साथ-साथ फैले हुए विस्तृत मैदान ही संसार में बसनेवाली दो बड़ी जातियों में से सबसे अधिक बुद्धिमान्—अर्थात् गोरी-जाति का जन्म-स्थान हैं।

इस परिणाम को ग्रहण कर लेने से पुरातत्त्व के उत्पत्ति-स्थान को घेरनेवाले काल्पनिक घेरे का (जिसके कारण इतिहास भित्ति-

हीन अनुमानों का संग्रह बन गया है) समाधान हो जाता है, और अतीत काल की अस्पष्टता को दूर करना संभव हो जाता है।

मेरो की हुई इन तुलनाओं से यह परिणाम निकलता है कि प्राचीन यूनान के सारे वीर, और उनको प्रसिद्ध करनेवाले सभी कर्म कविता और ऐतिह्य द्वारा सुरक्षित और संचरित भारत का अभिज्ञान-मात्र हैं। पीछे से इनका हिंदू-मूल विस्मृत हो गया, इनकी आदिम भाषा का रूपांतर हो गया। यूनान के आदि कवियों ने अपने विशेष इतिहास के मूल से इनका संबंध समझकर इनका नए सिरे से गान और कीर्तन किया है।

यूनानियों का ऑलिंपस हिंदुओं के ऑलिंपस की पुनरुत्पत्ति-मात्र है। जैसन और सुनहली ऊन की आख्यायिका अभी तक भारत-भूमि में सब लोग जानते हैं, और होमर का इलियड (काव्य) रामायण-नामक हिंदू-काव्य के प्रतिशब्द और दुर्बल अभिज्ञान के सिवा और कुछ नहीं है, जिसमें कि राम अपने मित्रों की सेना को साथ लेकर लंका के राजा से अपनी स्त्री—सीता—को छुड़ाने जाता है।

सरदार लोग उसी तरह एक दूसरे का अपमान करते और रथों पर सवार होकर भालों और बर्छियों से युद्ध करते हैं। यह लड़ाई भी उसी तरह देवों और राक्षसों को जुदा-जुदा कर देती है। राक्षस लंका के राजा के साथ और देवता राम के साथ जा मिलते हैं। इस प्रकार, इस विस्तृत काव्य में ब्रिसीस (Bri-eis) के छिन जाने पर अचिलस का केवल कोप ही एक ऐसी बात नहीं, जो रामायण की कथा से मिलता हो। इनका सादृश्य सुव्यक्त, अखंडनीय और विस्तृत है। बूपिस (गो-लोचनी) की उपाधि, जिसका होमर बार-बार जूनो के लिये उपयोग करता है, हिंदुओं में एक बड़ी श्रेष्ठ उपमा समझी जाती है; क्योंकि देवता रूप में पूजित होने के बिना

भी गऊ एक ऐसा पशु है, जिसकी हिंदू-धर्म में विशेष रूप से पूजा होती है। पर यूनानी भाषा में इस उपाधि की कुछ भी व्याख्या नहीं हो सकती।

यह कहने का प्रयोजन नहीं कि होमर के विषय में मेरा मत उन जर्मन विद्वानों से मिलता है, जो इस कवि के ग्रंथों को ऐतिह्य द्वारा सुरक्षित, पेरीक्लीस की अध्यक्षता में संगृहीत और व्यवस्थापित गीतों या असंबद्ध काव्यों की माला समझते हैं। यही एक ऐसा परिणाम है, जो नवीन लोगों—विशेष कर पूर्वीय वर्ग में जन्म लेनेवाले लोगों की प्रकृति के साथ मिलता है।

प्राचीन उपाख्यानों में यह अनुकरण और भी स्पष्ट है। हम विना किसी अत्युक्ति के कह सकते हैं कि ईसप और बबरियास ने फ़ारस, सीरिया और मिसर से होकर उन तक पहुँची हुई हिंदू आख्यायिका की ही नक़ल की है। शेषोक्त लेखक ने, स्वयं यूनानी होने पर भी, अपनी दूसरी कविता के आरंभ में कह दिया है कि इन चातुर्यपूर्ण नीति-कथाओं को, जो रोचक रूप में वारंवार बड़ी ही गंभीर शिक्षा देती हैं, गढ़ने का श्रेय प्राच्यों ही को है—

> Μῦθος μὲν, ω παὶ βασιλέως Ἀλεξάνδρου,
> Σύρων παλαιόν ἐστιν εὕρημα ἀνθρώπον,
> Οἳ πρὶν ποτ᾽ ἦσαν ἐπὶ Νίνου τε καὶ Βήλου.

अर्थात् "हे राजा सिकंदर के पुत्र ! नीति-कथाएँ उन प्राचीन सीरियन लोगों की बनाई हुई हैं, जो पिछले समयों में निनुस और बेलूस के अधीन रहते थे।"

हिंदू पीलपाय (Pilpay), राम स्वामी ऐयर, ईसप, बबरियास और ला फ़ोंटेन (La Fontaine) की कथाओं को खोलकर देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि वे सब एक दूसरे से निकली हैं।

यूनानी और अर्वाचीन उपाख्यान बनानेवालों ने तो इन छोटे-छोटे नाटकों के अभिनय को बदलने का भी कष्ट नहीं किया।

इस प्रकार जितना अधिक हम प्राचीनों का अध्ययन करते हैं, उतना ही, प्रत्येक पग पर, मेरी उपर्युक्त प्रतिज्ञा—अर्थात् प्राचीन काल के सामने भी एक और प्राचीन काल था, जिसने उसको उच्च कोटि की दार्शनिक, साहित्यिक और कौशलपूर्ण सभ्यता के शीघ्र विकाश में प्रोत्साहन और सहायता दी थी, और अब इसने अपनी बारी पर आधुनिक कल्पना-शक्ति को उर्वरा किया है—अधिकाधिक परिस्फुट होती जाती है।

लैंगलोई महाशय (M. Langlois), जिन्होंने हरिवंश का अनुवाद किया है, लिखते हैं—"हमें दूसरों से कितनी अद्भुत बातें सीखनी हैं।"

इस पर भी देशों की सरकारें खुदाई कराने तथा मिसर, फ़ारस और आफ़्रिका को वैज्ञानिक दूत भेजने में अपनी शक्तियाँ नष्ट कर रही हैं, और विद्वान् लोग खंडित स्तंभों और शिला-लेखों पर चतुर-प्रणालियाँ बना रहे हैं! इसमें संदेह नहीं कि इनसे भी कुछ लाभ अवश्य है, और हमने अतीत काल के ज्ञान में बड़ी उन्नति की है; परंतु ज़ंजीर की कड़ियाँ इतनी टूट चुकी हैं कि उसका पुनर्निर्माण नहीं हो सकता। पुस्तकों का अनुवाद और मूल की खोज करने के लिये वे सरकारें उन लोगों को भारत में क्यों नहीं भेजतीं? केवल वहीं सत्य का पता लगेगा।

एथेंस के इस खोजी संप्रदाय को किसलिये उत्पन्न कर रहे हो? इसकी सत्ता का हेतु नहीं, और न यह कोई काम ही दे सकता है। इसकी जगह दक्षिण-भारत के अंतर्गत पांडिचरी या कारीकल में एक संस्कृत-विद्यालय खोलो। यह शीघ्र ही इस विज्ञान को महत्त्व-पूर्ण काम देगा।

संसार ने सभ्यता भारत से ली है, इस कल्पना की पुष्टि में मैं अब हिंदू-धर्म-शास्त्र की मुख्य बातें प्रकट करूँगा। यह धर्म-शास्त्र हमें रोम में ज्यों-का-त्यों मिलता है। रोम ने इसे यूनान और मिसर से लिया था, और इन दोनों देशों ने प्राचीन काल के स्रोतों से उसे प्राप्त किया था।

यह बात स्पष्ट है कि मैं यहाँ केवल संक्षिप्त सूचनाएँ ही दे सकता हूँ; इस विषय के विस्तार-सहित वर्णन के लिये तो यह सारी पुस्तक भी यथेष्ट न होगी।

सारी सामाजिक पद्धतियों में व्यवस्था की सबसे आवश्यक बातें हैं विवाह, पिता-पुत्र-संबंध, पितृ अधिकार, अभिभावकता, दत्तक-विधान, संपत्ति और पणबंध, निक्षेप, ऋण, विक्रय, हिस्सेदारी, दान और मृत्युपत्र (वसीयतनामे) के नियम।

परीक्षा करने पर हम देखेंगे कि ये विभाग हिंदू-धर्म-शास्त्र से रोमन और फ्रेंच धर्म-शास्त्रों में, प्रायः अविकृत रूप में, आ गए हैं, और उनके विशेष विधानों का एक बड़ा अंश अब तक भी प्रचलित है।

इस पर कोई टीका-टिप्पणी या वाद-प्रतिवाद संभव नहीं हो सकता। जहाँ मूल वचन मौजूद हो, वहाँ मत-भेद के लिये कोई स्थान नहीं रह सकता। मनु ने ईसाई सन् से तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले हिंदू-धर्म-शास्त्र को बनाया था। सारे प्राचीन युग ने उसी की नक़ल की है। इन नक़ल करने वालों में रोम प्रसिद्ध है। केवल इसी की लिखित स्मृति—जस्टिनियन की स्मृति—अब मिलती है, और वह सभी अर्वाचीन आइनों का आधार मानी गई है। अच्छा आओ, हम देखें और मिलान करें।

वाग्दान और विवाह

हिंदू-धर्म-शास्त्र के अनुसार, जल और अग्नि-संबंधी अनुष्ठानों के साथ पिता के लड़की को देने और पति के उसे स्वीकार करने से विवाह-संस्कार होता है।

यही रीति रोम में है—Leg. 66, § i. Digest of Justinian Virgini in hortas deductœ..........Die Nuptiarum priusquam ad eum transiret, et priusquam aqua et igne acciperetur, id est nuptiœ celebrarentur..............obtulit decem aureas doro.

अर्थात् वाटिका में सुरक्षित रीति से ले जाई गई कुमारी को...विवाह के दिन, उस (कुमारी) के उस (पुरुष) के पास चली जाने के पहले—और उस (पुरुष) के उसे (कुमारी को) आग और पानी की प्रक्रिया द्वारा ग्रहण कर लेने, अर्थात् विवाह-संस्कार हो चुकने, के पहले—वह दस सोने की मुहरें भेंट करता था।❀

रोमन रीति में हाथों का मिलाना और वधू का मीठी रोटी को खाना (Confarreatio) मनु की व्यवस्थाओं का अनुकरण-मात्र है।

हिंदू-विवाह में दो भिन्न-भिन्न बातें होती हैं—वाग्दान और विवाह-संस्कार। वाग्दान सदा विवाह-संस्कार के कुछ समय पहले होता है।

यही रीति, यही भिन्न-भिन्न काल, रोम में भी प्रचलित हैं। वाग्दान (Sponsalia) शब्द (Leg. 2, tit. i. L. XXiii, of the Digest) वचन देना (a spondendo) शब्द से निकला है; क्योंकि प्राचीन लोगों की यह रीति थी कि वे भावी पत्नी के लिये वाग्दान कर छोड़ते थे।

इसी शीर्षक के नीचे १७वीं धारा कहती है—"यथेष्ट कारण होने पर प्रायः वाग्दान का समय केवल एक या दो ही वर्षों का

❀ इस प्रकरण मे जितने लैटिन वाक्य हैं, उनके अनुवाद के लिये मैं लाहौर के लॉर्ड बिशप महोदय का कृतज्ञ हूँ।—संतराम

नहीं, बल्कि तीन, चार या इससे अधिक वर्षों का भी लंबा हो सकता है।"

हिंदू-धर्म पणबंध (वचन) से जिस अनुमति को आवश्यक बताता है, वही रोम में आवश्यक समझी गई थी—Law 2, clause ii, sponsalia sicut nuptiæ consensu contrahentium flunt, अर्थात् सगाइयाँ, विवाहों के सदृश, वर और वधू की सम्मति से की जाती हैं।

हिंदुओं में कुमारी कन्या युवती होने तक अपने परिवार के साथ रहती है; तब उसका पिता पति को संदेश भेजकर सूचना देता है कि तुम्हारे स्वत्वाधिकार का समय उपस्थित हो रहा है; अब तुम अपनी स्त्री को अपने अधिकार में कर सकते हो।

यही बात रोम में है—In potestate manente filia, pater sponso nuntium remittere potest. (Leg. 10, de Sponsalibus). जब तक लड़की पिता के अधिकार में है, वह वर के पास (सगाई को तोड़ने का ?) संदेश भेज सकता है।

स्त्री को पति के घर ले जाना, रोम की तरह, भारत में विवाह का अंतिम संस्कार था, और यह बड़ी धूम-धाम और बाजे-गाजे के साथ मनाया जाता था।

मानव-धर्म-शास्त्र के अनुसार अपने गोत्र में (पिता के कुल की सात और माता के कुल की पाँच पीढ़ियों में) विवाह करने का निषेध है। कम-से-कम भारत में जो पिता एक मनुष्य से अपनी पुत्री की सगाई करने के उपरांत दूसरे के साथ उसका विवाह कर देता है, वह निंदित समझा जाता है।

अब रोमन नीति (Leg. 13, § I., lib. iii.) सुनिए—Item si alteri sponsalteri nupta sit, ex senten-

tia edicti punitur इसलिये यदि लड़की की सगाई एक पुरुष से और उसका विवाह दूसरे से कर दिया जाता है, तो वह राज-निर्णय के अनुसार दंडित होती है।

केवल इतना ही नहीं। हिंदू-भाव स्त्री और पुरुष के उन निषिद्ध संयोग-संबंधों में भी रोमन नीति पर शासन करता पाया जाता है, जिनको ब्राज़िल के सिवा और सब अर्वाचीन देशों की नीति ने स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। रोम में उपपत्नी-गमन की जिस मर्यादा का प्रचार है, और जिसे वहाँ बुरा नहीं समझा जाता, वह भी एक भारतीय रीति ही है, जिसे रोमन लोगों ने ऐतिह्य के सामने सिर झुकाते हुए ग्रहण कर लिया है। प्राचीन युगों का कठिन और विशुद्ध आचार उच्छृंखल प्रेम का कभी अनुमोदन नहीं करता था।

इन सब मनोरंजक बातों को हम यहाँ केवल स्पर्श ही कर रहे हैं। मानव-जाति के प्राचीन जन्म-स्थान के उन प्रशंसनीय धर्मों के गंभीरतर अन्वेषण से हमें कैसी-कैसी महत्त्वपूर्ण और सूक्ष्म बातें मालूम होंगी!

एक शब्द और कहकर हम विवाह के विषय को समाप्त करते हैं। विवाह-विच्छेद (तलाक़), जिसकी व्यवस्था भारत में धर्म-शास्त्र की रीति से हुई थी, रोम में भी वैसी ही थी। आओ देखें हिंदू-स्मृतिकार किन-किन कारणों से स्त्री को पति से अलग हो जाने की आज्ञा देते हैं—"यदि पति बहिष्कृत, नपुंसक, पतित या कोढ़ी हो जाय, या चिरकाल तक विदेश से न लौटे, तो स्त्री उसका परि-त्याग कर सकती है।"

रोमन नीति भी अपकर्ष, नागरिक मृत्यु, नपुंसकता, छूत के रोग, और अनुपस्थिति के अतिरिक्त विवाह-विच्छेद का और कोई कारण नहीं बताती।

भारत में, रोम के सदृश ही, व्यभिचारिणी स्त्री को उसका स्त्री-धन नहीं मिलता। पति उसे देने के लिये बाध्य नहीं। इस प्रकार नीति के इस महत्त्वपूर्ण भाग में, जो कि समाजों और जातियों की आधार-भित्ति है, हम भारत को शिक्षा देते देखते हैं, जिससे सब जातियों ने लाभ उठाया है। आओ, हम इन तुलनाओं पर विचार करें, जो संक्षिप्त होते हुए भी अभी कुछ कम निश्चित और प्रमाण-सिद्ध नहीं हैं।

पिता-पुत्र का संबंध, पितृ-अधिकार, अभि-भावकता और दत्तक-विधान

यह नियम कि Pater is est quem justœ nuptiœ demonstrant (पिता वह है जो धर्मसम्मत विवाह द्वारा दिखलाया जाता है) जिसे रोमन स्मृति में एक सिद्धांत माना गया है, और जिसे हमारे धर्म-शास्त्र ने ग्रहण करके ३१२ धारा में इस प्रकार प्रकट किया है—"विवाह के समय जो बालक गर्भ में हो, उसका पिता पति होता है", मनु द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

"घर में उत्पन्न होनेवाला बालक स्त्री के पति का है।" हिंदू-धर्म-शास्त्र में चार प्रकार के पुत्र माने गए हैं—औरस, क्षेत्रज, गूढ़ोत्पन्न और कानीन। क्षेत्रज संतान का अपने माता-पिता के दाय में अधिकार तो है ; परंतु किंचित् व्यभिचार या अगम्यागमन से उत्पन्न होनेवाली संतान का भोजनाच्छादन के सिवा और किसी वस्तु पर अधिकार नहीं होता।

ऐसी स्थिति में यह विवाह-संबंधी-त्याग-विधि की इन शब्दों में व्यवस्था करता है—"यदि अवस्थाओं से यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो जाय कि वास्तविक पिता पति के सिवा और कोई है, तो संतान जारज है, और कुल में उसका कोई भी अधिकार नहीं।" अंततः एक बड़ा अद्भुत विधान यह है कि वह नियम पीछे से माता-पिता के विवाह कर लेने पर उस जारज संतान को भी धर्म-संगत स्वीकार कर लेता है।

हम विना किसी भूल के भय के कह सकते हैं कि उपर्युक्त सभी नियम—जिनको रोमन नीति ने ग्रहण किया है—अभी तक

फ्रेंच और बहुत-सी योरपियन जातियों की नीतियों के मूल-तत्त्व हैं। इस निपुण, सरल और व्यावहारिक नीति को हमने पाँच सहस्र वर्षों के उपरांत ग्रहण किया है; क्योंकि इससे उत्तम और कोई नीति नहीं मिली। कौन विचारक, कौन दार्शनिक और कौन स्मृतिशास्त्रज्ञ इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा न करेगा!

जो अवस्था पिता-पुत्र-संबंध की है, वही पैतृक अधिकार की भी; जो नियम भारत में थे, वही रोम में भी।

गिबलिन (Gibelin) कहता है कि कुल का अधिपति अपनी स्त्री, संतान और क्रीत दासों को स्वामित्व के अधिकार से अपने हाथ में रखता था; और उसी अधिकार से आज भी पुत्र की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं हो सकती, जिस पर पिता का अधिकार न हो।

हिंदू-टीकाकार कात्यायन कहता है कि पुत्र की आयु चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, जब तक उसका पिता जीता है, वह कभी स्वाधीन नहीं हो सकता।

अभिभावकता के विषय में सदा वे ही सिद्धांत रहे हैं, जिनको रोमन नीति ने अब स्वीकार किया है। वास्तव में ऐसा प्रतीत होगा कि भारत का अध्ययन करने के स्थान में हम वस्तुतः अर्वाचीन भूमि पर हैं।

हिंदू-धर्म-शास्त्र संप्रदान, संरक्षण और किशोर के शरीर तथा संपत्ति की रक्षा के लिये पहले तो पूर्वजों की, उसके उपरांत पितृ-मातृ-कुल के बंधुओं की, और अंत को कुटुंब-परिषद् और सार्वजनिक अधिकार की मध्यवर्तिता को ही धर्मानुकूल अभिभावकता मानते हैं।

यह भी एक विशेष सादृश्य है कि हिंदू-स्मृतिकार पुरुष के जीते रहते स्त्री को अभिभावक बनाने की अपेक्षा पुरुष को ही अभिभावक बनाना उत्तम मानता है। इससे भी अधिक अद्भुत बात यह है कि यदि माता, विधवा हो जाने पर, विना अपने कुटुंब की अनुमति

के, पुनर्विवाह कर ले, तो फिर वह अपनी संतान की अभिभावक (सरपरस्त) नहीं रह सकती।

हम इस विषय में भारतीय नीति पर किए गए अपने संक्षिप्त वर्णन को, दत्तक-विधान पर एक शब्द कहकर, समाप्त करते हैं। हिंदू-नीति या तो संतानहीन कुल को बालक देने के लिये है या स्वयं दत्तक के प्रति शुभ इच्छा के अभिप्राय से दत्तक लेने की आज्ञा देती है। रोमन नीति के सदृश यहाँ भी दत्तक का संस्कार कुटुंबियों, ब्राह्मणों, कुलपतियों और स्वजाति के मुखियों की उपस्थिति में होना आवश्यक है।

इस रीति को ग्रहण करते हुए फ्रेंच नीति ने इस विधि को असाधारण रूप से प्रामाणिक और गंभीर माना है ; क्योंकि उक्त नीति ने दत्तक के लिये उच्चतर अधिकरण और श्रेष्ठ न्याय-सभा की अनुमति लेना आवश्यक ठहरा दिया है।

एक बार दत्तक बना लेने पर, बालक उस कुल का हिस्सेदार हो जाता है। उसके वही अधिकार हो जाते हैं, जो पीछे से उत्पन्न होनेवाली संतान के होंगे। रोमन और फ्रेंच नीति में भी यही विधान है।

वृद्ध गौतम के विधान पर नंद पंडित ने टीका में लिखा है—

"यदि एक तो उत्तम प्रकृति का दत्तक पुत्र हो, और दूसरा पीछे से उत्पन्न हुआ औरस पुत्र हो, तो वे अपने पिता की संपत्ति को बराबर-बराबर बाँट लें।" एथेंस में दत्तक-विधान का सूत्र यह था—

"मैं इसलिये दत्तक लेता हूँ कि मेरी क़ब्र पर पवित्र संस्कार करने, मेरे वंश को स्थिर रखने और संतति की अटूट श्रृंखला में मेरे नाम को रखकर उसे किसी हद तक अमर बनानेवाला मेरा एक पुत्र हो जाय।"

क्या दत्तक-विधान का यह यूनानी सूत्र हिंदू-स्मृतिकार मनु के निम्नलिखित वचन की पुनरावृत्ति ही नहीं है ? यथा—

"मैं, जो कि पुत्रहीन हूँ, श्राद्ध और क्रिया-कर्म करने तथा अपने नाम को स्थिर रखने के लिये बड़ी उत्कंठा के साथ एक पुत्र को गोद लेता हूँ।"

अंत में हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि सबसे पहले हिंदू-धर्म-शास्त्र ने ही विवाह को एक न टूटनेवाला संबंध ठहराया है। यहाँ तक कि मृत्यु भी इसे नहीं तोड़ सकती; क्योंकि जिन वर्णों में विधवाओं के पुनर्विवाह की आज्ञा है, उनमें भी यह आज्ञा केवल उन्हीं अवस्थाओं में है, जब कि मृतक के संतानहीन मर जाने से उसकी मुक्ति के लिये आवश्यक क्रियाएँ करनेवाले पुत्र का होना ज़रूरी हो जाता है। कारण, हिंदू-धर्म में पुत्र के पावन संस्कार करने से ही पिता स्वर्ग में जा सकता है। इसलिये दूसरा पति एक साधन-मात्र ही होता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र उसका नहीं, किंतु मृतक का होता है, और मृत पुरुष की संपत्ति भी उसी पुत्र को मिलती है।

इसके सिवा प्राचीन काल ने जिस बात की कुछ भी परवा नहीं की, परंतु जिसकी हम जितनी प्रशंसा करें, थोड़ी है, भारत का स्त्री-जाति के प्रति सम्मान का भाव, जो कि प्रायः पूजा की सीमा तक पहुँच गया है। मनु का यह अवतरण (अध्याय ३, श्लोक ५५, इत्यादि) आश्चर्य उत्पन्न किए विना नहीं रहेगा—

"पिता, भाई, पति और देवर को यदि बहुत कल्याण की इच्छा हो, तो उन्हें चाहिए कि स्त्री को सत्कारपूर्वक भूषण आदि से प्रसन्न रक्खें।"

"जिस घर या कुल में स्त्रियाँ शोकातुर होकर दुःख पाती हैं, वह शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जिस घर या कुल में स्त्रियाँ आनंद, उत्साह और प्रसन्नता से भरी रहती हैं, वह सर्वदा बढ़ता रहता है।"

"जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता संतुष्ट रहते हैं। परंतु जब हम उनका सत्कार नहीं करते, तो धर्म की सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।"

"उचित सम्मान न पाने पर जिस घर को स्त्रियाँ शाप देती हैं, उसको विध्वंस इस प्रकार दबाकर नष्ट कर डालता है, मानो किसी गुप्त शक्ति ने उसे जर्जरित कर दिया हो।"

"जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी भली भाँति प्रसन्न रहती है, उसमें ऐश्वर्य और सौभाग्य सदैव निवास करते हैं।"

स्त्री-जाति के प्रति सम्मान के भाव ने भारत में दुःसाहसिक शौर्य का एक ऐसा युग उत्पन्न कर दिया था, जिसमें हम हिंदू काव्यों के वीरों को ऐसे-ऐसे उच्च कर्म करते पाते हैं, जिनके सामने अमाडिस, राउंड टेबल के नाइटों, और मध्यकाल के पलाडिनों के सारे कर्म केवल बालकों के खेल-जैसे प्रतीत होते हैं।

अहा, वह कैसा उज्ज्वल और शांतिमय युग था, जिसको भारत आज बहुत कुछ भूल गया है! यदि यह दोष उन नृशंस और मूढ़ आक्रमणकारियों का नहीं, जो उसकी ललित और उर्वर भूमि के लिये चिरकाल से झगड़ रहे हैं, तो और किसका है?

संपत्ति, पणबंध (ठेका), निक्षेप, ऋण, विक्रय, हिस्सेदारी, दान और इच्छाधीन-रिक्थ प्रदान।

हिंदुओं के संपत्ति-संबंधी नियम उनके व्यक्ति-संबंधी नियमों से कुछ कम प्रशंसनीय नहीं हैं। उनका आधार दृष्टि की विशालता और विवेक की यथार्थता पर है, और क्रम-बद्ध अर्वाचीन विधियाँ उनसे बढ़ नहीं सकी हैं। रोम के इकट्ठे किए हुए वही नियम अभी तक भी, थोड़े-से परिवर्तन के साथ, हमारे ही हैं।

हमारे समयों के स्मृतिशास्त्रज्ञ संपत्ति के मूल के विषय में दो संप्रदायों में बँटे हुए हैं। पहला संप्रदाय संपत्ति का स्वत्व केवल नैसर्गिक नियम पर अवलंबित मानता है, और इसलिये उसे भोग (अधिकार) बना देता है; दूसरा संप्रदाय इसे एक सामाजिक आवश्यकता समझता है, और इसकी व्युत्पत्ति व्यावहारिक व्यवस्था से करता है।

हिंदू-स्मृतिकार यही प्रश्न उठाकर इसका समाधान इस प्रकार करते हैं—

"जहाँ भोग (क़बज़ा) सिद्ध हो जाय, पर किसी प्रकार क़बज़े का स्वत्व प्रकट न हो, वहाँ विक्रय की स्वीकृति नहीं हो सकती। स्वामित्व के लिये क़बज़े का स्वत्व आवश्यक है न कि क़बज़ा।"—

(मनु०, अध्याय ८, श्लोक २००)

यह सिद्धांत होने के कारण भारत में स्वामित्व नीति से निकाला जाता था। यही कल्पना हमारी स्मृतियों के समग्र विन्यास में व्याप्त है।

तब उन वस्तुओं को प्राप्त करने की रीति के विषय में, जिन पर अभी तक किसी का अधिकार नहीं, या जिनका उनके स्वभाव से केवल कोई आकस्मिक स्वामी है, मनु कहता है—"दुरुस्त किया हुआ खेत उस मनुष्य की संपत्ति है, जिसने उसमें से लकड़ी को काटकर साफ़ किया, और मृग उस पहले व्याध का है, जिसने उसे प्राण-घातक घाव लगाया।"

प्रसंग-क्रम में स्वयं संपत्ति के स्वरूप की परीक्षा करते हुए हिंदू-नीति इसको स्थावर और जंगम, दो प्रकारों में बाँटती है। इस भेद को रोमन नीति ने अस्वीकार कर दिया था; परंतु आधुनिक व्यवस्थापकों ने इसे विना किसी परिवर्तन के ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है।

स्थावर संपत्ति फिर दो प्रकार से विभक्त है, अर्थात् एक तो अपने स्वरूप से स्थावर और दूसरी अपने प्रयोजन से स्थावर; तब इन संपत्तियों को रखनेवालों के भोग भी दो तरह के हैं, एक तो वह जो किसी व्यक्ति का नहीं, और दूसरा वह, जो सबका है—अर्थात् सार्वजनिक संपत्ति और स्वकीय संपत्ति। हिंदू-नीति केवल शेषोक्त संपत्ति को ही व्यक्तियों के बीच वाणिज्य-संबंधी व्यवहारों का विषय बतलाती है।

गिबलिन कहता है—"संपत्तियों के स्वरूप, उनके मूल, उनके भोगाधिकार और अंततः स्वामित्व के स्वत्व के अनुसार जितने वर्ग हैं, वे सब योरप में पूर्वीय व्यवस्था के ऐतिह्य हैं"—जिनको हमारी वर्तमान नीति ने, रोमन नीति के सदृश, ग्रहण कर लिया है; यथा परिवार के लिये खाद्य द्रव्य, विक्रय भागों का संस्थापन, पणबंध,—न केवल अपने तत्त्व में, किंतु अपने प्रयोग में भी। वस्तुतः वे सब नियम, जिनको हमारी नागरिक नीति (Civil Law) या दीवानी क़ानून ने रोमन नीति के

जर्मन आचार के साथ विलय से, अर्थात् उन हिंदू-जातियों के द्विगुण ऐतिह्यों के पुनः संयोग से, अत्यंत सरल शब्दों में प्रकट किया है, जो उत्तर और दक्षिण में बसने के लिये एक ओर तो रूस, स्कैंडिनेविया के देशों और जर्मनी से और दूसरी ओर फ़ारस, मिस्र, यूनान और रोम से आई।

भारत में संपत्ति का सारा स्थानांतरकरण, चाहे वह किसी भी अधिकार से किया जाय, चाहे किसी शर्त पर हो, चाहे मुफ़्त में दान के संस्कार से—स्वर्ण और जल के अर्पण से—धान्य और घास के साथ—कुश के तीले के साथ संपादित किया जाता था।

यदि संपत्ति अपर्याप्त मूल्य की प्रमाणित हो तो विक्रेता या दाता, ग्राहक या क्रेता के परितोष को निश्चित करने के लिये उसे स्वर्ण भेंट करता था। दान के चिह्न के रूप में, विवाह की तरह, जल छिड़का जाता था; और स्थानांतरकरण को प्रकट करने के लिये संपत्ति के भाग और उपज के रूप में धान्य और घास (कुश) दिए जाते थे।

इसमें संदेह को कोई स्थान नहीं कि पणबंधों (ठेकों) का यथाविधि अनुष्ठान करने के सभी नाना प्रकार के सूत्र और पानी तथा मिट्टी से, तृण और शाखा से, स्थानांतरकरण (इंतक़ाल) की उत्तरीय रीतियाँ यहीं सीखी गई थीं। इन सभी विषयों पर हम हिंदू-नीति का प्रभाव स्वीकार करने पर विवश हैं।

हिंदू-नीति (क़ानून) के विषय में हम अपने थोड़े-से शेष विचार और भी संक्षेप से कहेंगे; क्योंकि संस्कृत-मूल और हिंदू-धर्म-शास्त्र के व्यापक नियमों के इस संक्षिप्त पाठ से जो परिणाम हम निकालना चाहते हैं, उनकी पुष्टि के लिये हम पहले ही काफ़ी कह चुके हैं।

किंतु पणबंधों, दानों और वसीयतनामों पर कुछ शब्द कहे जायँ, तो शायद पाठकों को बुरे प्रतीत न होंगे। वस्तुतः जीवित व्यक्तियों के

बीच, या मृत्यु के कारण, ठेकों और दानों की भिन्न-भिन्न रीतियाँ एक प्रकार से और भी अधिक आश्चर्यजनक हैं, और रोमन नीति तथा आधुनिक स्मृतिकारों ने सिद्धांत और कार्य में इनकी नक़ल की है।

हिंदू-स्मृतिकार व्यवहारों की योग्यता के लिये पहला आवश्यक नियम उभय पक्ष की समर्थता बताता है।

पतियों के अधीन स्त्रियाँ, बालक, दास और वे लोग, जो निषेधाधीन हों, असमर्थ हैं।

दासों और बालकों के लिये संपूर्ण असामर्थ्य है; स्त्री का संबंधी स्त्री की ओर से उसके पति की आज्ञा से पणबंध कर सकता है। जिस निषेधाधीन व्यक्ति पर केवल अपने शिक्षक के अधिकार में ही रहने का नियम हो, उसकी ओर से भी उसका संबंधी पणबंध कर सकता है।

प्रसंग-क्रम से फ़्रांसीसी नीति के साथ इसकी अनुरूपता को देखिए कि हिंदू-पत्नी, उसके पति का कोई प्रमाण न मिलने पर, न्याय के आधार से अपनी असमर्थता से छुटकारा पा सकती है।

इन असमर्थताओं के अतिरिक्त, जो अवस्था के बदल जाने से—जैसे अप्राप्तवयस्क के प्राप्तवयस्क हो जाने या क्रीतदास के छुटकारा पा जाने से—समाप्त हो सकती हैं, नीति व्यक्तियों की विशेष स्थिति के आधार पर और असमर्थताओं की भी प्रतिष्ठा करती है।—(Digest of Hindoo Laws, Vol, ii, p. 193, and मनु०)।

"मद्यमत्त, मूढ़, विकल-मति (जिसकी मानसिक दशा में कोई घोर विकार उत्पन्न हो गया हो), वह वृद्ध पुरुष, जिसकी निर्बलता का दुरुपयोग किया गया है, और सारे अधिकारहीन व्यक्तियों का किया हुआ पणबंध सर्वथा निरर्थक है।"

मनु और भी कहता है —"जो चीज़ हठ से—ज़ोर से—ली गई हो वह भी व्यर्थ विघोषित की जाती है।"

क्या यह इसके चार-पाँच सहस्र वर्ष पीछे की नेपोलियन-संहिता की व्याख्या न समझी जायगी?

अगले समयों की अशिष्ट रीतियों से, जब कि प्रत्येक प्रश्न बल, और हत्या के द्वारा ही हल किया जाता था, ये सब बातें कितनी दूर हैं और उन लोगों के लिये हमारे अंदर प्रशंसा का कितना भाव उत्पन्न होता है, जो उस काल में—जिसको बाइबिल की कथा जगत् का उत्पत्ति-काल बताती है—असाधारण उच्च सभ्यता प्राप्त कर चुके थे, जैसा कि उनके अतीव सरल और व्यावहारिक नियमों से प्रकट हो रहा है।

हमें भुलावे में न आना चाहिए। जातियों की अवस्था का सर्वोत्तम प्रमाण उनकी लिखित नीति ऐसी है।

अब हम पणबंधों के सूक्ष्मांशों के विचार में नहीं पड़ेंगे; क्योंकि इनके विस्तार और कार्यों को पूर्णरूप से केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जिनका क़ानून के साथ संबंध है। ऐसे पाठकों को मूल-पुस्तकों का पाठ करना चाहिए। हमारे लिये तो इतना ही बता देना यथेष्ट है कि प्रत्यय (गारंटी), वेतन, पण, कर, पट्टा, ऋण के परित्राण का आधार, बंधक-फल-भोगाधिकार-सहित आधि (मोर्टगेज) जो सब-के-सब हिंदूमूल हैं, रोमन और फ़्रांसीसी नीति में क्रमशः समग्र आ गए हैं। इनमें सिवा ऐसे रूपांतरों के, जिनका, धर्म-नीति पर नागरिक नीति (दीवानी क़ानून) के प्राधान्य के कारण, जातियों में उत्पन्न हो जाना आवश्यक है, दूसरा कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।

इससे भी अधिक, यदि हम विस्तार में उतरें, तो देखेंगे कि जिन उत्तरवादों (pleas) को रोमन और फ़्रांसीसी नीतियों ने बद्धताओं (obligations) के उच्छेद के लिये स्वीकार किया है, वे सब हिंदू-स्मृति ने पहले से ही देखे और प्रयुक्त किए थे।

अतएव परिवर्तन, ऋण की विमुक्ति, संपत्ति-दान, निस्तार, निर्दिष्ट अवस्थाओं में देय वस्तु का नाश, स्वामी या अभियोक्ता द्वारा लोप या उच्छेद के लिये कर्म, भारत में स्वीकार किए जाते हैं, और वहाँ वही परिणाम रखते हैं जो कि हमारे यहाँ। इनमें से प्राचीनता का दर्जा किसे दिया जाय? मैं समझता हूँ, इस प्रश्न की कोई आवश्यकता ही नहीं।

उपकल्पन (substitution) की आज्ञा देनेवाले स्मृति-चंद्रिका के मूल-वचन को सुनिए—"उत्तमर्ण, (महाजन) अपने उत्तमर्ण के पास या उसका निस्तार करनेवाले किसी तीसरे व्यक्ति के पास अपने ऋणी का ऋण की निश्चितता (surety) में दिया हुआ पण, उसको प्रतिष्ठित करनेवाले प्रमाणपत्र-सहित, स्थानांतरित कर सकता है; परंतु उसमें इस बात का उल्लेख होना आवश्यक है कि ऋणी स्थानांतरकरण की इन सब अवस्थाओं को स्वीकार करता है।"

उसी पुस्तक से प्रार्थना (टेण्डर) और अर्पण (consignation) के विषय पर यह दूसरा वैधिक वचन है—"ऋणी द्वारा शोधन में दिए हुए उधार को जब उत्तमर्ण लेने से इनकार करे, तो ऋणी को चाहिए कि उसके ऋण, फल, धन, माल या पशुओं को इसके लिये एक तीसरे व्यक्ति के पास न्यस्त कर दे, और इस न्यास के साथ ही ब्याज का लगना बंद हो जायगा।"

"इस व्यवहार से निस्तार हो जाता है।"

तुलना के मनोरंजक कार्य का दिग्दर्शन कराने के लिये जिसमें स्मृति-शास्त्रज्ञ अपने जीवन को लगा सकता है, और इससे भी बढ़कर इस बात को अधिक स्पष्ट रीति से सिद्ध करने के लिये कि रोम के और हमारे क़ानून प्राचीन भारतीय धर्म-शास्त्र की प्रतिलिपि-मात्र हैं, अब हम, गिबलिन के अनुसार, न्यास और सूद पर या विना सूद के ऋण के विषय में तीनों विधि रचनाओं के वचनों को मिलाते हैं।

हिंदू-वचन, कात्यायन—"जो शुभ-इच्छा से उधार दिया गया हो, उसका कोई ब्याज नहीं होता।"

सिविल कोड, उपपद, १८७६—"सहूलियत से दिया हुआ ऋण अवश्य ही मुफ़्त होता है।"

रोमन नीति—"Commodata restunc proprie intelligitur, si nulla mercede accepta vel constituta, restibi utenda data est." कोई वस्तु ठीक तौर पर उधार दी गई तब समझी जाती है, जब वह तुम्हें बिना किराया लिए या ठहराए उपयोग के लिये दे दी जाती है।

हिंदू-वचन, कात्यायन—"यदि कोई वस्तु अपने ही दुर्गुण के कारण नष्ट हो जाय, तो ऋणकारी उसके लिये उत्तरदाता नहीं, जब तक कि उसका कोई दोष न हो।"

सिविल कोड, आर्टिकिल, १८८४—"यदि कोई वस्तु केवल उसी व्यवहार के परिणाम से बिगड़ जाय, जिसके लिये वह उधार माँगी गई है, और उसमें उधार माँगनेवाले का कोई दोष न हो, तो उस बिगाड़ के लिये वह उत्तरदाता नहीं।"

रोमन नीति—Quod vero senectute contigit, vel morbo, vel vi latronum—ereptum est, aut quid simile accidit, dicendum est nihil eorum esse imputandum ei qui commodatum accipit, nisi aliqua culpa interveniat.„"ऐसी वस्तु के विषय में जिसे यथार्थतः काल ने ख़राब कर दिया हो, या जो रोग या लुटेरों के अतिक्रम या ऐसी ही किसी दूसरी घटना से नष्ट हो गई हो, कहा जा सकता है कि इन दैवी घटनाओं में से किसी के लिये भी, जब तक कोई और दूषणीय बात न हो, उधार लेनेवाले मनुष्य को उत्तरदाता न ठहराना चाहिए।

हिंदू-वचन, कात्यायन—"जब किसी नियत समय तक व्यवहार के लिये उधार दी हुई वस्तु को उस अवधि या उस व्यवहार की समाप्ति के पहले ही लौटा देने के लिये कहा जाय, तो उधार लेनेवाले को इसे लौटाने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।"

सिविल कोड, आर्टिकल, १८८८—"उधार देनेवाला उधार दी हुई वस्तु को संबाध अवधि के पहले, या पूर्वसंधि को पूरा न करने की अवस्था में, जब तक वह प्रयोजन न पूरा हो जाय जिसके लिये वह ली गई थी, वापस नहीं ले सकता।"

रोमन नीति—"Adjuvari quippe nos, non decipi beneficio oportet."

"उपकृति से हमें सहायता मिलनी चाहिए न कि हम ठगे जायँ।"

हिंदू-वचन, कात्यायन—"परंतु जहाँ स्वामी के स्वार्थ उधार दी हुई वस्तु के आवश्यक प्रयोजन से पूरे होते हों तो उधार लेनेवाले को संबाध समय से पूर्व भी इसे लौटा देने के लिये बाधित किया जा सकता है।"

सिविल कोड, उपपद १८८९—"इस पर भी यदि उधार लेने-वाले की आवश्यकता के पूरा होने के पहले या उसी अवधि के अंदर अंदर उधार देनेवाले पर उस वस्तु की कोई प्रयोजनीय और अचिंतित आवश्यकता आ पड़े, तो न्यायाधीश, अवस्थाओं के अनुसार, उधार लेनेवाले को उस वस्तु के वापस करने के लिये बाध्य कर सकता है।"

हिंदू-वचन, नारद—"जब कोई मनुष्य, विश्वास से, वापसी की शर्त पर, अपने द्रव्य को दूसरे के सिपुर्द करता है, तो यह निक्षेप-कर्म कहलाता है।"

सिविल कोड, धारा १९१५—"साधारणतः निक्षेप वह कर्म है जिसमें हम दूसरे की संपत्ति को सँभाल कर रखते, और जैसी ली थी उसे वैसा ही लौटा देते हैं।"

रोमन नीति—"Depositum est quod custodiendum alicui datum est 'निक्षेप वह वस्तु है जो किसी को सुरक्षित रखने के लिये दी जाती है।'

हिंदू-वचन, बृहस्पति—"जो न्यासधारी न्यस्त वस्तु को अपनी असावधानता से नष्ट होने देता है, और अपनी संपत्ति की विशेष ध्यान से रक्षा करता है वह उस वस्तु का मूल्य ब्याज-सहित देने के लिये बाधित किया जायगा।"

सिविल कोड धारा १९२७—"न्यासधारी को न्यस्त वस्तुओं की रक्षा उसी सावधानी से करनी होगी जिस प्रकार कि वह अपनी निजी वस्तुओं की करता है।"

रोमन नीति—Nec enim salva fide minorem us quam suis rebus diligentiam Præstabit."

"यदि उसमें निर्दोष विश्वासपात्रता है तो वह उन वस्तुओं की देख भाल में जो "इस प्रकार उसे सौंपी गई हैं अपनी निजी वस्तुओं की अपेक्षा कम सावधानी न दिखलाएगा।"

हिंदू-वचन, याज्ञवल्क्य—"जो वस्तु राजा, विधि, या चोरों द्वारा नष्ट हो गई हो उसे न्यासधारी वापस नहीं देगा। परंतु यदि यह क्षति उस समय के उपरांत हुई हो जब कि माँगने पर भी उसने उस वस्तु को वापस देने से इनकार किया हो तो उसे न्यास का मूल्य और उतना ही जुर्माना देना होगा।"

सिविल कोड, धारा १९२९—"न्यासधारी ने जब तक न्यास को वापस करने में विलंब न किया हो तो वह किसी अवस्था में भी उच्चतर शक्ति की दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदाता नहीं हो सकता।"

रोमन नीति—Si depositum quoque, eo die depositi actum sit periculo ejus, apud quem depositum fuerit, est si judicii accipiendi tempore

potuit,. di reddere reus, nec reddi dit." "यदि न्यास के दिन ही निक्षेप किया जाय तो यह उस मनुष्य के उत्तरदायित्व में है जिसके पास यह रक्खा गया है, यदि कार्य को हाथ में लेते समय प्रतिवादी इसे वापस कर सकता था और उसने इसे वापस नहीं किया।"

हिंदू-वचन, याज्ञवल्क्य—"यदि न्यासधारी स्वामी की अनुमति के विना न्यास का उपभोग करे तो वह दंडनीय होगा और उसे न्यस्त वस्तुओं का मूल्य ब्याज-सहित देना पड़ेगा।"

सिविल कोड, धारा १९३०—"न्यासकर्ता की स्फुट या सम्मत आज्ञा के विना वह न्यस्त पदार्थ का उपयोग नहीं कर सकता।"

रोमन नीति—"Qin rem depositam, invito domino, sciens prudensque, in usus convertit, etiam furti delicto succedit." जो मनुष्य, स्वामी की सम्मति के विना, पूर्ण ज्ञान और परिणाम-दृष्टि रखते हुए, निक्षेप का उपयोग करता है वह चोरी के अपराध का भी दोषी है।

हिंदू-वचन, याज्ञवल्क्य—जो वस्तु संदूक़ में बंद करके न्यासधारी के हाथ में न्यस्त की गई हो और यह न बताया गया हो कि इसमें क्या वस्तु रक्खी है, उसे उसको विना जाने हुए ही वैसे का वैसा लौटा देना चाहिए।

सिविल कोड, धारा १९३१—"उसे न्यस्त वस्तुओं को जानने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए यदि वे बंद डब्बे या मुहर लगे हुए लिफ़ाफ़े में न्यस्त की गई हैं।"

इसी विषय पर मनु और कहता है:—

"मुहर लगाकर बंद किए हुए न्यास की अवस्था में, यदि न्यास-धारी निंदा से बचना चाहता है तो उसे चाहिए कि मुहर को बदले विना ही उसे ज्यों का त्यों न्यासकर्ता को वापस कर दे।"

हिंदू-वचन, मनु—"न्यास को, क्या गुण और क्या परिमाण की दृष्टि से, जैसा लिया था वैसा ही वापस करना पड़ेगा।"

सिविल कोड, धारा १९३२—"न्यासधारी को न्यस्त वस्तु अभिन्न रूप में वापस करनी चाहिए।"

हिंदू-वचन, मनु—"यदि न्यास को चोर ले जायँ, कीड़े खा जायँ, पानी बहा ले जाय, या आग जला दे तो न्यासधारी उसे वापस करने के लिये उत्तरदायी नहीं, जब तक कि यह हानि या ह्रास उसके अपने कर्म का परिणाम न हो।"

सिविल कोड, धारा १९३३—"न्यासधारी न्यस्त वस्तु को केवल उसी रूप में वापस देने के लिये बाध्य है जिसमें कि यह वापसी के समय मिले। इसमें जो ख़राबियाँ उसके दोष से उत्पन्न नहीं हुईं वे सब न्यासकर्ता के ज़िम्मे हैं।"

रोमन-संहिता—"Quod vero senectute contigit, vel morbo, vel vi latronum ereptum est, nihil eorum esse imputandum nisi aliqua culpa interveniat."

"ऐसी वस्तु के विषय में, जिसे यथार्थतः काल ने ख़राब कर दिया हो या जो रोग या लुटेरों के अतिक्रम से या किसी ऐसी ही दूसरी घटना से नष्ट हो गई हो, कहा जा सकता है कि इन दैवी घटनाओं में से किसी के लिये भी, जब तक कोई और दूषणीय बात न हो, उधार लेनेवाले मनुष्य को उत्तरदायी न ठहराना चाहिए।"

हिंदू-वचन, बृहस्पति—"न्यास से न्यासधारी जो भी लाभ उठाए वह उसे उसके साथ वापस दे देना चाहिए।"

सिविल कोड, धारा १९३६—"यदि न्यस्त वस्तु के दिए हुए लाभों को न्यासधारी ने प्राप्त किया हो तो वह उन्हें वापस देने के लिये बाध्य है।"

रोमन नीति—"Hanc actionem bonœ fidei esse dubitari non oportet. Et ides, et fructus in hanc actionem venire, et omnem causam, et partam dicendum est ne nuda res veniat."

"शुभ श्रद्धा के इस काम में संदेह करना ठीक नहीं। और इसी प्रकार हमें कहना चाहिए कि इस अभियोग में, और सारे मुक़द्दमे या इसके एक अंश में, ब्याज आता है, ताकि बात छिपी न रहे।"

And in this way, we must say that the interest comes into this suit, and the whole and the part of the case, lest the matter come stripped.

हिंदू-वचन, बृहस्पति—न्यस्त वस्तु उसी को वापस देनी चाहिए जिसने इसे न्यस्त किया था।

सिविल कोड, धारा १८३७—न्यासधारी को चाहिए कि न्यस्त वस्तु उस व्यक्ति के सिवा और किसी को न दे जिसने यह उसके पास न्यस्त की थी।

हिंदू-वचन, मनु—यदि न्यासधारी मृत न्यासकर्ता के उत्तराधिकारी को न्यास वापस दे तो उस पर कोई अभियोग नहीं चल सकता।

सिविल कोड, धारा १६३६—"न्यासकर्ता की नैसर्गिक या नागरिक मृत्यु पर न्यस्त वस्तु केवल उसके उत्तराधिकारी को ही मिल सकती है।"

हिंदू-वचन, मनु—"जिस स्थान में न्यास लिया गया था उसी स्थान पर यह वापस होना चाहिए।"

सिविल कोड, धारा १६४३—यदि ठेके में वापसी के स्थान का कोई उल्लेख न हो तो यह न्यास के स्थान पर वापस होनी चाहिए।

हिंदू-वचन, बृहस्पति—न्यासधारी को न्यास की सावधानी से रक्षा करनी चाहिए, और न्यासकर्ता के पहली बार माँगने पर ही इसे वापस दे देना चाहिए।

सिविल कोड, धारा १९४३—न्यासकर्ता जिस समय माँगे उसी समय उसका न्यास दे देना चाहिए।

रोमन-संहिता—"Est autem apud Julianum... scriptum, eum qui rem deposuit, statim posse depositi actionem agere. Hoc enim ipso dolo facere eum qui suscepit quod reposcenti rem non det." "परंतु जूलियन लिखता है कि जिस मनुष्य ने कोई वस्तु निक्षेप की है वह निक्षेप के लिये तत्काल कार्यवाही कर सकता है। जिसके पास वह वस्तु रक्खी गई थी यदि वह माँगनेवाले को वापस नहीं लौटाता तो यह ठगी के बराबर है।"

हिंदू-वचन, मनु—"जो मनुष्य न्यास लेकर उसे वापस नहीं करता उसे नीति गर्ह्य बताती है।"

सिविल कोड, धारा १९४५—कपटी और अविश्वासी न्यासधारी को निस्तार-लाभ की आज्ञा नहीं।

क्या इन मिलानों और अध्ययनों को और अधिक काल तक जारी रखने की आवश्यकता है, और क्या प्रमाण को अधिक स्पष्ट करना संभव है, विशेषतः जब कि हम जानते हैं कि इस काल के और हमारे बीच कितने युगों का अंतर है और इन सब बातों में कितने-कितने आवश्यक रूपांतर हो चुके हैं?

ये उपगम सारे धर्म-शास्त्र में किए जा सकते हैं; हम हिंदू धर्म-शास्त्र को निरंतर युक्तिसंगत, दार्शनिक, पूर्ण, और संसार की लिखित नीति को जन्म देने के लिये सब बातों में योग्य पाएँगे।

विक्रय, दान और मृत्यु-पत्र, जिनके स्थूल नियम हम देख चुके हैं,

हमारे सम्मुख विस्तार में वही तर्कसंगत पिता-पुत्र-संबंध, संसर्ग की वही बातें, और अतिसूक्ष्मतर सुबुद्धि द्वारा संस्कृत वही आधार-भित्ति उपस्थित करते हैं।

प्रयोजनीय विषयों पर आधुनिक क़ानूनों का स्रोत हिंदू-नीति ही है। इन क़ानूनों में आचार, जल-वायु और सभ्यता के भेद से यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन हो गए हैं, परंतु ये संबंध को सिद्ध करने का अधिक उत्तम काम देते हैं; प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्थापन भारतीय विधियों से केवल वहीं भिन्न हैं जहाँ कि नवीन विषयों ने अलंघनीय रीति से दूसरे आईन नियत किए हैं।

स्मृतिकार मनु, जिसका प्रामाण्य निर्विवाद है, ईसवी संवत् से तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले हुआ है; ब्राह्मण लोग तो इसे इससे भी प्राचीनतर मानते हैं।

पूर्वीय कालगणना के पक्ष में प्रायः कैसा प्रधान प्रमाण है और हमारे लिये कैसी शिक्षा है! यह कालगणना हमारी कालगणना (जो कि बाइबिल के ऐतिह्यों पर आश्रित है) से कम हास्यास्पद है और जगत्-निर्माण का एक ऐसा समय स्वीकार करती है जो कि विज्ञान के अधिक अनुरूप है।

अब वह समय नहीं रहा जब कि बाइबिल या अरस्तू के वचन का खंडन करने के कारण सूली पर चढ़ाए जाने अथवा ज़िंदा जला दिया जाने का डर रहता था। परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि माध्यमिक समयों की कार्यनिर्वाह-पद्धति ने हमें मतों और बनी-बनाई धारणाओं का असंख्य समूह दिया है जिससे निकलना हमारे लिये बड़ा ही कठिन है।

विज्ञान ने, पहलेपहल कातरता से, फिर वीरता से, अपने आपको इन सारे पक्षपातों का विध्वंसक बनाने की निष्फल चेष्टा की है, इसकी अग्रगति बड़ी मंद है; जिस प्रकार युवा

मनुष्य माता की गोद में सुनी हुई कथाओं को भुला देने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार पश्चिमी जातियाँ अतीत काल की विशेष कहानियों को छोड़ देने में अशक्त हैं ; और साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि वे उन्हें स्वीकार करने में भी वैसी ही असमर्थ हैं।

कई ऐसे मत हैं जिन पर समाज में खुला विचार होता है, परंतु जिनमें विवेकपूर्ण परीक्षा के उपरांत विश्वास रखते लज्जा लगती है ; क्योंकि जब मनुष्य मन-ही-मन विचार करता है तो वह अपने दृढ़ प्रत्यय के लिये गंभीर युक्तियाँ माँगता है।

यदि सर्व साधारण में आंदोलन या विचार किया जाय तो सैकड़ों शब्द उठने लगते हैं। "इस विषय को मत छेड़िए" यह चारों ओर से सुनाई देने लगता है। पर क्यों ? किस कारण ? इसका सम्मान करो, उसका आदर करो ! किसलिये करो ? हमारे अंदर पुरानी बातों के लिये प्रेम है, और पुराने स्वभावों को बदलने दुःख होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई मनुष्य यह कह बैठे कि जो कालगणना जगत् की रचना को केवल छः सहस्र वर्ष की ही बताती है वह असंगत और निरर्थक है, तो कई व्यक्ति उसके विरुद्ध कितना तूफ़ान उठाएँगे, और उसके गले पर छुरी रखकर उससे गणित-संबंधी युक्तियाँ माँगेंगे, किंतु वे केवल कहानियों और पवित्र पुस्तकों का विरोध करना यथार्थ समझते हैं !

हमें पहले इन भीरु विश्रंभों के भार से मुक्त हो जाना चाहिए तब हम इस बात को समझ सकेंगे कि कल के उत्पन्न हुए अभिज्ञान के प्रकाश से सभिमान जगत् की उत्पत्ति को स्थिर करना सबसे पीछे आनेवाले हम पश्चिमी लोगों का काम नहीं, और न ही हमें, इस प्रकार, लेखनी की एक चोट से उन पूर्वीय लोगों की सभ्यता और इतिहास को मिटा देना चाहिए जो इस भूतल पर हमसे कई

सहस्र वर्ष पूर्व के हैं। हमसे अधिक न्यायसंगत होने से इन लोगों ने, जो अपने पुरातत्त्व के साथ संतुष्ट रहे होंगे, अपने आपको दूसरे लोगों की संतान स्वीकार किया जो उनके पूर्ववर्ती थे, और जो ऐसे जलप्लावनों के बार-बार होने से विलुप्त हो गए जिनका सभी वर्तमान जातियों में अभिज्ञान बना हुआ है।

जो हो, समाज, परिवार और संपत्ति की व्यवस्था करनेवाले इन प्रशंसनीय आईनों पर विचार करने से, जो, एक शब्द में, अतीव उत्कृष्ट सभ्यता को दिखलाते हैं, हमें यह बात माननी पड़ती है कि हमारी तरह ही हिंदू इस सभ्यता का एक ही दिन में संपादन नहीं कर सके ; इसको सिद्ध करने के लिये कई युगों की आवश्यकता हुई होगी।

कुछ शताब्दियों में ही प्राचीन और अर्वाचीन जातियाँ इस अवस्था में आ पहुँची हैं। पूर्वीय प्रकाश को धन्यवाद है जिसने उनका पथप्रदर्शन किया और उनके लिये गर्भ में रहने की अवधि को संक्षिप्त कर दिया। परंतु पूर्वी लोगों के विचारों को स्वीकार कर लेने पर भी कि उनके मार्ग को प्रकाशित करने के लिये उनके भी पहले और लोग थे, उन्हें ऐसी सभ्य अवस्था तक पहुँचने के लिये कितना अधिक दीर्घ समय लगा होगा ?

इन सापेक्ष अध्ययनों में जितना अधिक मैं अग्रसर होता हूँ उतना ही मुझे यह अधिक स्पष्ट होता जाता है कि समस्त जातियाँ और सभ्यताएँ अपने पूर्ववर्ती लोगों से उसी प्रकार नियत रूप से उत्पन्न हुई हैं जिस प्रकार कि पुत्र पिता से उत्पन्न होते हैं, जैसे शृंखला की निचली कड़ियाँ अपने से ऊपर की कड़ियों से लटकी होती हैं ; यह पिता-पुत्र-संबंध कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो, पक्षपात को छोड़कर धैर्य से खोज करने पर उन जोड़नेवाली कड़ियों को पुनः एक दूसरे के साथ संबद्ध करना कोई कठिन नहीं।

निस्संदेह यहाँ कोई भी ऐसा नवीन विचार नहीं जिसके गुणों

का आदर किया जाय। आधुनिक इतिहास अपने जन्म-स्थान का अनुमान पहले ही कर चुका है और उन मध्यकालीन उत्तरदानों के विरुद्ध यत्न कर रहा है जिन्होंने कि, विचार-शक्ति को वश में कर लेने से, अतीत काल के अधिक स्वतंत्र और अधिक न्याय-संगत ज्ञान की ओर बुद्धि के उत्कर्ष को इतनी देर तक रोके रक्खा है।

अब हिंदू दर्शन और हिंदू धर्म के विषय में, जो कि वेद अर्थात् पवित्र धर्म-ग्रंथों पर आश्रित हैं, कुछ शब्द लिखे जाते हैं।

प्रामाण्य की दृष्टि से, यह बात निर्विवाद है कि वेद प्राचीनतम ग्रंथों से भी पहले के हैं। इन पवित्र पुस्तकों का, जिनमें ब्राह्मणों के मतानुसार ईश्वरीय ज्ञान भरा पड़ा है, फ़ारस, एशिया माइनर, मिस्र, और योरप को आबाद करने या वहाँ उपनिवेश बसाने के भी बहुत समय पहले भारत में सम्मान होता था।

पूर्वीय भाषाओं का प्रसिद्ध पंडित, सर विलियम जोंस कहता है कि "हम वेदों को अतीव प्राचीन मानने से इनकार नहीं कर सकते।" परंतु उनकी रचना किस युग में हुई थी? उनका रचयिता कौन था? हम चाहे अतीव पुरातन समयों की ओर लौटें, मानव-जाति के अतीव प्राचीन लेखों से पूछताछ करें फिर भी इन प्रश्नों को हल करना असंभव है; इस विषय पर सब चुप हैं। कुछ लेखक उनकी रचना जल-प्रलय के उपरांत के प्रथम युगों की मानते हैं; परंतु, ब्राह्मणों के मतानुसार, वे सृष्टि के भी पहले के हैं; सामवेद कहता कि वे उसकी आत्मा के बने हुए हैं जो स्वयंभू है।

वेद संख्या में चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इन पुस्तकों के केवल थोड़े से खंड ही अनुवादित होकर विद्वानों को अवगत हुए हैं। शीघ्र ही, कलकत्ता की रायल एशियाटिक सोसायटी के परिश्रम से, एक अँगरेज़ी भाषांतर प्रकाशित होनेवाला है, जिससे इनका समुच्चय रूप में अध्ययन हो सकेगा। हिंदू दर्शन

आस्तिक और नास्तिक दो पद्धतियों में विभक्त है। आस्तिक दर्शन, या ब्राह्म धर्म-विज्ञान, के सबसे विश्रुत रचयिताओं में से जैमिनि और ऋषि द्वैपायन व्यास प्रथम श्रेणी में प्रतीत होते हैं—शेषोक्त को प्रायः वेदव्यास नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि कहते हैं कि उसने चारों वेदों के बिखरे हुए पृष्ठों को इकट्ठा किया था।

जैमिनि संन्यासी था। वह पीले वस्त्र पहनता और हाथ में दंड और कमंडलु रखता था। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यास ने इस जगत् के पदार्थों के लिये अधिक त्याग किया था, और भारत में उसकी प्रसिद्धि जितनी तत्त्ववेत्ता रूप में थी कवि रूप में भी उससे कुछ कम न थी। सर विलियम जोंस उसका बड़े भक्तिभाव से उल्लेख करता है।

इन दो लेखकों ने भारत के पांडित्य-विषयक दर्शन का पालन और रक्षण किया है। इनकी पुस्तकें प्राप्य हैं। जैमिनि की पुस्तक का नाम पूर्व मीमांसा, और व्यास की पुस्तक का नाम उत्तर मीमांसा या वेदांत है।

उनका उद्देश्य केवल वेदों की व्याख्या और उनके अर्थों का निश्चय करना ही नहीं, किंतु जैमिनि धर्माधर्म-विवेक का भी वर्णन करता है; व्यास के ग्रंथ में अरस्तू के सदृश तर्क है। इसके साथ ही मनोविज्ञान है जिसमें लेखक ने संदेहवाद और भावप्रधानवाद को इतना बढ़ाया है कि वह भौतिक जगत् के अस्तित्व से इनकार की सीमा तक पहुँच गया है।

यह सर्वथा पिर्हो (Pyrrho) की पद्धति है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह दार्शनिक, जिसने भारत में भ्रमण किया था, ब्राह्मणों के साथ मेल मिलाप से स्वदेश को यह सिद्धांत ले गया था कि परमेश्वर के अतिरिक्त और सब माया है।

इसके अतिरिक्त पूर्व मीमांसा समोस (Samos) के तत्त्ववेत्ता

के गुह्य सिद्धांत के साथ भारी संपर्क प्रदर्शित करता है। वास्तव में अफ़लातूँ ने इसी सिद्धांत को ग्रहण किया था।

जैमिनि के मतानुसार विश्व ब्रह्मांड में सब पदार्थ सुस्वर हैं, सब में स्थायी एकतानता है; परमेश्वर स्वयं एक सुस्वर शब्द है, और जितने भूत उसने उत्पन्न किए हैं वे सब उसकी प्रधानता के रूपांतर-मात्र हैं

शब्दों की पद्धति से स्वभावतः संख्याओं की पद्धति निःसृत होती है। इसमें मीमांसा गुह्य शक्ति मानती है। संख्या एक और तीन त्रिमूर्ति का चिह्न हैं, एकता में, परमेश्वर के तीन गुणों—उत्पत्ति, स्थिति, और विनाश द्वारा रूपांतर—का संकेत है।

मिस्र के अंतर्गत मम्फिस का पुरोहित, नवाभ्यासी को संख्या तीन का यही आशय समझाया करता था। वह उसे बताता था कि मुख्य एक से द्वय उत्पन्न हुआ और द्वय से त्रय की सृष्टि हुई, और यही त्रय या त्रिमूर्ति सारी प्रकृति में चमक रही है।

संख्या दो उस प्रकृति को प्रकट करती है जो नर और नारी दोनों है, जो सकर्मक भी है और निश्चेष्ट भी, जो उत्पन्न करनेवाली शक्ति है, जो सारी पवित्र आख्यायिकाओं की आधार-भित्ति है, जो ऐसा सोता है जिसमें से पुराणकारों ने नाना प्रकार की असंख्य कहानियाँ, चिह्न, और आचार निकाले हैं।

मनु कहता है कि "जब परमात्मा रूपी राजा की श्रेष्ठ शक्ति सृष्टि-उत्पत्ति के कार्य को समाप्त कर चुकी तो वह परमेश्वर की आत्मा में लीन हो गई, और इस प्रकार उसकी चेष्टा का काल विश्राम के काल में परिवर्तित हो गया।"

आगे चलकर हम त्रिमूर्ति की इस धारणा पर विशेष रूप से विचार करेंगे और दिखलाएँगे कि सभी धर्मों ने इसे कहाँ से लिया है।

दोनों मीमांसाओं के लेखकों ने कर्म, ईश्वर-प्रसाद, श्रद्धा, और

विचार-स्वातंत्र्य ऐसे अत्यंत निगूढ़ विषयों का एक सा वर्णन किया है; और एबीलर्ड (Abilard) और विलियम डी शंपे (William de Cham peaux) के बहुत समय पहले प्रत्यक्ष-वादियों (Realists) और नामवादियों (Nominalists) का प्रश्न उठाया है।

भारत में यह व्यग्र श्रद्धा का युग था; यह वह युग था जब कि विज्ञान, दर्शन और सदाचार सबके सब वेद के वचनों में से ढूँढ़े जाते थे।

जैमिनि और वेदव्यास द्वारा वर्णित इन सब प्रश्नों पर, जिन्होंने कि उनके पश्चात् ईसाई तत्त्ववेत्ताओं में आंदोलन उत्पन्न किया, हम पुनः विचार करेंगे।

शास्त्रों और महाभारत (Mahra·Barad) के रचना-काल, काल-रूपी रात्रि में खो गए हैं। ये ग्रंथ भी उन्हीं सिद्धांतों का स्वीकार करते हैं। यदि हम पूर्वीय भाषाओं के विद्वान् पंडित हाल्हेड (Halbed) की गिनी हुई ब्राह्मण ग्रंथों की काल-गणना का स्वीकार करें तो उनमें पहले तो सत्तर लाख वर्ष की, और दूसरे चालीस लाख वर्ष की प्राचीनता अवश्य है—यह एक ऐसी प्राचीनता है जो इस विषय में हमारी सारी योरपीय धारणाओं पर सीधी चोट करती है।

ऐसी बातों पर लोगों को सुगमता से हँसी आ जाती है, विशेषतः फ्रांस में जो कि अगंभीर भावों और विवेकशून्य उक्तियों का देश है। हमने अपने लिये एक छोटा-सा जगत् बना लिया है जिसको उत्पन्न हुए केवल छः सहस्र वर्ष हुए हैं और जो छः दिनों में बना था; यही सबको संतुष्ट कर देता है और इसके लिये विचार का कोई प्रयोजन नहीं।

यह सच है कि कुछ लोगों ने हाल ही में इन छः दिनों को छः कालों

में बदल देने का यत्न किया है। गुंजायश बहुत है, प्रत्येक काल के बीच कई सहस्र वर्ष आ गए होंगे ; यह विचार पूर्व के विचार के साथ आलिंगन करता है। किंतु कानों को भली भाँति खोलकर सुनो तो तुम्हें अतीत काल के पक्षपाती नर-रत्नों की इस अग्रवर्ती सेना पर सब ओर से निंदा की बौछार करते और अपने झाड़ू के साथ इसे कीचड़ से भरते सुनाई देंगे।

यदि हमें हिंदुओं के सदृश धर्मभ्रष्ट और निर्बोध बनकर अपना अंत कर लेना पसंद नहीं तो हमें पुरोहित शाही (Utramonta-nism) से बचते रहना चाहिए।

केवल शास्त्र ही इतनी पुरानी पुस्तकें नहीं, हिंदू दार्शनिकों के मतानुसार, मनु का धर्म-शास्त्र भी कृत-युग अर्थात् प्रथम युग में बना था। सूर्यसिद्धांत कई लाख वर्ष पीछे की गिनती करता है। इस विषय में, शास्त्रों के अनुवादक हाल्हेड (Halhed) महाशय कहते हैं कि निर्विवाद प्रामाण्य के पुरावृत्त हमें जैसे प्राचीन ब्राह्मणों से मिले हैं वैसे किसी दूसरी जाति के पास नहीं हैं। अपनी प्रतिज्ञा की पुष्टि में वह एक ऐसी पुस्तक का उल्लेख करता है जो ४००० से भी अधिक वर्षों की लिखी हुई है और कई करोड़ वर्षों के मनुष्यों का भूतापेक्षक इतिहास देती है।

हिंदुओं के लिये इस कालगणना में कुछ भी अत्युक्ति नहीं ; इसके विपरीत, न्यायसंगत रीति से यह उनके विश्वास के साथ एकताल है, क्योंकि वे प्रकृति को परमेश्वर के साथ अनादि मानते हैं।

किस जाति ने उनसे बढ़कर आदर्शों की कल्पना की है, प्रश्नों का आंदोलन किया है, या समस्याओं पर विचार किया है ? विचार के विकास और विज्ञान की उन्नतिशील अग्रगति ने हमसे इतना समय पहले के इन लोगों की दार्शनिक कल्पनाओं के मूल्य को कुछ भी कम नहीं किया।

व्यवस्थापन, सदाचार, वेदांत, मनोविज्ञान इन सबके वे पंडित थे—इन सबकी उन्होंने थाह ले ली थी।

जब हम उनके साहित्य के स्मृति चिह्नों को खोजते हैं, जब हम उन विस्तृत दार्शनिक भांडारों को खोलते हैं जहाँ से, चारों ओर, वे प्राक्कालिक ज्योतियाँ फैलती हैं, जो एक उच्च सभ्यता की साक्षी देती हैं, तब हम परमेश्वर की उस उत्तुंग मूर्त्ति को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं जिसको कि कवि, ऐतिहासिक, व्यवस्थापक, और दार्शनिक लोग, उसकी आसन्न विधि में अपने विश्वास का प्रतिपादन करते हुए, मनुष्यों के नेत्रों के सम्मुख रखने से बाज़ नहीं आते।

वे लोग जब तक पहले अपनी आत्मा को ईश्वर-परायण न कर लें और भगवान् को कृतज्ञ हृदयों की स्निग्ध भक्ति का नैवेद्य न चढ़ा लें तब तक कभी कोई कार्य आरंभ नहीं करते। इन ऋषियों के सिद्धांतों, कल्पनाओं, और उच्च भावनाओं को देखकर उनके विश्वास और श्रद्धा के लिये हमारे अंदर अत्यंत गंभीर प्रशंसा का भाव उत्पन्न होता है।

सामवेद कहता है कि "यह गंगा जो बह रही है, यह परमात्मा है; यह समुद्र जो गरज रहा है, यह परमात्मा है; पवन जो चल रहा है, यह परमात्मा है; बादल जो गरजता है, बिजली जो चमकती है, यह वही परमेश्वर है; जिस प्रकार अनंतकाल से जगत् ब्रह्म की आत्मा में था, उसी प्रकार आज भी जो कुछ वर्तमान है उसी की प्रतिच्छाया है।"

मनु, अपने शिष्य महर्षियों पर अपने अनश्वर नियमों का प्रकाश करने के लिये भृगु को बुला भेजने के पहले उन्हें ईश्वर के गुणों और सृष्टि के रहस्यों की व्याख्या समझाता है। उसी प्रकार, महाभारत का रचयिता, ओजस्विनी भाषा में, कुमारी देवनग्नी के दिव्य

पुत्र के मुख से, विस्मित अर्जुन को हिंदू-ईश्वरवाद के सभी उच्च विचारों का उद्घाटन कराता है। और पूर्वोल्लिखित शास्त्र पाठकों को एकदम श्रेष्ठतर बुद्धि अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराते हैं जिसने कि अपनी अनंत शक्ति से सब की सृष्टि और व्यवस्था की है।

परंतु व्यग्र श्रद्धा, और संदेह-रहित विश्वास के इन युगों के उपरांत शीघ्र ही शुद्ध तर्क की उपासना आरंभ हो गई ! इस तर्क ने प्राचीन ईश्वरीय ज्ञान को रद्द तो नहीं किया किंतु यह उसे विचार-स्वातंत्र्य की कुठाली में शुद्ध करके ग्रहण करने लगा।

इस स्वातंत्र्य से भिन्न-भिन्न प्रणालियों का उत्पन्न होना आवश्यक ही था ; अध्यात्मवादियों के साथ-साथ संशयात्मक लोग भी प्रकट हो गए, जिनकी कल्पनाओं को प्राचीन पिरंहोनिन लोगों (Pyrrhoniens) ने पुनर्जीवित किया था, और जिनको हमारे समय में मोंटेन (Montongne) और कांट (Kant) के शिष्यों ने ताज़ा किया है—परंतु इन पिछले लोगों ने एक भी नवीन युक्ति की वृद्धि नहीं की।

सांख्य-दर्शन, जिसका कर्ता कपिल हुआ है, यथारीति जगत् को परमेश्वर का बनाया हुआ नहीं मानता; वह कहता है जगत् को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं; इसके अतिरिक्त यह न इंद्रियों द्वारा न तर्क ही द्वारा, अर्थात्, न उपलब्धि से और न व्याप्ति से जो कि सत्य के तीन लक्षणों में से दो हैं, और जिनके द्वारा, इस दर्शन के मतानुसार, हमें पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है, सिद्ध होता है। क्योंकि कारण और कार्य की धातु एक ही होती है इसलिये यह परिणाम निकलता है कि जिस वस्तु का अभाव है, उसका भाव, कारण की किसी भी संभव क्रिया से, नहीं हो सकता।

यह युक्ति ल्यूसिप्पस (Leucippus), लुक्रीशियस (Lucretius), इत्यादि, की दी हुई युक्ति के समान है कि उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि परमेश्वर जगत् को किसी वस्तु से बनाए, क्योंकि नास्ति से किसी वस्तु का निकालना संभव नहीं।

फिर भी कपिल ने प्रकृति में एक सहज आकारद शक्ति, उसी से निकलनेवाली एक सत्ता मानी है, जो कि प्रकृति का विशेष गुण है, और सारे व्यक्तिगत ज्ञान का स्रोत है।

निर्मायक गुण और विनाशक गुण की विरोधकारिणी क्रियाओं से कार्यकारिणी शक्ति, या गति, उत्पन्न होती है। फिर इसके अपने तीन गुण हैं; पहला आकारद; दूसरा अपसारक; तीसरा तंद्रिल।

ऐसी ही सूक्ष्मताओं में पूर्वीय कल्पना-शक्ति, उन प्राचीन समयों में, क्रीड़ा किया करती थी।

इन तीन गुणों या प्रकृति के अवियोज्य धर्मों की, जो सर्वभूतों में तत्त्वतः व्याप्त हैं, हिंदू तत्त्ववेत्ताओं ने भारी श्रम के साथ परीक्षा की है। गौतम अपने सांख्यदर्शन में कहता है कि ये प्रकृति के केवल आहार्य धर्म ही नहीं, किंतु ये उसका सार हैं और उसकी रचना में घुसे हुए हैं।

पहला अशेष पुण्य की उपस्थिति और पाप का सर्वथा अभाव है।

अंतिम पुण्य का सर्वथा अभाव, और अशेष पाप की उपस्थिति है। मध्यवर्ती गुण में दोनों के अंश हैं।

हम यह बता देना चाहते हैं कि शास्त्रों का यह सिद्धांत बड़ी अद्भुत रीति से प्राक्काल के अनेक दार्शनिकों की पद्धति से मिलता है। एंपीडोक्लीस चार तत्त्वों को सारे पदार्थों का आदि कारण मानता था; परंतु साथ ही वह संवाद और विसंवाद के नियम को भी स्वीकार करता था।

अफ़लातूँ की शिक्षा थी कि देवताओं में प्रेम सबसे अधिक बल-वान् है, सच्चा विधाता * है, और भूत-प्रलय से उत्पन्न हुआ है।

स्टॉएक्स लोग (Stoics) चार तत्त्वों को उत्पन्न करनेवाली एक अनुपम वस्तु का समाश्रय लेते थे, और स्टगाईरा (Stagyra) का तत्त्ववेत्ता एक पाँचवाँ तत्त्व मानता था जिससे वह आत्मा की उत्पत्ति बताता था।

शास्त्रों के मतानुसार, शक्ति या गतिशीलता काल और पुण्य के संयोग से प्रकृति, अर्थात् महाभूत उत्पन्न करती है; और प्रकृति में विरोधी धाराओं के क्षोभ ने वह सूक्ष्म, दिव्य और तेजोमय तत्त्व उत्पन्न किया है जिसे आकाश कहते हैं—जो अंतरिक्ष में फैला हुआ एक निर्मल, विद्युन्मय, जीवनप्रद रस है।

इस प्रकार प्रीति विश्व-माता है, जगत् का आदि कारण और प्रधान जननी है।

निश्चल, अगोचर और अंधकार में ढके हुए ब्रह्म की स्त्री के रूप में, जैसा कि महाभारत में बताया गया है, यह भवानी है।

निश्चलता को छोड़कर क्रिया में प्रवृत्त होनेवाले, प्रकृति में जीवन का संचार करनेवाले और सृष्टि द्वारा अपने आपको व्यक्त करनेवाले ब्रह्मा की स्त्री के रूप में यह ब्राह्मी है। रक्षक और उद्धारक विष्णु की स्त्री के रूप में यह लक्ष्मी है। विनाशक और पुनरुत्पादक शिव के रूप में यह पार्वती है।

वेद बताते हैं कि ब्रह्मा ने सृष्टि को रचने या उत्पन्न करने के उद्देश से सृष्टि के निमित्त अपना बलिदान कर दिया। परमेश्वर ने हमारे उद्धार और पुनरुदय के लिये न केवल अवतार धारण किया और कष्ट उठाया, प्रत्युत उसने हमें अस्तित्व प्रदान करने के लिये अपने आपको भी बलिदान कर दिया।

---

* "Ante Deos et omnes, primum generavit amorem."

डी हंबोल्ट (M. de Humboldt) कहता है कि "यह कितना श्रेष्ठ विचार है, जिसका वर्णन हम प्राक्काल की सभी पवित्र पुस्तकों में पाते हैं।"

पवित्र पुस्तकों में यह इस प्रकार प्रकट किया गया है—

"ब्रह्म आप ही याजक और आप ही बलि है, इसलिये जो पुरोहित प्रतिदिन सबेरे सर्वमेध, अर्थात् सार्वत्रिक यज्ञ, जो कि सृष्टि का चिह्न है, कराता है, वह परमेश्वर को नैवेद्य चढ़ाने के कारण अपने आपको दिव्य याजक ही, जो कि ब्रह्म है, समझने लगता है। अथवा ब्रह्म ही अपने पुत्र कृष्ण के रूप में बलि होने, हमारी मुक्ति के लिये इस पृथ्वी पर मरने आया था, और वही आप विधि-पूर्वक यज्ञ को संपूर्ण करता है।"

ये अंतिम पंक्तियाँ विचित्र और सूक्ष्म तुलना की बातें उपस्थित करती हैं; परंतु मैं इस विषय को, एक विशेष अध्याय में, प्रमाणपूर्ण हाथों के साथ स्पर्श करूँगा, और एक ऐसी स्वतंत्र आत्मा की समदर्शिता के साथ इसका वर्णन करूँगा जो निंदा की कुछ परवाह न करती हुई केवल वैज्ञानिक सत्यताओं का अन्वेषण करती है।

जब लोकों के शासक, परमेश्वर, ने पृथ्वी को उत्कृष्ट पुष्पों से सुसज्जित, गोप्रचारों और क्षेत्रों को तरु-लता आदि से आवृत, और यौवन तथा जीवनशक्ति से जाज्वल्यमान प्रकृति को भूमंडल पर अपने ख़ज़ाने बखेरती देखा तब उसने पवित्र आत्मा, शब्द, अर्थात् अपनी प्रथम संतान को भेजा, जिसने मनुष्य और पशुओं की सृष्टि आरंभ की।

शास्त्र कहते हैं कि परमेश्वर ने अपने आपको अनंत प्रकार के रूपों और बहुसंख्यक इंद्रियों से संपन्न किया—उस सर्वशक्तिमत् शक्ति को, उस सर्वश्रेष्ठ बुद्धि की आश्चर्यजनक मूर्ति को उपस्थित किया, जिसकी कल्पना कोई आत्मा नहीं कर सकती, और जिसके

विस्तार का माप और जिसकी गहराई की थाह कोई मनुष्य नहीं ले सकता है।

मनुष्य को परमेश्वर ने छूने, देखने, सूँघने, चखने और सुनने की पाँच इंद्रियाँ और छठा मनस्, जिसे सब हिंदू दार्शनिकों ने माना है और जो स्त्री और पुरुष के संयोग में कर्ता है, प्रदान किया।

बुद्ध एक संस्कारक हुआ है। वह ब्राह्मणों के ईश्वरकर्तृक शासन-संबंधी अधिकार का लूथर था। उसके सिद्धांत उत्तर एशिया, तुर्किस्तान, चीन, यहाँ तक कि जापान तक फैले थे। उसके अनु-यायी छठी इंद्रिय को और पाँचवें तत्त्व को नहीं स्वीकार करते हैं—जिन अनेक बातों में उनका शास्त्रविश्वासी लोगों से मतभेद है उनमें से एक यह भी है।

सांख्यदर्शन इसका लक्षण इस प्रकार करता है, "संपर्क से एक इंद्रिय जिसमें दूसरों के भी विशेष गुण मिले हैं, और जो अनुभव और क्रिया दोनों का एक ही समय में काम देती है।"

हमें विदित है कि अरस्तू भी छठी इंद्रिय को स्वीकार करता था।

पशुओं की आत्माओं के विषय में प्राचीन लोगों का मतभेद था; अफ़लातूँ के अनुयायी उनमें विवेक और बुद्धि मानते थे, परंतु मनुष्य से कुछ दर्जे कम पेरीपेटिट के अनुयायी (Peripatetics) उनमें केवल अनुभव ही स्वीकार करते थे।

शास्त्र न केवल मनुष्य को ही स्वर्ग में अमरता का वचन देते हैं, प्रत्युत पशुओं को भी आत्मा की अमरता और भावी जीवन में अस्तित्व का उच्च स्वर से अधिकारी बताते हैं। अतएव, निस्संदेह, पुनर्जन्म का सिद्धांत, भारत से, जहाँ कि इसकी पहले पहल कल्पना हुई, एशिया के शेष देशों और यूनान में फैल गया।

ये पुस्तकें व्यक्तिगत आत्माओं को विश्व ब्रह्मांड को सर्वश्रेष्ठ

आत्मा के उद्भव, अथवा दिव्य तत्त्व का अंश समझती हैं ;—विश्लेष के समय वे पुनः ईश्वर के हृदय में लीन हो जाती हैं, जिस प्रकार रेत पर पड़नेवाले वृष्टि-कण अनंत सागर में लौट आते हैं, या, वेदों की सुंदर उपमा का प्रयोग करते हुए, "वे ऐसी चिंगारियाँ हैं जो उसी अमर केंद्र की ओर लौट आती हैं जहाँ से कि वे निकली थीं।"

केवल उन्हीं की आत्माएँ, नश्वर शरीर को छोड़ने के उपरांत, परमात्मा के साथ पुनः संयुक्त होती हैं जिनके हृदय और हाथ पाप और अपराध के कीच से मैले नहीं हुए। इस ईश्वर-मिलाप में व्यक्तित्व का भाव व्यापक परमानंद में लुप्त हो जाता है। पापी लोगों की आत्माएँ नरक में अपने अपराधों का दंड भोग चुकने के उपरांत, अनेक बार जन्म ग्रहण करती हैं, और अपने पापों से शुद्ध होने के पश्चात् ही ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप में पुनः प्रविष्ट होती हैं।

वेदांत कहता है कि जो आत्मा किसी नवीन देह में जीवन डालने के लिये वापस आती है उसका पहला आकार जाता रहता है, और उस वर्षा-कण के सदृश जो अपने नीचे के पेड़ को बल और जीवन प्रदान करने के लिये वायु में से गुज़रता है, यह उस भ्रूण-जंतु में प्रवेश करती है जिसको जीवित करने के लिये यह आती है। हम देखते हैं कि हिंदू दार्शनिक, जैसा कि हमें भी तर्क से मालूम होता है, दंड की नित्यता के सिद्धांत को नहीं मानते; अपराध, चाहे कैसा ही हो, क्रमिक जन्मों से पृथक्, दंड के द्वारा उसकी निष्कृति हो जानी आवश्यक है, यहाँ तक कि संशोधित आत्मा उस परमेश्वर के पुनः मिलाप से, जो सर्वत्र अखंड रूप से व्यापक है और अपनी असंख्य शक्ति से कार्य कर रहा है, अर्थात् जो विश्वात्मा है, परमानंद की पात्र समझी जाय।

आत्मा के अदृष्ट और भावी जीवन के विषय में अफ़लातूँ के भी यही विचार थे। वह समझता था कि आत्मा सर्वश्रेष्ठ बुद्धि

(परमात्मा) से निकली हुई एक किरण है और वह उसी में वापस चली जायगी। ब्रह्म में लीन होने के लिये आत्मा का पवित्र होना आवश्यक है, अपवित्र आत्मा विश्वात्मा में विलीन नहीं हो सकती। अफ़लातूँ के ये विचार पूर्वी सिद्धांतों की ठीक प्रतिध्वनि हैं।

इस थोड़े से वर्णन से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यूनान के प्रसिद्ध पुरुषों द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों में प्रत्येक पग पर हिंदू तत्त्व-ज्ञान के जो चिह्न प्रकट होते हैं वे इस बात को प्रचुरता से प्रमाणित करते हैं कि उनका विज्ञान पूर्व से आया था, और उनमें से अनेकों ने, निस्संदेह, ज्ञान के प्राथमिक निर्भर से पेट भरकर ज्ञानामृत पान किया था।

भारतवर्ष ने सारे संसार पर, और विशिष्ट प्रकार से प्राक्काल पर, अपनी भाषा, अपनी व्यवस्था और अपने तत्त्वज्ञान के द्वारा जो अखंडनीय प्रभाव डाला है क्या उसको इससे अधिक स्पष्ट रीति से बताना संभव है ? ऐसे सादृश्यों, प्रत्युत मैं कहता हूँ, ऐसे प्रतिरूपों की उपस्थिति में इस बात की पुष्टि का साहस करने के लिये इनकार की विशेष रूप से बलवती और बुद्धिहीन शक्तियों का प्रयोजन है कि यूनान और रोम ने भारत से कुछ नहीं लिया, और उनकी जिस सभ्यता का ज्ञान हमें है, वह उन्होंने अपने उपक्रम, अपने उद्यम और अपने ही बुद्धि-प्रभाव से प्राप्त की थी।

हम यह शीघ्र ही मान लेते हैं कि रोम को यूनान ने, और यूनान को एशिया माइनर और मिसर ने ज्ञान-दान दिया था; फिर, विशेषतः हमारे दिए प्रबल प्रमाणों के उपरांत उसी न्याय-संगत युक्ति को क्यों नहीं जारी रखते, और भारत को प्राचीन जातियों का गुरु क्यों नहीं स्वीकार करते ? इसमें न विरोधाभास है और न चतुर अव्यवहार्य कल्पना ही, किंतु इसमें सच्चाई-मात्र है जो उन्नति कर रही है, जिसको पूर्वीय भाषाओं के सभी बड़े-बड़े पंडितों

ने चिरकाल से स्वीकार कर लिया ... र जिसे, हम समझते हैं,
केवल एक विशेष पक्ष के मनुष्य ... ीकार करेंगे, क्योंकि यह
सब जातियों के धर्म-संबंधी ईश्वर... ादेशों और ऐतिह्यों की
उत्पत्ति के एक होने के विषय में ... से प्रबल युक्ति है।

यदि भारत वस्तुतः गौर जाति ... जन्म-स्थान है, अफ्रीका तथा
योरप के एक भाग में, और एशि... नेवाले भिन्न-भिन्न लोगों की
माता है; यदि इस माता-पुत्र-संबं... ण में हम, क्या प्राचीन कालों
में और क्या आधुनिक कालों में ... त्पत्ति के अमिट चिह्न पाते हैं
जो हमें उसकी भाषा, उसकी ... ा, उसके साहित्य और उसके
दर्शन तथा नीति-शास्त्रों में ... तो क्या यह बात स्पष्ट नहीं
हो जाती कि धर्म-ऐतिह्य भी ... के हाथ और स्वतंत्र चिंता की
क्रिया से रूपांतरित होकर, ... व वहीं से आए हैं? कारण यह
है कि ये ऐसी अनुचिताएँ हैं ... की प्रवासी लोग बड़ी उत्सुकता
के साथ रक्षा करते हैं, उन ... ेन और प्राचीन देश के बीच
ऐसी पवित्र भूमि समझते ... हाँ कि उन पूर्वजों की अस्थियाँ
गड़ी हैं जिनके दर्शन उनके ... न होंगे।

हमारे पास यह एक ऐसा सूत्र है जो सर्व प्राचीन सभ्यताओं, सर्व ईश्वरीय प्रत्यादेशों और धार्मिक ऐतिह्यों के बीच में से, उन प्रत्येक प्रकार की पुराण-कथाओं और आख्यानों में जो बहुत सी जातियों की शैशवावस्था को घेरे हुए हैं, और जिनको इतिहास ने, निंदित ठहराने और कविता तथा परिकथा का विषय बतलाने के स्थान में, बड़े भक्तिभाव में लिपिबद्ध और प्रमाणित किया है, हमारे भूतापेक्षक अनुसंधानों को उनके सच्चे भारतीय सोतों तक ले जायगा।

ऐसे साहाय्य के साथ उच्चाकांक्षाओं ने प्राचीन काल में जातियों को वशीभूत और शासित किया है; ऐसी अनुचिताओं की सहायता से आज उनके पराजय की चेष्टा की जा रही है।

मनु, पुरोहितों और ब्राह्मणों के यथाकाम साधन के रूप में, भ्रष्ट और साहंकार ईश्वरकर्तृक शासन के नीचे दबे हुए स्वदेश के अपकर्ष और विनाश का प्रारंभिक स्थान बन गया।

उसके उत्तराधिकारी मेनस ने, मिस्र को पुरोहितशाही के वश में करके, उसके लिये विस्मरण और बद्धता तैयार की।

मूसा, अपने अग्रगामियों के अनियंत्रित कार्य को उसी सफलता के साथ ग्रहण करके, अपनी जाति को, जिसे इतने गर्व के साथ 'परमेश्वर की प्रजा' विघोषित किया जाता है, क्रीत दासों का एक समूह-मात्र बना सका। यह मूढ़ दासत्व के लिये भली भाँति सिधा हुआ था और इसके पड़ोस की जातियाँ लगातार दास बना लेती थीं।

एक नवीन युग का आरंभ हुआ—परंतु ईसाई तत्त्वज्ञान की संशोधित धार्मिक कल्पनाओं ने शीघ्र ही याजकीय रूप धारण कर लिया, याजक समाधियों से निकलकर राजसिंहासनों पर चढ़ने लगे, और उसी समय से वे, बिना किसी शैथिल्य के, प्रधान सूत्र को उलटने लगे।

इन श्रेष्ठ शब्दों—

"मेरा राज्य इस जगत् क ,"

के स्थान में ये दूसरे शब्द

"संपूर्ण जगत् हमारा राज '

रखने में लगे हुए हैं।

हमें सावधान रहना चाहि ारत में, मिसर में और जूडिया में, क्रमशः ब्राह्मणशाही, याजक और लेविटिज़्म (Levitism) के समयों में कोई भी चीज़ ऐसी ीं देख पड़ती जिसकी तुलना पाखंडशासन सभा (Inquis n) की ज्वाला से, वौडोई (Vaudois) की हत्या से, था बार्थोलोमियो के हत्याकांड से, जिसके लिये कि रोम ने सेंट पी भवन को उल्लास के ईश्वर-स्तोत्र के साथ प्रतिध्वनित किया ा जा सके।

जर्मनी के भूपाल और राजेश्व ी के पाँव तीन दिन तक तुषार में रहे और उसका सिर धर्म पुरोहित के अधम हाथ के नीचे झुका रहा। ब्रह्मा, आईसिस यहोवह के उपासकों में भी हेनरी का कोई सानी न था। हमें ान रहना चाहिए!

८९ का सन् ईश्वरीय धर्म त्रता और उत्कर्ष के लिये अपना पथप्रदर्शक और उसे स्वतंत्रता तथा उत्कर्ष को नष्ट करने के लिये धन बनानेवालों के बीच की सूचना देने आया।

देखना र्बलता न आने पाए। अतीत काल पर दृष्टिपात कीजिए, चिए कि क्या आप भी प्राक्कालीन जातियों के सदृश ोना चाहते हैं।

उ का प्रतिपालन करो जो ईश्व उसकी दी विवेक-बुद्धि के न्यवाद करता है। उस धर्म तिरस्कार करो जो ईश्वर क-बुद्धि के दबाने का एक नाना चाहता है।

तीसरा अध्याय

इतिहास की शिक्षाओं का मूल्य ❀।

इतिहास, जैसा कि हमारे पास है और जैसा कि उनको पढ़ाया जाता है जिनको मनुष्य बनना है, कोई विद्या नहीं। यह एक नीच माया है, एक साधन है जिसका प्रयोग यशस्काम विजेताओं, पराजितों, दलों और कालों के इच्छानुसार बातों को बढ़ाने या घटाने के लिये, सत्य घटनाओं को मानने, उनसे इनकार करने या उनमें फेर-फार कर देने के लिये, विशेष व्यक्तियों की प्रशंसा के पुल बाँधकर कभी उन्हें आकाश पर चढ़ाने और कभी उन्हें गालियों की बौछार के नीचे दबा देने के लिये, और गंभीर तथा वास्तविक प्रभावों को अस्वीकार करने तथा कृत्रिम प्रभाव उत्पन्न करने के लिये किया जाता है।

मैं इतिहास का महान् नाद, इतिहास की व्यवस्था, इतिहास की समदर्शिता, इत्यादि की बात को बिना घृणा के नहीं सुन सकता, क्योंकि मैं प्रायः इस महान् नाद, इस व्यवस्था, इस समदर्शिता, सारांश, इस सकल हमारे शब्द-समुदाय को केवल जन-साधारण के विस्मय को तृप्त करने के लिये ही समझता हूँ। चालाक लोग निर्भय होकर निज स्वार्थ-सिद्धि के लिये इन शब्दों का प्रयोग करते हैं।

उदात्त रीति से समदर्शिता-पूर्वक विचार किया जाय तो कहना पड़ता है कि इतिहास अभी अपनी शैशवावस्था में ही है, क्योंकि इस समय यह सारे कारणों और सारे मतों का केवल एक सुशील और चाटुकार पोषक है।

कुछ लोग कहते हैं कि हरमोडियस (Harmodius) और

❀ अंगरेज़ी अनुवाद में यह सारा का सारा अध्याय छोड़ दिया गया है। सं० रा०

अरिस्टोगिटन (Arstogitc... ने हिपर क्यू (Hipparque) का वध स्वतंत्रता के नाम पर ...था; कई लोग कहते हैं कि उन की बहन का सतीत्व भंग करने ...रण ही उसका वध हुआ था; और इतिहास उनको कीर्ति-कि... ...दान करता है।

ब्रूटस कटार से अपने हित... की हत्या करता है, और इतिहास को उस धर्मशील नागरि... के लिये पर्याप्त प्रशंसा नहीं मिलती। पुस्तक के कुछ पृष्ठ उल... और कुछ शताब्दियाँ पीछे चलिए। आपको जैक्सक्लिमेंट (J... ...ues Clement), रेवैलक (Ravaillac) और जावेल (Ja... ...l) के माथे पर इसी इतिहास की लगाई हुई कलंक और दुष्टता ... ...र दिखाई देगी।

इस निस्सार प्रहसन का क्या ... है? कइयों के लिये प्रशंसा और सम्मान और दूसरों के लिये ...क और अपमान क्यों? ऐ तुम लोगो, जिन्होंने जनता और रा... के पाठ पढ़े हैं! तुममें सब कालों के हत्यारों को कलंकित ... ...और उनके नर-संहार तथा रक्तपात के कार्यों को विश्वासघात ... कार्य ठहराकर उस पर अप्रसन्नता प्रकट करने का साहस ... ?

मैं व्यर्थ तुम्हारे ... ...ओं खोज ... हूँ, क्योंकि मुझे वे मिलते ही नहीं।

क्या वह प्रसि... ...द्धांत जो साधन ... परिणाम के अनुसार अच्छा या बुरा ... ...ता है तुम्हारी ही ...ज है? मेरा मन कहता है कि यह ... आपका ही बनाया हुआ है क्योंकि मैं देखता हूँ कि आ... ...ग, विना किसी विवे... और विमर्श के, एक ही अपराध के ... भात्री संतानों में ... तो प्रशंसा का और कभी तिर... का भाव उत्पन्न करते ...। इस घोर नीचता और पाप के क... फल तुम्हें कौन देगा ... क्या तुम हमें यही शिक्षा दे सकते ...और क्या तुम्हें हमको ... शिक्षा देनी चाहिए?

एक पागल मनुष्य एशिया ३ पर आक्रमण करता है। पंद्रह
वर्ष तक वह अपनी सेना द्वारा पराजित और विनष्ट राष्ट्रों का
लूटा हुआ माल घसीट ले जात वह इस पृथ्वी पर खड्ग, अग्नि
और सर्वनाश द्वारा अपना गह ह्न अंकित करता है । और
तुम लोग इतने बड़े विनाश, बड़े क्लेश को देखते हुए भी
उस कुत्सित नाम के लिये, जो तुम्हारी झूठी स्तुति के प्रताप से
महान् सिकंदर हो जाता है, ं वेजय के गीत गाते हो।

हा! अभी तक भी तुम्हार रेत्र-नायक पूर्ण नहीं हुआ; तुम्हें
चित्र में एक दोष दीखता है कंदर मदिरा से उन्मत्त होकर
क्लाइट्स (Clitus) की र डालता है। और तुम लोग
उन सहस्रों मनुष्यों का जिनको वह पागल मृत्यु के घाट
उतार चुका था उसके लि ते-व्याख्या करने लग जाते हो और
अनेक प्रकार से सिद्ध क कि यदि उसने मदिरा-पान न
किया होता तो वह अपने ा वध कदापि न करता।

इसके अतिरिक्त, सद तर्क का आश्रय लेते हुए, तुम्हारा
समदर्शी इतिहास अटिल ttila) तैमूर लंग, और चंगेज़ख़ाँ
को, सिकंदर के कुछ घातक चाबुक और रक्त-पिपासु
राक्षस कहता है।

यह क्यों? केवल होने से उनका नाश
हो गया, और वे अपनी अपने राज-वंश
की नींव रखने में कृतकार्य न

कृतकार्य उद्दंड मनुष्यों को नोरथ उद्दंडों
की निंदा करना, राष्ट्रों के विनाश पित करना
और उनके आखेटों को भूल ज हो जायँ
उन्हें विजेता समझना और जो हसिक
कहना यही तुम्हारा काम है। ऐ दैवयो वाले

लोगों के मिथ्या-प्रशंसक, परिणामों के अधम क्रीत दास, छिः ! अब हम तेरी समदर्शिता और तेरी महत्ता के गीत न गाएँगे ।

क्या तुम्हारी दृष्टि में विनाश करनेवाला सीज़र स्वदेश की रक्षा करनेवाले वर्सिंगटोरिक्स (Vercingetorix) से बड़ा नहीं ? क्या तुमने कभी अपनी व्यवस्थाओं को उस सनातन नैतिक नियम के अधीन करना सीखा है जो किसी कार्य का मूल्य उस कार्य से ही लगाता है, जो अपराध की उसके अपराध होने के कारण ही निंदा करता है, और जो कभी इतना ढीला नहीं होता कि अपराध को उसके निमित्त अथवा परिणाम के कारण क्षमा कर दे ?

और तुमने देवत्व की उस महान् कल्पना का भी क्या बना दिया है ? जब तुम अभी पूर्ण रीति से उत्पन्न भी नहीं हुए थे, तुमने इस-को मनुष्य-जाति की भीरुता और निर्बलता के साथ इतना मिश्रित कर दिया कि ठीक-ठीक पता नहीं कि यदि तुम इसका सर्वथा उल्लेख ही न करते तो क्या उत्तम न होता ।

तुम जानते हो कि मनुष्य-समाज शताब्दियों से ऐसे भारी परिश्रम के साथ उस विश्व-बंधुता और कल्याण की प्राप्ति के लिये क्यों यत्न कर रहा है जिसका उद्देश [illegible] मात्र उच्चाभिलाषा के सिवा और कुछ नहीं है

ऐ निर्बल आत्मा [illegible] ानेवाले, इसका कारण यह है कि तुममें इ [illegible] कि हमारी उत्पत्ति को उन सारी कल्पित क [illegible] मों से जुदा कर सको जो इसे चारों ओर से [illegible] र तुम्हारा बनाया हुआ मनुष्य, आगे पग र [illegible] वं, उन सब अशुद्धियों का उन्मूलन करने के लि [illegible] शक्षा की प्रदान की हुई हैं, अपनी परिपक्व [illegible] क्यों का प्रयोग करना भूल गया है । पृथ्वी [illegible] जिस प्रकार विज्ञान को कई शताब्दियाँ

लगी हैं क्योंकि सूर्य को प्राप्त करने के लिये यह एक तेजोराशि पर गिर पड़ी थी, उसी प्रकार जलती हुई झाड़ियों, आईसिस (Isis) या इल्युसिस (Eleusis) के रहस्यों, पर्वतों पर की ज्योतियों और गर्जनाओं से घिरे हुए ईश्वरीय आदेशों, प्रेत-विद्या और चमत्कारों के साथ, जिनको तुमने उनका निराकरण करने का साहस किए बिना ही लिपिबद्ध कर रक्खा है, आधुनिक तर्कपूर्ण स्वतंत्रता से आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि कभी-कभी इसको अतीत काल की माया रोक लेती है। इस माया के अनेक कट्टर पक्षपाती हैं, और यह एक दिन में दूर नहीं की जा सकती।

जो इतिहास इस नाम का सच्चा अधिकारी होगा उसका आधार सनातन न्याय, सनातन नीति और सनातन सत्य पर होगा; उसमें कोई भी मध्यवर्ती मार्ग और आत्मा की मिथ्या संधि नहीं होगी। यह निर्बलों और बलवानों के कार्यों, राजा और प्रजा के दोषों, साहसिकों और विजेताओं के अपराधों को एक ही तराज़ू में तोलेगा और एक-सी कठोरता से उन पर विचार करेगा।

अभी तक ऐतिहासिक आचरण इससे ऊपर नहीं उठा—

कारटोश (Cartouche) तीन सौ से अधिक मनुष्यों की सेना का संग्रह नहीं कर सका; इसलिये वह डाकू है......सिकंदर एक लाख लुटेरों की सेना इकट्ठी करने में कृतकार्य हो गया; इसलिये वह एक बड़ा प्रतिभाशाली मनुष्य है।

बोरबोन के उच्च कानिस्टेबल ने अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया, परंतु उसे सफलता न हुई; इसलिये वह राजद्रोही है। सीज़र ने अपने देश के राजाओं के सिरों को अपने पाँव के नीचे कुचल डाला; इसमें उसे सफलता प्राप्त हुई; इसलिये वह एक महापुरुष है। जानकारी देने के लिये ऐसे ज्ञान का कैसा विपर्यय है!

हम जो भविष्य के लिये एकता, उद्यम, शांति और स्वतंत्रता के युग के स्वप्न देख रहे हैं, हमें चाहिए कि अपने पुत्रों को इतना उच्च कर दें कि उनके मन में इस भ्रष्ट भूतकाल के लिये घृणा का भाव उत्पन्न हो जाय। हमें उनके पाप से इस इतिहास रूपी वारांगना को दूर भगा देना चाहिए जो केवल सदा से पाशविक शक्ति के सामने, भाग्यशाली विश्वासघातकों के सामने और जातियों के विध्वंसकों के सामने चापलूसी करते हुए लेट जाना ही जानती है। हमें उन्हें शिक्षा देनी चाहिए कि जो मनुष्य लोगों को वेतन-भोगी पहलवानों या मद में आए हुए बनैले पशुओं के सदृश लड़ाते हैं वे निंद्य प्राणी हैं और मनुष्य-समाज के लिये महामारी के समान हैं; ऐसे लोगों के माथे पर कलंक का टीका लगाना आवश्यक है। हम उन्हें यह सिखलाना जानते हैं कि जन्म-भूमि की वीरता से रक्षा करनेवालों को उन यशस्काम लोगों से कैसे पहचानना चाहिए जो अपना सिंहासन हत्या क्षेत्र पर बनाते हैं। ......हमें उनको सिखाना चाहिए कि युद्ध का कोई देवता नहीं, और बीस या तीस सहस्र मनुष्यों की हत्या करने के दूसरे ही दिन बाद ईश्वरस्तोत्र (Te-Deum) और ईश्वर-प्रार्थना (Hosanna) के गीत गाना केवल बर्बरता और नास्तिकता को ही प्रकट करना है। परमात्मा, जिसकी दया उसकी शक्ति के समान है, इन स्तोत्रों पर कभी कर्णपात नहीं करेगा।

आइए, हम उन सब कल्पित कथाओं को, सारे रहस्यों को और सारे चमत्कारों को जड़ से उखाड़ डालें जो सृष्टि-नियम के विरुद्ध हैं, जो मनुष्य-जाति की बाल्यावस्था में गढ़े हुए प्रभुता-प्राप्ति के साधन हैं, और जिनको मनुष्य-जाति की इस परिपक्व अवस्था में भी पुनर्जीवित करने का पर्याप्त उद्योग हो रहा है। आइए, हम उस सारी धार्मिक असहिष्णुता को दूर भगा दें जो ईश्वर और

उसके प्रत्यादेश को शक्ति के यंत्र बना देती है, ताकि हम केवल विवेक और तर्क का ही अनुगमन करें।

इस प्रकार हम आशा-क्षेत्र को गहरा खोदेंगे और उसमें बीजारोपण करके फ़सल तैयार करेंगे।

वह समय बड़ा शुभ होता है, जब मनुष्य को इसका भली भाँति ज्ञान हो जाता है।......यदि हम आनेवाली संतानों के सम्मुख शीलभ्रंश और ईश्वरकर्तृक-शासन द्वारा विनष्ट सर्वोत्तम सभ्यता का उदाहरण उपस्थित करना नहीं चाहते, तो यह आवश्यक है कि हम निःसंकोच होकर सदा के लिये उस अतीत काल को छोड़ दें जो अब तक केवल विध्वंस के लिये ही शक्तिशाली बना रहा है।

चौथा अध्याय

प्राक्कालीन वैदिक धर्म को ब्राह्मणों का बिगाड़ना—जातियों की सृष्टि—पहले लोगों की एकता को नष्ट करो फिर उन पर शासन करो।

ब्राह्मण-समाज के सदृश वीर युगों के लिये विशेष रूप से निर्मित, और प्रत्येक प्रकार के आक्रमणों का सामना करने में समर्थ दूसरी सभ्यता कभी इस जगत् में नहीं हुई। यह सभ्यता अपनी प्राचीन राजनीतिक शक्ति और गौरव खो बैठने पर भी अब तक जीवित जाग्रत है।

तब वे ब्राह्मण कहाँ से आए जो एक अतीव सुंदर और अतीव पूर्ण भाषा बोलते थे—जिन्होंने जीवन के प्रश्न का प्रत्येक रूप में इतना अनुसंधान, इतना अनुशीलन और इतना विवेचन किया था कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन दोनों कालों के लिये साहित्यिक, नैतिक और दार्शनिक विद्याओं में नवप्रवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं रही?—ये मनुष्य कहाँ से आए जो सब कुछ अध्ययन करने, सब कुछ गुप्त रखने, सब कुछ उलट-पलट कर देने, और सब कुछ पुनः बनाने के अनंतर समस्या के अंतिम समाधान पर पहुँचे थे, जिन्होंने अत्यंत प्रबल श्रद्धा के साथ सब कुछ ईश्वराधान कर दिया था और उस पर ईश्वरकर्तृक शासन-संबंधी समाज का एक ऐसा अनुपम भवन खड़ा किया था जिसमें, पाँच सहस्र से अधिक वर्षों के अनंतर, आज भी किसी प्रकार के नवप्रवर्तन और उन्नति की कोई गुंजाइश नहीं—जो अपनी संस्थाओं, अपने विश्वासों और अपनी स्थिरता पर गर्व करता है?

हम दिखाएँगे कि यह समाज सारे प्राचीन समाजों के लिये नमूना

था। उन्होंने इसकी न्यूनाधिक हू-बहू नक़ल की थी, बल्कि उन ऐतिह्यों को सुरक्षित रक्खा था जो क्रमिक प्रवासों द्वारों पृथ्वी की दिशाओं में पहुँच गए थे।

दैवी अधिकार का गौरव अपने हाथ में रखने की ब्राह्मणों की नीति का अनवरत अनुकरण होता रहा है। संसार के इतिहास पर दृष्टि डालते हुए, हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उस समय से परमेश्वर पुरोहितों के हाथ में एक विनेय साधन बना रहा है।

यह एक अटूट नियम था कि मनुष्य का जिस जाति में जन्म हुआ है वह उससे किसी भी निमित्त से, अपने किसी भी उज्ज्वल कर्म या सेवा से छुटकारा नहीं पा सकता था, अतएव उच्च पदाभिलाष की किसी भी स्फूर्ति से उत्तेजित न होने, उसकी शक्ति को प्रोत्साहित करने के लिये समुन्नति की कोई भी आशा सामने न होने के कारण हिंदू, जिसका प्रत्येक पग और प्रत्येक कर्म, जन्म से मरण पर्यंत, रीति-रिवाजों और नियमों द्वारा व्यवस्थित और नियमित था, स्वप्नों के, धार्मिक मूढ विश्वासों के, धर्मोन्माद के और देहात्मवाद के उस जीवन में डूब गया जिसमें वह अब तक पड़ा हुआ है, और जो उसको अब तक भी परिवर्तन और उन्नति का, उनको पाप और अपराध समझकर, विरोध करने के लिये विवश कर रहा है।

यह निर्विवाद है कि ब्राह्मणों ने इस प्रकार अपने लिये एक ऐसी जाति तैयार की जिस पर शासन करना बहुत सुगम था, जो दासत्व के जुए को उतार फेंकने में असमर्थ थी, प्रत्युत जिसमें शिकायत करने की भी शक्ति नहीं थी। अतः चिरकाल तक लोगों का उनके प्रति सम्मान और भक्ति का भाव बना रहा और वे ऐश्वर्य भोगते रहे। परंतु जिस दिन से उत्तरीय देशों के लोगों ने भारत के धन-धान्य और ऐश्वर्य को मत्सरता की दृष्टि से देखना आरंभ किया, जिस दिन से मुग़लों का टिड्डी-दल हिंदोस्तान पर आक्रमण करने लगा उस दिन

से अपनी रक्षा के लिये जो भी यत्न उन्होंने किए वे सब निष्फल होने लगे, क्योंकि जिन लोगों को उन्होंने ग़ुलामों का एक समूह बना दिया था, अपनी प्रभुता को चिरस्थायी करने के लिये जिनको वे हतवीर्य और हतोत्साह कर चुके थे उनको युद्ध के लिये उत्तेजित करने में वे किसी प्रकार भी सफलीभूत न हो सके। अकेले क्षत्रिय ही लड़ाई के लिये निकले परंतु सामान्य विध्वंस की घातक घड़ी को रोकने का सामर्थ्य उनमें न था। ब्राह्मण मंदिरों में बैठे देवता की आराधना कर रहे थे, परंतु देवता उनकी रक्षा करने में अशक्त था। उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति के गौरव को नष्ट होते देखा। धन्य हैं इन ब्राह्मणों के गौरव-प्रतिष्ठा के लिये किए हुए पूर्वोपाय।

भारत तब से आक्रमणों का क्रीड़ास्थल बना रहा है। इसके अधिवासी दासत्व के प्रत्येक नए जुए को बिना किसी अंतर्विलाप के धारण करते चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि जो उच्च वर्ण उन पर चिरकाल तक शासन करते रहे थे उनको परास्त करने में भी इन्होंने कदाचित् प्रसन्नता-पूर्वक सहायता दी है।

नारद-स्मृति का उपोद्घात नारद के एक निपुण शिष्य ने लिखा है। वह ब्राह्मणों की शक्ति का पक्षपाती था। उसमें वह लिखता है कि मनु ने ब्रह्मा के बताए धर्म-शास्त्र को एक लाख श्लोकों में लिखा। इसकी चौबीस पुस्तकें और एक सहस्र अध्याय बने। तब उसने यह ग्रंथ महर्षि नारद को दे दिया। नारद ने मनुष्यों के लाभार्थ इसका बारह सहस्र श्लोकों में संक्षेप कर दिया। यह उसने भृगु के पुत्र सौमति को दिया। सौमति ने मानव-जाति के अधिक सुविधा के उद्देश्य से उनको घटाकर चार सहस्र कर दिया।

मानव केवल सौमति का बनाया हुआ संक्षेप ही पढ़ते हैं। गंधर्व और गौण स्वर्ग के देवता मूल पुस्तक का पाठ करते हैं।

सर विलियम जोंस कहते हैं कि "इस समय मिलनेवाला मानव

धर्म-शास्त्र, जिसके सारे श्लोक २६८० हैं, सौमति की रचना नहीं हो सकता। सौमति-कृत मनुस्मृति संभवतः वृद्ध मानव अर्थात् मनु का पुराना धर्म-शास्त्र कहलाती है। यह आज तक पूरी-पूरी नहीं मिल सकी। हाँ, इसके अनेक वाक्य पुराणों में सुरक्षित पड़े हैं और टीकाकार प्रायः उन्हें उद्धृत करते हैं।"

ब्राह्मणों के लिये सबसे आवश्यक बात यह थी कि लोग कहीं जाति-पाँति के बंधनों को तोड़कर एक जाति न बन जायँ, क्योंकि फिर वे स्वतंत्र होकर उनके अधीन न रहेंगे। इसी उद्देश्य से उन्होंने केवल भिन्न-भिन्न वर्णों के पारस्परिक विवाहों का ही नहीं, प्रत्युत सब प्रकार के सामाजिक सम्मेलनों और मिलापों का भी निषेध कर दिया।

यहाँ तक कि अपने वर्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे वर्ण के साथ मिलकर ईश्वर-प्रार्थना करने, खाने या खेलनेवाले व्यक्ति के लिये निर्वासन और पदभ्रंश का दंड नियत किया गया।

मानव धर्म-शास्त्र, अध्याय १०, श्लोक ६६-९७—"नीच जाति का जो मनुष्य उच्च जातियों का व्यवसाय करके आजीविका कमाता हो, राजा को चाहिए कि तत्काल उसका माल और धन ज़ब्त कर ले और उसे देश से निकाल दे।

"अपने वर्ण के कामों को अधूरी तरह से करना दूसरे वर्ण के कामों को पूरे तौर पर करने से अच्छा है, क्योंकि जो मनुष्य दूसरे वर्ण का व्यवसाय करके आजीविका कमाता है वह तत्काल पतित हो जाता है।"

इस निषेध का प्रभाव जैसा नीच जाति के लोगों पर पड़ा वैसा ही ब्राह्मणों और राजाओं पर भी पड़ा। हम समझ सकते हैं कि ऊपर से आनेवाले बुरे उदाहरण को रोकने की और भी अधिक आवश्यकता थी।

मानव धर्म-शास्त्र, अध्याय १०, श्लोक ६१ इत्यादि—"यदि

ब्राह्मण अन्न का भोजन और नैवेद्य बनाने के स्थान उसे बेचने का व्यापार करता है तो वह और उसके वंशज कृमि बनकर कुत्ते की विष्ठा में पड़ते हैं।"

"नमक, मांस या लाख बेचने से वह पतित हो जाता है। दूध बेचने से वह एकदम गिरकर शूद्र-वर्ण में चला जाता है।"

"दूसरा कर्म निंदनीय माल बेचने से सातवें दिन की समाप्ति पर वह वैश्य हो जाता है।"

"थोड़ा सा हस्त-व्यवसाय करने से अपने आपको गिराकर शिल्पी बनाने से तो ब्राह्मण के लिये भीख माँगना अच्छा है।"

फिर उसी ग्रंथ का श्लोक १०२ इत्यादि देखिए—"विपदा में पड़ा हुआ ब्राह्मण सबसे ग्रहण कर सकता है, क्योंकि धर्म-शास्त्र के अनुसार पूर्णतया पवित्र दूषित नहीं हो सकता।"

"इन निषिद्ध अवस्थाओं में धर्म-ग्रंथ पढ़ाने, यज्ञ कराने, और दान लेने से ब्राह्मणों को कोई दोष नहीं; यदि वे महादुःखी हैं तो भी वे जल और अग्नि के तुल्य पवित्र हैं।"

"जो ब्राह्मण भूख से मर रहा हो वह चाहे जिससे भोजन ले ले उसे पाप नहीं होता जैसे कि आकाश को कीचड़ लिप्त नहीं कर सकता।"

"भूख से अति पीड़ित होने के कारण अजीगर्त्त अपने पुत्र शुनःशेप को मारने ही को था; फिर भी उसका यह कर्म कोई पाप न था क्योंकि वह क्षुधा से अपनी प्राण-रक्षा करना चाहता था!"

टीकाकार कुल्लूक भट्ट कहता है कि अजीगर्त्त ने अपने पुत्र को देवता पर बलि चढ़ाने के लिये एक खंभे से बाँध दिया। देवता ने उसकी आज्ञाकारिता से संतुष्ट होकर उसका हाथ पकड़ लिया। हम इस गाथा पर आगे चलकर दुबारा विचार करेंगे। यह बाइबिल के आरंभिक भाग में भी पाई जाती है।

"वामदेव ने, जो धर्म और अधर्म को भली भाँति जानता था,

एक बार क्षुधार्त होकर प्राणों की रक्षा के लिये अपवित्र जंतुओं का मांस खाने की इच्छा की, पर इससे वह पाप में कुछ भी लिप्त नहीं हुआ।"

"महातपस्वी भरद्वाज जब निर्जन वन में अपने पुत्र के साथ भूख से अति पीड़ित हुआ, तो उसने वृधु-नामक एक नीच कारीगर से अनेक गौओं का दान ग्रहण किया।"

"अभ्यागत विश्वामित्र मुनि ने भूख से दुखी होकर श्मशान के एक डोम चौधरी (चांडाल) से कुत्ते की एक जाँघ लेकर खाने का निश्चय किया था।"

इन वाक्यों से हम देख सकते हैं कि ब्राह्मणों के लिये उन सब व्यवसायों का कैसा कड़ा निषेध था, जिनसे लोगों की दृष्टि में उनके गौरव के घटने की संभावना हो।

राजाओं (क्षत्रियों) और अन्य वर्णों के लिये भी यही व्यवस्था थी। कर्म को बदलने का यत्न करने के समान और दूसरा कोई अपराध न था। इसका दंड इस लोक में पदभ्रंश और कलंक था और दूसरे लोक में, इस दोष से दूषित होने के कारण, पुनर्जन्म द्वारा अधम योनियों में पड़ना।

उस समय से भारत की उज्ज्वल सभ्यता रुक गई है। अविद्या ने जनता पर अधिकार जमा लिया है। लोग अपने स्वर्णमय अतीत काल को भूलकर विषय-वासनाओं के स्वप्न देख रहे हैं और अत्यंत निर्लज्ज, शीलभ्रंश रूपी पंक में लिप्त है। अपने प्रभाव को बनाए रखने के उद्देश्य से ब्राह्मण इस पाप-पंक में गिरने के लिये उत्तेजित करते हैं।

ब्राह्मणों ने प्राचीन दार्शनिक, नैतिक और धार्मिक ऐतिह्यों को केवल अपने लिये ही छिपा रक्खा। इनका अध्ययन करना उनके वर्ण का ही विशेषाधिकार बन गया। लोग उनका धर्म के लिये तो

पहले ही सम्मान करते थे, अब वे विद्वत्ता के लिये भी करने लगे। बस, फिर क्या था, राजाओं को अधीन रखने के लिये इस विशेषाधिकार ने पुरोहितों को एक साधन का काम दिया।

परमात्मा के वेद रूपी आदि ज्ञान की शुद्ध और पवित्र पूजा के स्थान में उन्होंने जन साधारण के लिये क्रमशः बहुसंख्यक श्रेष्ठ जनों की आराधना नियत की। इन श्रेष्ठ जनों को देवता नाम दिया गया। इनमें से कुछ तो जगदीश्वर और उसकी प्रजा के बीच दूत मान लिए गए और कुछ ऐसे ब्राह्मण समझ लिए गए जिन्होंने मनुष्य-जन्म में पुण्यमय जीवन व्यतीत किया था और मरकर ब्रह्म में लीन हो गए थे।

अब पवित्र दिव्यतत्त्व, ब्रह्म, की पूजा के लिये कोई मंदिर न रहा। उस तक अपनी प्रार्थनाओं को पहुँचाने के लिये मनुष्यों को उन छोटी-छोटी सत्ताओं के माध्यम का प्रयोजन माना जाने लगा जिनक' मूर्तियों से मंदिर और देवालय भरे पड़े हैं। इन सबमें बुद्ध सबसे पीछे आया। उसने संस्कार द्वारा तहस-नहस कर डालने की चेष्टा की। यह संस्कार लूथर के संस्कार से बहुत कुछ मिलता है।

प्राचीन हिंदू समाज पर यह सबसे अधिक भीषण आघात था, यह ह्रास और जरा के उस कार्य को पूर्ण करनेवाली चोट थी जिसके अध्ययन का अवसर हमें शीघ्र ही मिलेगा।

पुरोहितों ने अपने आपको सिद्धांत और रहस्य में बंद कर लिया। वे अपने आपको धर्म और नीति के एक-मात्र रक्षक और सच्चे उपदेशक जतलाने लगे। अपनी सहायता के लिये उन्होंने दीवानी क़ानून को बुला लिया। यह उनका दासवत् आज्ञाकारी बन गया। इसने विचार और बुद्धि की स्वतंत्रता को निर्वासित कर दिया। सारी इच्छाशक्ति और स्वाधीनता को विश्वास के नीचे झुका दिया, और अंततः इस प्रसिद्ध वचन की कल्पना की—अंधविश्वास अर्थात् विना ज्ञान के ही सिर

झुका देने—के साथ, विवेक-शून्य बुद्धि के साथ मंदिर की ड्योढ़ी में प्रवेश करने से बढ़कर परमात्मा को और कोई बात पसंद नहीं। हम अभी दिखलाएँगे कि मिसर, जूडिया, यूनान, रोम प्रभृति सभी प्राचीन देशों ने, वास्तव में, जाति-पाँति, सिद्धांतों और धार्मिक मंतव्यों में हिंदू-समाज की नक़ल की है। उन्होंने इसके ब्राह्मणों, पुरोहितों और लेविटियों (Levites) को उसी तरह ग्रहण कर लिया है जिस प्रकार कि वे पहले प्राचीन वैदिक समाज की भाषा, शासन-पद्धति और तत्त्वज्ञान ले चुके थे। इसी वैदिक समाज से उनके पूर्वज सारे संसार में सनातन ईश्वरीय ज्ञान के उज्ज्वल भावों का प्रचार करने के लिये रवाना हुए थे।

पाँचवाँ अध्याय

दलित जातियों की उत्पत्ति

प्राचीन भारत समाज का यह अधिकार स्वीकार करता था कि उसके सदस्य यदि उसके विरुद्ध कोई अपराध करें तो वह उन्हें दंड दे सकता है। परंतु उस अधिकार के विषय में उसकी भावना और उसका उपयोग करने की रीति वैसी न थी जैसी कि आधुनिक लोगों की है।

ब्राह्मण-स्मृतिकारों की सम्मति में मनुष्य की मानसिक और शारीरिक प्रकृति की कुछ एक आवश्यक शक्तियाँ ऐसी थीं जिन पर, ईश्वरीय कार्य का अपमान किए विना, इस विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं हो सकता था। उन विचारों के प्रयोग में, जिनका अध्ययन विचारकों तथा दार्शनिकों के लिये दिलचस्पी से ख़ाली न होगा, उन्होंने सारे दमन को दंड द्वारा व्यवस्थित किया था।

इस प्रकार मनुष्य की नैतिक स्वतंत्रता, अर्थात् उसकी विचार-शक्ति को दमन करने में असमर्थ होकर उन्होंने उसकी शारीरिक स्वाधीनता के सीमाबंधन का भी, उसे ईश्वर का वैसा ही कार्य मान-कर, समान रूप से निषेध कर दिया।

इससे वह दंड-विधि उत्पन्न हुई जिसे—यद्यपि इसका भी प्राचीन जातियों पर प्रभाव था—उस युग की सभी जातियों ने उसी परिमाण में ग्रहण नहीं किया और जो वर्तमान स्मृतियों मे सर्वथा लुप्त हो गई है। वेदों के उत्तर कालीन प्राचीन हिंदू-क़ानून निम्नलिखित दंडों का विधान करते हैं—

पहला मृत्यु ; दूसरा उच्च वर्ण से नीच वर्ण में गिरा देना ; तीसरा

सारी जाति से पूर्णतया अलग कर देना ; चौथा मुगदरों से पीटना और शिकंजे में कसना; पाँचवाँ शुद्धि और यज्ञ ; छठा अर्थ-दंड ।

ये प्राचीन व्यवस्थापक क़ैद करना बिलकुल जानते ही न थे । जहाँ परमेश्वर का कार्य आरंभ हो वहाँ मनुष्य का हाथ रुक जाना चाहिए ; अपने इस सिद्धांत के अनुसार वे बहुत ही कम अवस्थाओं में मृत्यु-दंड को धर्म सम्मत समझते थे । वे केवल उन्हीं अपराधों के लिये प्राण-दंड देते थे जो उनकी राजनीतिक संस्थाओं के मर्म का घात करनेवाले हों ।

मुगदरों से मारने तथा शिकंजे में कसने का दंड उन भिन्न-भिन्न अपराधों और दोषों के लिये दिया जाता था जिनमें सारी जाति से आंशिक या पूर्ण बहिष्कार, विशेष रूप से बुरी अवस्थाओं के कारण पर्याप्त प्रायश्चित्त प्रतीत नहीं होता था ।

अर्थ-दंड भी इन्हीं बातों पर विचार करके दिया जाता था ।

शुद्धि और यज्ञ केवल हलके और मुख्यतः धर्म-संबंधी अपराधों के लिये होते थे ।

इन दंडों में सबसे भयानक दंड सब वर्णों से पूर्ण बहिष्कार—मृत्यु था । कठोर-से-कठोर यातनाएँ भी इससे अच्छी समझी जाती थीं ।

जाति-बहिष्कार के साथ ही उसका धन-माल, उसका कुटुंब, उस के मित्र, और उसके सब नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार भी छिन जाते थे, न केवल उसके अपने ही प्रत्युत इस दूषण के अनंतर उत्पन्न होनेवाली उसकी सारी संतान के भी ।

सुनिए मनु उनका किन शब्दों में प्रतिषेध करता है—

"जिन लोगों पर कलंक का टीका लग गया हो उनके संबंधियों को, क्या मातृकुल के और क्या पितृकुल के, चाहिए कि उनका परित्याग कर दें और करुणा और आदर की कुछ भी परवा न करें ।"

"हमें उनके साथ रोटी और बेटी का संबंध नहीं रखना चाहिए। न उनके साथ मिलकर यज्ञ और पठन-पाठन ही करना चाहिए। सर्वसामाजिक बंधनों से अलग वे पृथ्वी पर दुःख झेलते फिरें।"

जाति से बाहर निकाल देने का यह दंड या तो राजनीतिक होता था या धार्मिक। इसकी आज्ञा राजा अथवा न्याय और दीवानी क़ानून की व्यवस्था करनेवाले उसके किसी राजप्रतिनिधि द्वारा होती थी, या पुरोहित, अर्थात् धार्मिक विचारपति, देवालय की ड्योढ़ी में एकत्रित जनता के सम्मुख अपनी व्यवस्था देता था।

जिस प्रकार अपराधी अपने अपराधों को स्वीकार करने के लिये नागरिक न्याय-सभा के सामने उपस्थित होता था उसी प्रकार उसे धार्मिक न्याय-सभा के सम्मुख उपस्थित होकर अपने दोष को उच्च स्वर से मानना पड़ता था जिससे पुरोहित उसके अपराध के अनुसार उसे दंड दे सके।

इस वाक्य को स्मरण रखना, आगे चलकर इससे काम पड़ेगा। इस दंड-नीति से, सारी जाति से सर्वथा बहिष्कृत कर देने से अभागे और सदा के लिये अपमानित अछूत नाम के मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। वर्णाश्रम को माननेवाले हिंदुओं के लिये अछूत अभी तक भी दुस्तर, घृणा की वस्तु बना हुआ है। बड़ा-से-बड़ा प्रबुद्ध हिंदू भी इस घृणा को नहीं छोड़ सकता।

इस कलंक को अमिट बनाने के लिये और इस विचार से कि कलंकित व्यक्ति किसी दूर देश में अपने कलंक को छिपाकर इससे छूट न जाय अपराधी के माथे या कंधे पर, उसके दोष के अनुसार, गरम लोहे से दाग दिया जाता था।

चतुर्वर्ण के लोगों में से उसको जल, अग्नि और चावल देनेवाले के लिये पतित होने का दंड था।

इस प्रकार जाति के भीतर एक और ऐसी जाति की रचना हुई

जो अशुद्धि के लिये प्रसिद्ध थी और जिसे व्यवस्थापक ने अतीव अपवित्र जंतुओं से भी नीच ठहराया।

इस पूर्व संस्कार को जड़ से उखाड़ डालने के लिये कई शताब्दियाँ लगेंगी। पुराने क़ानून, क्या दीवानी और क्या धार्मिक, यद्यपि दब चुके हैं, परंतु हम पुनः कहते हैं कि जनता पर जो उनका प्रभाव पहले था उसमें कुछ भी कमी नहीं हुई।

भारत के बड़े-बड़े नगरों में, योरपियन की आँख के नीचे जो व्यक्तिगत रूप से अछूत की रक्षा करके और उसके प्रति क़ानून की उपेक्षा और दुर्बलता को दूर करके, क्योंकि क़ानून ने अभी तक उसकी स्थिति को कोमल बनाने का साहस नहीं किया, बड़ा प्रसन्न होता है, और अनेक उद्योग धंधों में दैनिक मज़दूरी करते हुए अछूत वर्तमान समय में शायद अपने को कम दुःखी अनुभव करता हो। जहाँ वह अपने वासस्थान को छोड़ हिंदुओं के त्योहारों और उत्सवों में सम्मिलित होने नहीं जाता वहाँ उसका जीवन प्रायः शांत रहता है परंतु गाँव में उसकी दशा अभी तक भी दीन और दुःसह है।

जब वह ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखता है, तब उसे चटपट रास्ता छोड़ देना पड़ता है, और दस पग के अंतर पर, अपनी दीनता को दिखलाने के लिये, धूलि में लेटकर प्रणाम करना पड़ता है, नहीं तो ब्राह्मण के नौकर उसे पीट-पीटकर मार डालेंगे।

यदि वह वर्णवाले किसी मनुष्य को मिले तो उसे घुटनों के बल बैठ जाना और जब तक वह गुज़र न जाय विना उसकी ओर देखने के सिर को नीचे झुकाए रखना पड़ता है।

यदि उसके पास भोजन और अग्नि न हो, तो उसे ये वस्तुएँ कहीं से माँगनी या चुरानी होंगी। कोई भी हिंदू-घर उस के लिये खुला न होगा, कोई भी मनुष्य उसे चावल न देगा और किसी भी चूल्हे से उसे आग न मिलेगी।

मैंने इन दीन प्राणियों को दुःख और भूख से मंदबुद्धि, पीली ठठरी और अधमुआ बना देखा है। मैंने उन्हें साँझ की छाया में छिपकर किसी नदी या निर्जन मार्ग के साथ-साथ इस आशा से चलते देखा है कि कोई मृत जंतु मिल जाय और हम उसे सियारों और मांसाहारी पक्षियों से चुरा लाएँ।

मालूम नहीं क्यों स्वयं अछूत के मन में यह बात बैठ गई है कि वह पतित और निकृष्ट प्राणी है। इसलिये वह उद्योग-धंधे और धनोपार्जन द्वारा अपनी इस हीन अवस्था से बाहर निकलने का कभी यत्न नहीं करता। यह संभव है कि इन उपायों द्वारा, कालांतर में, वह अपने इस कलंक के टीके को धोने में कृतकार्य हो सके, क्योंकि भारत में स्वर्ण एक प्रधान देवता है, और योरप की तरह वहाँ भी बड़ी तीव्रता से इसकी पूजा होती है। अपने बंधुओं के साथ वाणिज्य-व्यापार करने का यत्न करने से बढ़कर अछूत के लिये और कोई सुगम उपाय नहीं हो सकता।

कई अछूतों ने खुले मैदानों में छोटी-छोटी दूकानें खोल रक्खी हैं। यहाँ वे अपने अछूत भाइयों के ही पास लकड़ी, तेल, चावल, गरम मसाले और नारियल आदि जीवन की आवश्यक वस्तुएँ बेचते हैं। यह व्यापार चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो बढ़ाया जा सकता है। सावधानता और मितव्यय से चावलों की टोकरी एक बोरा, तेल की ठिलिया एक बड़ा मटका और बाँस की झोपड़ी एक बड़ी दूकान बन सकता है।

इस रीति से इन अभागों के लाभार्थ, निश्चय ही, एक सामाजिक क्रांति आरंभ होगी, जिसके लिये दूसरे उपायों द्वारा यत्न करना चिरकाल तक असंभव होगा।

परंतु अछूत अपने आप ऐसे संग्राम में, जिसका फल उसे बहुत देर से प्राप्त होगा और जिससे उसके वंशज ही लाभान्वित हो सकते हैं, पड़ने का साहस कभी न करेगा।

इस दीन अशक्त का एक-मात्र विचार, उसका एक-मात्र अटल नियम यह है कि वह अपने माल के ख़ज़ाने को एकदम उड़ा देता है।

ज्यों ही उसे मालूम हो जाता है कि मेरे पास कुछ मास तक बे-काम बैठकर खाने के लिये पर्याप्त धन है, तो वह निश्चिंत होकर संतोष के साथ धूप में, सड़क के किनारे या नारियल की छाया में सो जाता है। फिर वह केवल पान या केले के पत्ते पर उबले हुए चावल खाने के लिये ही कभी-कभी उठता है।

जब उसकी पूँजी प्रायः समाप्त हो जाती है तो वह पहले गली के कोनों पर, या मंडी के पत्थर पर पूर्ववत् बेचने के लिये नया माल ख़रीदता है, यहाँ तक कि उसके लिये विश्राम का समय एक बार फिर आ पहुँचता है।

जिस प्रकार मध्यकाल में मिस्र-भूमि में इब्रानियों के साथ बर्ताव हुआ था, अछूतों के पास कोई ऐसा हज़रत मूसा नहीं जो उनको अधिक अनुकूल देशों में ले जाकर स्वतंत्र और पुनर्जीवित कर दे। वे वाणिज्य और कला-कौशल से कभी भी भारत के यहूदी न बन सकेंगे।

ऐसी ही आडंबरयुक्त दंड-नीति की बदौलत ब्राह्मण लोग प्रत्येक वर्ण को उसके लिये नियत विशेष सीमा के अंदर बंद रखने में समर्थ थे, और पतित कर देने का भय देकर अपने निरंकुश अधिकार का सम्मान सबसे कराते थे।

हम बताएँगे कि इस समाज-संगठन ने भिन्न-भिन्न प्राचीन जातियों को दाय में क्या दिया, और मिस्र, जूडिया, प्रत्युत यूनान और रोम पर इन वर्ण-विभागों का, अपराधी तथा उसके वंशजों के नैतिक तथा स्थायी अधःपतन द्वारा दमन का, उपरि एशिया की जातियों तथा संस्थाओं पर अहम्मन्य निरंकुश पुरोहितों के—रहस्यों, भविष्य-द्वाणियों, चमत्कारों और अनृतों द्वारा धर्म-बुद्धि को उत्पन्न करनेवाले

चालाक ब्राह्मणों के—अनवरत प्राधान्य का कैसा विपत्ति-जनक प्रभाव पड़ा है ।

"छल, कपट और झूठ से वे ऐसी ज़ंजीरें तैयार करते हैं जिन्हें कि जकड़ी हुई आत्मा तोड़ नहीं सकती ।"*

फूट डालो, दुर्वृत्त कर दो, और शासन करो !

यदि हम भविष्य की पुस्तक में से शीघ्र ही इसका निशान न मिटा देंगे, और स्वतंत्रता के नाम पर मनुष्य-जाति के शब्द-भांडार में से पुरोहित का नाम ही न काट डालेंगे, तो यह पुराना उपाय, जो ब्रह्मा के पुजारियों से मेंफिस (Memphis) और इल्यूसिस (Eleusis) के पुजारियों के पास और लेवाइटेंस (Levites) और अरुसपिसों (Aruspices) के पास पहुँचा था, आधुनिक जातियों को पराजित करके ह्रास और विनाश के गड्ढे में ढकेल देगा ।

---

*...Con simulazione, menzogne, e frodi, Legans i cor d' indissolubili nadi."

छठा अध्याय

मेनस (Manes) और पुरोहित—उनका मिसर पर प्रभाव

मिसर, अपनी भौगोलिक स्थिति से. अवश्यमेव उन देशों में से एक था जहाँ भारतीयों ने सबसे पहले बस्तियाँ बनाई थीं। इसने उस प्राचीन सभ्यता का प्रभाव सबसे पहले ग्रहण किया था, जिसका प्रकाश हम तक भी पहुँचा है।

जब हम इस देश की संस्थाओं का अध्ययन करते हैं तब यह सचाई और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। इन संस्थाओं में उत्तर एशिया की संस्थाओं का इतना अनुकरण पाया जाता है कि हम और किसी परिणाम पर पहुँच ही नहीं सकते। इस विषय में जो भारी प्रमाण दिए जा सकते हैं उनके सामने कट्टर-से-कट्टर विरोधी को भी सिर झुकाना पड़ता है।

मैं जिस बात को विशेषरूप से प्रमाणित करने की ज़िम्मेदारी लेता हूँ वह है प्राचीन काल की सभी जातियों की नागरिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का सादृश्य, सबमें मूलादर्श की एकता और भारत का उनका गुरु होना। मैं आगे चलकर यह भी सिद्ध करूँगा कि धर्म-संबंधी ईश्वरीय ज्ञान सबमें एक है, और वह भारत से सब स्थानों में गया है।

मिसर के अति प्राचीन काल पर ध्यान दीजिए। वहाँ का राज्य क्या था? व्यवस्थापक मनु या मेनस के प्रत्यादेश के नीचे भारत का जो राजप्रबंध था उसी की यह हूबहू प्रतिलिपि थी। मनु के नियमों को प्रवासी ऐतिह्य ने सुरक्षित रक्खा था और नवीन देश में मातृभूमि का-सा समाज बनाने के लिये उन्हें प्रचलित किया था।

मनु या मेनस का यह नाम, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, किसी विशेष व्यक्ति का नाम नहीं। इसका संस्कृत में आशय मनुष्य, विशेषतः व्यवस्थापक है। यह एक ऐसी उपाधि है जिसकी प्राप्ति की आकांक्षा प्राचीन काल में मनुष्यों के सभी नेता किया करते थे। यह उन्हें उनकी सेवाओं के बदले में दी जाती थी, या वे इसे अपने लिये सम्मान के तौर पर ग्रहण किया करते थे।

इस प्रकार, जैसा कि हम देख चुके हैं, भारत के पहले मनु का प्राचीन काल पर वैसा ही प्रभाव था जैसा कि जस्टिनियन के संकलित ग्रंथ (Digest of Justinian) का आधुनिक विधि-रचना पर है।

इस व्यवस्थापक की शिक्षा से मिसर देश में ईश्वरकर्तृक शासन और पुरोहित-शासन का होना स्वाभाविक था। भारतवर्ष के सदृश उस पर भी वैसी ही कड़ाई और आधिपत्य की वैसी ही कल्पना के साथ पूजा और धर्मसत्ता लगाई गई थी।

सबसे ऊपर और श्रेष्ठ पुरोहित (ब्राह्मण) था। वह सारी सामाजिक और धार्मिक सचाई का रक्षक तथा अभिभावक, राजा तथा प्रजा का शास्ता, परमेश्वर से उत्पन्न हुआ, ईश्वर द्वारा अभिषिक्त, वस्तुतः, सब मनुष्यों से उच्चतर और सब नियमों से ऊपर था। वह अपने किसी भी कर्म के लिये उत्तरदाता न था।

उसके नीचे राजा था। वह केवल उन्हीं शर्तों पर शासन कर सकता था कि वह पुरोहित (ब्राह्मण) के आदेशानुसार कार्य करे। फिर इनके नीचे, भारतवर्ष की तरह ही, हम देखते हैं कि वणिक् ऊपर के दो वर्णों को धन देने, उनकी विलास-सामग्री, उनके मनो-लौल्य, और उनकी विषयासक्ति का व्यय सहन करने के लिये बाध्य हैं। सबसे नीचे शिल्पी या काम करनेवाले थे, यथा कारीगर, घर का काम करनेवाले नौकर और दास।

विद्याओं का सीखना पुरोहितों ने एकमात्र अपना ही अधिकार बना रक्खा था। भौतिक विकारों को केवल वही समझते थे, और इसी से वे राजाओं तथा सर्व साधारण की आत्माओं को प्रभावित कर सकते थे। उन्होंने अपने लिये परमेश्वर, त्रिमूर्ति, सृष्टि-कार्य और आत्मा के अमरत्व की उच्च धारणाओं को वैसा ही बनाए रक्खा, और सर्व साधारण को भूतों, प्रेतों, मूर्तियों और बैल की पूजा करने दी। भारतवर्ष के सदृश मिसर में भी बैल पवित्र पशु समझा जाता था।

थीबीस (Thebes) और मंफ़िस (Memphis) के ये पुरोहित, जो विशाल और अंधकारमय मंदिरों में रहते थे, अपने उच्च अध्ययन को अथवा अपने आनंद को छोड़कर आडंबर के साथ विहार करने के लिये बाध्य होने पर करुणा या घृणा से कितने हँसे होंगे! अधंगव्य लोगों को उस समय कितना हर्ष हुआ होगा जब इन पुरोहितों को उस एपिस (Apis)-नामक बैल को छोड़ना पड़ा जिसको उन्होंने अपने बल के अभिमान में, और उनके द्वारा पददलित हीन जाति के प्रति घृणा के कारण परमेश्वर बनाया था!

इस बैल की मृत्यु से उनका कितना मनोरंजन हुआ होगा, जिसके अमरत्व के सिद्धांत को बनाए रखने के लिये उन्हें इसे पुनः स्थापन करना पड़ा।

उन्होंने अपने ज्ञान-निक्षेप को, जो उनकी सारी मान्यता का स्रोत था, कैसी अच्छी तरह युग-युगांतर तक सुरक्षित रक्खा! और जिन लोगों को उन्होंने दीक्षित करने की अनुमति दी होगी न-जाने उनको कैसी-कैसी भीषण शपथ देकर अपने अधीन किया होगा!

ब्राह्मणों की तरह मिसर के पुरोहित भी जिस श्रेणी में मनुष्य का जन्म हुआ, उसका उससे ऊपर उठना असंभव बताते थे; इस प्रकार

उन्होंने अपनी संस्थाओं पर भी उसी जड़ता और स्थिरता की छाप लगाई थी ।

दंड-नीति भी वही थी । लोगों को वर्णच्युत कर देने, अर्थात् आंशिक या संपूर्ण जाति-बहिष्कार की धमकी देकर क़ाबू में रक्खा जाता था ।

इससे भी अछूतों की एक वैसी ही निष्कासित जाति उत्पन्न हो गई, जिसका वर्णन हम एक विशेष अध्याय में करेंगे । सत्य घटनाओं पर विचार करने से हमारी सम्मति यह है कि इन अछूतों और अपांक्तों की जाति से ही इबरानी लोग उत्पन्न हुए जिनका उद्धार मूसा, मेनसस (Manses) या मॉइस (Moise)ने किया ।

मिसर के पुरोहितों को राजाओं की जिस जाति का मुक़ाबला करना पड़ा, वह भारत के क्षत्रियों के समान, जिन्होंने ब्राह्मणों के अधिकार का प्रतिरोध करने का कभी यत्न ही नहीं किया, कोमल और सुगमता से झुक जानेवाली न थी ।

शायद इसलिये कि अंत को ओसिरिस (Osiris) के पुजारी बहुत असहनीय हो गए, या फ़िरऔनों (Pharaohs) को एक ऐसी स्वाधीनता का स्वप्न होने लगा, जिसने उनकी आकांक्षा को भड़का दिया, या शायद काल का हाथ ही यह चाहता था कि ब्राह्मणों से आई हुई इन जराजीर्ण संस्थाओं को गिराकर इनके स्थान में नवीन संस्थाएँ तैयार की जायँ ; कई युगों तक इस निद्रा में रहकर, जिससे भारत अभी तक भी नहीं जागा, मिसर पुरोहितों और राजाओं के संग्राम से उठ बैठा । इन पुरोहितों और राजाओं ने अपने-अपने पक्ष के लोग एकत्र करके, तलवार और भाले से, उस अधिकार के लिये झगड़ा किया, जो केवल सबसे बलवान् का ही भाग था । लोग चिरकाल तक अपने ऊपर,बारी-बारी से, कभी

पुरोहितों के वंश का और कभी राजाओं के वंश का, रण-क्षेत्र में होने-वाले निर्णय के अनुसार, शासन देखते रहे।

संसार के रंग-मंच से प्राचीन मिसरी सभ्यता के लोप हो जाने का कारण निस्संदेह यही हुआ है। भारत के सदृश, ईश्वरकर्तृक शासन केवल दास ही उत्पन्न कर सकता था। जाति-पाँति के सभी विभागों की जड़ इतनी गहरी गड़ चुकी थी कि राजाओं की अंतिम विजय पर उन्हें यह नहीं सूझता था कि अतीत काल के संकीर्ण ऐतिह्यों को कैसे तोड़ा जाय और अपने लोगों पर भरोसा करने के लिये उन-का कैसे पुनरुद्धार किया जाय ? वे, सीसोसट्रिस (Sesostris) के सदृश, घूमते फिरनेवाले अस्थिर विजेता बन गए। उन्होंने अपने पड़ोसियों के प्रदेशों में आग और तलवार लेकर प्रवेश किया। परंतु वे किसी चीज़ को प्रतिष्ठित करने में अशक्त थे, क्योंकि जब राष्ट्र का प्रत्येक मनुष्य एक-व्यक्तित्व होने के स्थान केवल एक अकेली चीज़ बना दिया जाता है, तो व्यक्तिगत इच्छा की अनियंत्रित शक्ति उन्नति की गति के लिये सदा असमर्थ होती है।

आप चाहे पत्थर की विशाल मीनारें खड़ी कर लें, जिन्हें देखकर आनेवाले लोग दंग रहेंगे; झीलें खोद डालें, बड़ी-बड़ी नदियों के प्रवाहों को बदल डालें, गगन-भेदी प्रासाद बनवा लें, अपने विजयी रथ के पीछे लड़ाई में पकड़े हुए एक लाख दासों का समूह लगा लें; नीचाशय चाटुकार इतिहास आपके लिये यश के मुकुट तैयार कर देगा। जिन ब्राह्मणों, लेवीटियों और पुरोहितों को आप धन और सम्मान से नाकोंनाक भर चुके हैं वे आपकी स्तुति गाएँगे, भूमिगत जाति के सामने आपको परमेश्वर के उद्देश को पूर्ण करनेवाला एक ईश्वरीय दूत प्रकट करेंगे; परंतु विचारक और दार्शनिक के सामने, और, निरंकुश अधिपतियों के इतिहास के सामने नहीं, मानव-जाति

के इतिहास के सामने, आप एकतानता और स्वतंत्रता से होनेवाली उन्नति के कार्य में एक बाधक रोड़ा कहलाएँगे। यही उन्नति ईश्वर का बनाया हुआ लक्ष्य है और प्रत्येक जाति को इसकी प्राप्ति का यत्न करना चाहिए। आप केवल एक पाशविक घटना कहलाएँगे जो मनुष्य-प्रकृति की निर्बलता और राष्ट्रों के ह्रास-क्रम को अधिक स्पष्ट रीति से प्रकट करने के लिये इस संसार में आए।

इस प्रकार मिसर, ईश्वरकर्तृक शासन (पुरोहितशाही) के पतन के अनंतर, राजाओं और पुरोहितों के प्रभुत्व के अधीन, क्रमशः ह्रास और विस्मरण के गहरे गढ़े में गिर गया।

इस विनष्ट शासन का रिक्त स्थान भरने के लिये मिसर के पास कोई चीज़ न थी। इसलिये इसकी मृत्यु अनिवार्य थी।

इन दो प्राचीन देशों—भारत और मिसर—की तुलना से हम दोनों स्थानों में वही शासन, वही वर्ण-व्यवस्था, वही संस्थाएँ, उनके वही परिणाम देखते हैं, और भविष्यत् के इतिहास में हम इन लोगों को कहीं भी स्थान नहीं देते।

ऐसे सादृश्य के होते, मैं समझता हूँ, कोई भी मनुष्य, जब तक वह यह न कहे कि मिसर में दैवयोग ने ही सुदूर पूर्व की सभ्यता के नमूने पर एक सभ्यता रच डाली थी, या वह यह न कहे, जो कि इससे भी अधिक असंगत होगा कि मिसर ने भारत में उपनिवेश बनाया था और मनु ने मेनस (Manes) की नक़ल की थी, तब तक इस बात पर विवाद नहीं कर सकता कि मिसर की उत्पत्ति बिलकुल हिंदुओं से हुई है।

मैं समझता हूँ, ऐसी राय केवल उन्हीं लोगों की हो सकती है जिन्हें निषेध में आनंद आता है, या जो भारत से अनभिज्ञ हैं। उन्हें मैं केवल यही उत्तर दूँगा—तुम्हारे पास केवल एक ही उक्ति और

वासी आपत्तियाँ हैं जिन्हें मैं पहले सुन चुका हूँ; "तुम्हें कौन कहता है कि भारत ने मिसर की नक़ल नहीं की?" आप चाहते हैं कि इस उक्ति का ऐसा प्रबल खंडन किया जाय कि उसमें संदेह का लेश भी न रह जाय।

तर्कसंगत मार्ग का अनुसरण करने के लिये, भारत से संस्कृत को, जिससे दूसरी सब भाषाएँ बनी हैं, छीन लीजिए; फिर भारत में मुझे कोई बुर्ज (Papyrus), पत्र, कोई स्तंभाकार शिला-लेख, कोई छोटे आकार का मंदिर (Bass-relief) ऐसा दिखलाइए जो मिस्र-देशीय होने का प्रमाण दे रहा हो।

भारत का सारा बचा-खुचा साहित्य, विधि-रचना और दर्शन, जो काल और दुष्टों के अपवित्र हाथों का मुक़ाबला करता हुआ, प्राचीन भाषा में सुरक्षित, अभी तक भी वहाँ विद्यमान है, भारत से छीन लीजिए—फिर मुझे वे स्रोत दिखलाइए जिनसे मिसर देश में उनको नक़ल किया गया था।

यदि इच्छा हो तो हिमालय, ईरान, एशिया माइनर और अरब से बाहर जानेवाले प्रवासियों की उस बड़ी लहर पर कुछ ध्यान न दीजिए, जिसके चिह्नों का विज्ञान ने पता लगा लिया है। परंतु मुझे मिसर को उपनिवेश बनाते—अपने पुत्रों को भूमंडल में भेजते दिखलाइए। कौन-सी ऐसी भाषा और कौन-सी ऐसी संस्थाएँ हैं, जो मिसर ने संसार को दी हैं?

क्या हम नहीं देखते कि आदि युगों में मेनस (Manes) के मिसर—याजकीय मिसर—में वैसी ही संस्थाएँ थीं जैसी कि भारतवर्ष में थीं? जो ऐतिह्य इसे मिला था उसे क्रमशः भूल जाने के कारण उसके राजाओं ने पुरोहितों के जुए को गले से उतार दिया। समेटिकस (Psametieus) के समय से मिसर ने विशुद्ध ईश्वरकर्तृक शासन के आदर्श को छोड़कर उसके स्थान में राजतंत्र-शासन का आदर्श

स्थापित कर दिया, जो उस समय से नवीन सभ्यताओं पर शासन कर रहा है। क्या हम नहीं जानते कि बतलीमूसों (Ptolemies) के शासन-काल में वर्ण-विभाग रद्द किया गया था ?

मिसर का सारा गुण इसी में है, परंतु इसके अतिरिक्त उसमें अन्य गुण बताना भारी भूल है। प्राचीन देशों में सबसे पहला यही था जिसने सदूर पूर्व की उपज पुरोहितशाही का नाश किया, परंतु यह अपने आपको उस पतन से न बचा सका, जो पुरोहितशाही के विनाशक और दुष्ट प्रभाव ने उसके लिये तैयार किया था।

इसके अतिरिक्त, यदि हम विस्तार में जा सकें, यदि हम इस बात पर ध्यान न दें कि सिद्धांतों के सादृश्य, जो जातियों के अस्तित्व का आधार हैं, हमारे पक्ष का पर्याप्त रीति से समर्थन करते हैं, तो हम बड़ी सुगमता से प्रमाणित कर सकते हैं कि ईश्वर का एकत्व, जिसको मंफिस के पुरोहितों ने स्वीकार किया है, नफ़ (Knef), फ़्ता (Fta), और फ़्रे (Frê) जो कि सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले विशेष रूप से तीन देवता, मिसरी धर्म-विद्या में, त्रिमूर्ति के तीन व्यक्ति हैं, उन बातों का उज्ज्वल नमूना हैं, जो भारत से मिसर में पहुँची थीं, और जंतुओं, उदाहरणार्थ, वृषभ और क्रौंच की पूजा करना ऐसे मूढ़ विश्वास हैं, जो ऐतिह्य द्वारा भारत से वहाँ पहुँचे हैं। इस ऐतिह्य के मार्ग का पता लगाना बड़ा ही सुगम है। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि प्राथमिक परमाणु के रूप में प्रकृति, जिसे दीक्षित लोग बूटो (Bouto) कहते हैं और जो अंडे के उर्वर रूप में दिखलाई जाती है, वेद और मनु का अभिज्ञान-मात्र है। मनु सब पदार्थों के बीज की तुलना "स्वर्ण-सदृश चमकते हुए अंडे" से करता है।

संसर्ग की इन बड़ी-बड़ी बातों का दिखला देना ही पर्याप्त होगा। ये बातें हमारे सामने प्राचीन मिसर का समाधान भारत और ब्राह्मणों के प्रभाव से करती हैं, और जहाँ तक संभव है, तर्क से उस परदे के एक सिरे को उठाती हैं जो कि समस्त जातियों के जन्म-स्थान को अंधकार में ढाँपे हुए है।

सातवाँ अध्याय

मिनोस और यूनान

यूनान पर भारत के प्रभाव का सबसे अकाट्य प्रमाण यह है कि उस देश की भाषा संस्कृत से बनी थी। इस विषय में हम पहले ही बहुत कुछ कह आए हैं।

वास्तव में, देवताओं तथा उपदेवताओं के काल्पनिक तथा वीर-युगों और लोगों के वे सारे नाम, जो यूनान ने हमें दिए हैं ायः विशुद्ध संस्कृत हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि इस भाषा ाथा इसके वाक्य-विन्यास को बनानेवाले अधिकांश शब्दों की वही उत्पत्ति है। यदि इस विषय पर कोई विवाद चलाना चाहे, तो हमारे लिये यह दिखलाना बड़ा ही सुगम है कि यह वचन केवल एक गणित-संबंधी सत्य है और छाती ठोंककर सिद्ध किया जा सकता है। इसलिये हम यूनानी व्यवस्थापक का वर्णन केवल थोड़ी-सी ही पंक्तियों में करेंगे। वास्तव में इसका कोई भी लिखित ग्रंथ हम तक नहीं पहुँचा।

यह बात निर्विवाद है कि मिनोस का जन्म एशिया का था। यूनानी इतिहास बताता है कि वह पूर्व से क्रीट नगर में आया था। यहाँ लोग उसकी बुद्धिमत्ता को देखकर चकित रह गए। उन्होंने उससे विधि-रचना के लिये प्रार्थना की। तब उसने मिसर की यात्रा की और वहाँ की संस्थाओं का अध्ययन किया; एशिया, ईरान और सिंधु के किनारों ने बारी-बारी से उसे अपने ऐतिह्यों और प्राचीन विधि-रचनाओं (क़ानूनों) के विषय में पूछताछ करते देखा; तब वह क्रीट-निवासियों को अपना धर्म-शास्त्र देने के

या। इस धर्म-शास्त्र को, शीघ्र ही बाद को, सारे
कर लिया है।

इन भ्रमणों के पश्चात् और इनके बदले में ही उसे
मिला। इस शब्द के संस्कृत-धातु का अर्थ, जैसा कि
कह चुके हैं, व्यवस्थापक है। और हम समझते हैं कि
और एशिया में उसके भ्रमणों और पूर्व में उसका जन्म होने
कर करके हम उसको मनु के साथ, और मेनस (Manes)
, मिलाने में, और सत्य घटनाओं द्वारा प्रमाणित सम्मति को
करने में सुरक्षित हैं, क्योंकि उसने प्राचीन स्रोतों से उपदेश
था; उसने हिंदुओं और मिसरी व्यवस्थापकों के ग्रंथों से
उपदेश प्राप्त किया था; और उसने उस सम्मानार्थक उपाधि को
ग्रहण करना आवश्यक समझा था, जो लोगों ने कृतज्ञता के भाव
प्रेरित होकर उसके दो अग्रगामियों को प्रदान की थी।

हम बार-बार कह रहे हैं कि ये शब्द—मनु, मेनस, मिनोस,
और मूसा—कोई विशेष नाम नहीं, प्रत्युत ये प्राचीन व्यवस्थापकों की
उद्बोधक उपाधियाँ हैं, जैसा कि भारत के राजा क्षत्रिय, फ़ारस के
राजा कैख़ुसरो, और मिस्र के फ़िरऔन कहलाते थे।

जो प्रमाण हम इस पुस्तक के पहले अध्याय में दे चुके हैं, उन्हीं
के साथ संतुष्ट रहते हुए हम यह नहीं पूछेंगे कि यूनानियों
के उत्सव, उनके 'अपोलो' देवता की पुजारिनें और इल्यूसिस
(Eleusis) के रहस्य, जिनका पुरोहितों ने इतनी चतुराई से
व्यवहार किया था, जैसा कि हमारा दृढ विश्वास है, पूर्वी, देवदासियों
और ब्राह्मण-धर्म के रहस्यों से अभिन्न थे। इसके अतिरिक्त, यूनान,
जिस पर हिंदुओं के साहित्य, भाषा और दर्शन का इतना भारी
प्रभाव पड़ा था, अपनी काल्पनिक उत्पत्ति को शीघ्रता से भुलाकर
जल्दी ही अपने ओलिंपस—मूढ़विश्वासात्मक ऐतिह्य के लंपट

देवताओं—पर हँसने लगा, और, जैसा कि हम देख चुके हैं, उच्छृंखल विचार को परास्त करने के उद्देश्य से, दृढ़ता के साथ उस मार्ग पर चलने लगा, जो उसके लिये शास्त्रों ने खोल रक्खा था।

यदि इस प्रशंसनीय देश की शक्ति और जीवन-रस को सुखा देने के लिये रोम, अपने पाशविक आक्रमण के साथ, प्रकट न होता, तो स्वतंत्रता और उन्नति की वे सब समस्याएँ, जो अभी तक भी योरप को राज्य-क्रांतियों के साथ क्षुब्ध कर रही हैं, हेलास (Hellas) के पुत्रों द्वारा, स्वतंत्र तथा प्राचीन हिंदू-समाज के वंशजों द्वारा कभी की हल हो गई होतीं।

यद्यपि सेरीस (Ceres) के पुरोहितों और यूमोलपीडियों (Eumolpides) के परिवार का भी, जो कि साक्षात् लेवियों (Levites) की एक जाति थे, पूर्व काल में यूनान में बड़ा प्रभाव था, फिर भी यह प्रकट नहीं होता कि वे अपने लाभ के लिये जाति के शासन का अपहरण करने में कभी सफल हुए हों। यही एक मुख्य कारण था कि इस संकीर्ण भूमि में मानव-विचार का अच्छा विकास हुआ। इस देश ने, घर पर, ऐसे युग में स्वतंत्रता और प्रजातंत्र-शासन स्थापित किया था, जब कि सारी राजनीतिक और धार्मिक निरंकुश सत्ताएँ संसार को दासत्व की श्रृंखला में बाँधने के लिये एक दूसरे की सहायता कर रही थीं।

वास्तव में, हम देखते हैं कि हिपियस (Hippias) के पतन से लेकर मक़दूनिया और रोम की विजय के समय तक, एथेंस आधुनिक जातियों के सामने लोकप्रिय शासन का उदाहरण उपस्थित करता रहा है। इस शासन में स्वतंत्रता ने साहित्य, दर्शन और कलाओं की सारी महिमाओं को पूर्णता तक पहुँचाया था।

नागरिक, सार्वत्रिक मतदानाधिकार से, अपने अरकन (Archon),

अपने मजिस्ट्रेट और अपने कर्मचारी चुना करता था ; शांति और युद्ध का अधिकार, व्यवस्थापक शक्ति और प्रजा-तंत्र के सभी बड़े-बड़े स्वार्थों का विमर्श लोगों की साधारण सभा के हाथ में था । प्रत्येक स्वतंत्र मनुष्य को अपने मत तथा शब्द। द्वारा उस सभा की सहायता करनी पड़ती थी, अन्यथा उसके सारे अधिकार छीन लिए जाते थे ।

संसार में राष्ट्रीय बुद्धि का यह पहला प्रादुर्भाव था। इस समय तक लोगों को किसी एक प्रभु की मनमानी आज्ञाओं का पालन करना पडता था । इस नीच अधीनता का सभी समाजों पर शासन था ।

भारत पुरोहित के अत्याचार मे आर्त्तनाद करता हुआ मर रहा है। इस ऐतिह्य को दायभाग मे लेनेवाला मिस्र पुरोहित-शाही को गिराकर राजाओं के पंजे में पडने से नष्ट हो रहा है। और यूनान, पूर्व को, और उस याजकीय प्रभुत्व को स्मरण करके, जिसको वह त्याग चुका था, अधिक स्वतंत्र भूमि पर अपना विस्तार करने के लिये, उन्नति की एक और छलांग मारता है, और, दास के स्थान में नागरिक को बैठाकर, जाति का शासन जाति द्वारा प्रतिष्ठित करता है।

यही से अर्वाचीन भाव की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार दक्षिण से इन पहले हिंदू-देशांतर-गामियों ने, ईश्वरीय प्रत्यादेश और पुरोहित की चिरकालिक दासता के उपरांत, क्रमशः इस दासत्व के जुए को उतार फेंका, और स्वतंत्रता तथा बुद्धि के द्वारा उन्नति का युग आरंभ हुआ।

क्या कारण था जो उत्तर के मैदानों से और हिमालय से स्वदेश-त्यागियों की दूसरी लहर, जो योरप में स्कैंडिनेवियन, जर्मन और स्लाव जातियों (निस्संदेह भूमि की शुष्कता और नवीन जल-वायु की कठोरता से रुकी हुई) को लाई, सभ्यता को उतनी शीघ्रता से प्राप्त न कर सकी, जितनी शीघ्रता से कि उसे दक्षिण की जातियों ने

प्राप्त किया था, और एक दिन प्रातःकाल के सुहावने समय उनको नष्ट करने के लिये उन पर झपट पड़ी।

वनों के जंगली बच्चे, ओडिन (Odin) तथा स्कंद (Ska के उपासक लोग अपनी उन्नति के पौराणिक अभिज्ञान व चित रक्खे हुए थे; पूर्वीय ऐतिह्यों से भरे हुए उनके गीत कविताएँ उनकी जन्म-भूमियों और निरभ्र आकाशों के जीर्ण का स्मरण कराती थीं। सूर्य की नगरी, असगर्द, की तलाश में हुऐ वे रोम में आ पहुँचे—और इसके साथ ही प्राचीन सं का लोप हो गया।

नवीन संसार एक ऐसे प्रभुत्व के नीचे पंद्रह शताब्दियों से अ समय तक सोता रहा, जो प्राचीन प्रभुत्व से कुछ कम याजकीय कुछ कम कठोर न था। इसके बाद जाकर उसे कहीं यूनान रिक्थदान, बड़ी-बड़ी सामाजिक तथा राजनीतिक सचाइयाँ औ उज्ज्वल अभिज्ञान प्राप्त हुआ।

आठवाँ अध्याय

ज़र्दुश्त और फ़ारस

जो सुधारक फ़ारस देश में ईश्वर का दूत बनकर आया था, उसका नाम, फ़ारसी भाषा में, ज़र्दुश्त है। ज़ंद में उसे ज़र्तुश्तरो और पहलवी भाषा में ज़र्दुश्त कहते हैं। ये भिन्न-भिन्न उच्चारण प्राचीन संस्कृत नाम ज़ुर्यस्तर (Zuryastara) जो सूर्य की पूजा का पुनः प्रचार करता है; सूर्याग्नि?) के ही रूपांतर हैं। इसी से यह ज़र्दुश्त नाम निकला है। यह राजनैतिक तथा धार्मिक व्यवस्थापक की एक उपाधि-मात्र है।

उसकी संस्कृत-व्युत्पत्ति पर्याप्त रूप से प्रकट करती है कि (यहाँ तक इतिहास की साक्षी के अनुसार भी) ज़र्दुश्त उत्तर एशिया, अर्थात् भारत में उत्पन्न हुआ था। उसने अपनी आयु का एक बड़ा भाग ब्राह्मणों से भारत के धर्म तथा क़ानून को सीखने में लगाया। वह आप भी निस्संदेह ब्राह्मण था और ब्राह्मणों ने उसे दीक्षा दी थी। भ्रमण करते-करते वह फ़ारस में जा निकला। वहाँ उसने अतीव मूढ़ विश्वास-मूलक रीति-रिवाज देखे। उसने उनको सुधारने और उस देश को एक ऐसा धर्म देने का काम अपने ऊपर लिया, जो नीति और बुद्धि के अधिक अनुकूल था।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि ज़र्दुश्त भारत के मंदिरों और देवालयों से भागा हुआ था। वह जनता को उन सचाइयों और उस उच्च ज्ञान से लाभान्वित करना चाहता था, जिसको पुरोहितों ने केवल अपने लिये ही अलग कर रक्खा था। परंतु उनके डर से वह भारत में प्रचार नहीं कर सकता था। इसलिये उसने प्रचार

के लिये एक ऐसा देश ढूँढ़ा, जो प्रत्यक्ष रूप से अपेक्षाकृत उनके कम अधीन था।

वह महाराजा गुश्तास्प और इसफ़ंदियार की कचहरी में पहुँचा। उसने उन्हें ब्राह्मणों के प्रभाव से निकलने की रीतियाँ बताईं। आज तक उनका अभिषेक ब्राह्मण ही करते थे। उसने चतुर प्रलोभनों से उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। उसे अपने नवीन सिद्धांत का प्रचार करने और सारे ईरान, बल्कि सिंधु तक, अर्थात् ब्राह्मण-राज्य के ठीक सीमावर्ती धर्म-मंदिर तक अपने राजनियमों को चलाने की अनुमति मिल गई।

इसी प्रकार, पीछे से, लूथर ने जर्मन राजाओं को निरंकुश और कामचारी पोपों के दासत्व को उतार फेंकने की संभावना दिखाकर अपने सुधार-संघ में भरती किया था।

एक विटंबर्ग का बड़ा महंत (मँक) ही ऐसा था, जिसने अपने अग्रगामी की तरह, जनता की कल्पना को आश्चर्य-जनक पदार्थों और अद्भुत वस्तुओं द्वारा धक्का देने के स्थान, अपने आपको ईश्वर का दूत प्रकट करने के स्थान, अपने उद्देश की सफलता तर्क के नाम पर अपील करने में ही समझ रक्खी थी। निस्संदेह यदि वह कुछ वर्ष पहले जन्म लेता, तो सर्वसाधारण पर प्रभाव डालने के लिये वह अपने आपको रहस्य के दीप्ति-मंडल से घेरे रखने के लिये विवश होता—और केवल थोड़े-से दीक्षित व्यक्तियों के सामने ही रहस्य का परदा उठाता।

ज़र्दुश्त की हिंदू-उत्पत्ति इतनी निश्चित है कि स्वयं इतिहास हमें सूचना देता है कि ब्राह्मणों ने इस झूठे भाई के छोड़ जाने पर रुष्ट होकर, जिसने उनकी शक्ति को पहला घातक धक्का लगाया था, उसे बुला भेजा कि हमारे सामने आकर अपने संप्रदाय की व्याख्या करो। जब वे उसे इस जाल में न फँसा सके, तो उन्होंने एक भारी

सेना लेकर, पूर्वीय भारत से पश्चिमी भारत (ईरान) को, जो उनके आधिपत्य से निकल चुका था, पुनः जीतने के लिये चढ़ाई की। ज़रदुश्त ने उन्हें हार दी, जिससे उन्हें वापस लौटना पड़ा, और वह अपने नए काम को शांति-पूर्वक करता रहा।

ज़रदुश्त ने ब्राह्मण-प्रणाली को छोड़कर बहुत ही कम नई बातों की शिक्षा दी। उसने लोगों को जातियों (वर्णों) में बाँटा। इनके सिर पर, और राजाओं से भी ऊपर, उसने मग अर्थात् पुरोहितों को रक्खा। उसने सार्वजनिक और स्वकीय जीवन को सुव्यवस्थित किया, और अंततः एक ऐसी दंड-पद्धति ग्रहण की, जिसके सदृश कि हम भारत और मिसर में स्थापित हुई देख चुके हैं। इस दृष्टि से उसका धर्म-संशोधन केवल इतना ही था कि उसने उन अनेक मूढविश्वासों का परित्याग करके, जिनमें हिंदू-पुरोहितों ने जनता को गिरा दिया था, सबको वैदिक धर्म की, अर्थात् त्रिमूर्ति में ईश्वर की एकता की शिक्षा दी।

उसने परमात्म-तत्त्व, विशेषतः, उत्पन्न करनेवाली शक्ति को ज़र्वने-अकेरीनी (Zervane-Akerene) का नाम दिया।

जगद्धात्री शक्ति का नाम उसने उर्मुज़ और विनाश तथा पुनर्निर्माण-कारिणी शक्ति का नाम अहरिमन रक्खा।

यह ठीक हिंदू-त्रिमूर्ति है। उनके लाक्षणिक गुण और सृष्टि में उनके काम भी ठीक वही है।

इसने उन सब मूढविश्वासों को जड़ से नहीं उखाड़ा, जिनको वह, कदाचित्, तहस-नहस कर डालने का विचार रखता था; पहले-पहल वह स्वाधीन विचारक (नास्तिक) था, परंतु शीघ्र ही उसने अनुभव किया कि अभी इन विचारों के लिये समय नहीं आया, और जिस प्रकार की संस्थाओं की कल्पना मैंने कर रक्खी है, उनके लिये अभी जनता परिपक्व नहीं हुई। दुर्भाग्य से सदा प्रत्येक

सुधारक के पीछे उसके शिष्यों की एक ऐसी लैन-डोरी रहती है, जिनकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ उन्नति को रोकने और प्राचीन सिद्धांतों को बदल डालने का कारण बन जाती हैं।

मग शीघ्र ही, बाक़ी सब याजकीय जातियों की तरह, एक दीक्षित श्रेणी—एक इजारेदार श्रेणी—बन गए। वर्ण-विभाग ने उनके अधिकार के सामने जनता को झुकाने में सहायता दी, और जिस प्रकार भारत में हुआ था, जैसे मिस्र में हुआ था, लोगों के लिये, जिन्हें अन्य देशवासियों के सदृश ही यह भी मालूम न था कि आडंबर और भंडता से रहित पूजा क्या होती है, रहस्यों, यजनों और जुलूसों की आवश्यकता पड़ी। इसी से उन एक सौ पशुओं के भीषण बलिदानों और सूर्य तथा अग्नि के अमानुषी पर्वों की सृष्टि हुई, जिनको प्राचीन लोगों ने इतनी देर तक स्मरण रक्खा।

ज़र्दुश्त के शिष्य गुरुदेव के संबंध में बहुत-सी कथाएँ सुनाते हैं। उनमें से एक यह है कि एक दिन वह एक ऊँचे पर्वत पर बैठा ईश्वर की उपासना कर रहा था। उसके चारों ओर बादल गर्ज रहे थे और बिजली चमक रही थी। इनसे आकाश के नाना भाग हो रहे थे। ऐसे समय में उसे स्वर्ग में ले जाया गया। वहाँ उसने साक्षात् उर्मुज़ को पूर्ण ऐश्वर्य और समृद्धि में देखा। उर्मुज़ ने उसे वे सब शिक्षाएँ दीं, जो पीछे से उसने लोगों को बताईं।

ज़र्दुश्त भूतल पर वापस आते समय अपने साथ नोस्क (Nosk)-नामक स्मृति ले गया। यह उसने परमात्मा की आज्ञा से लिखी थी।

यह पुस्तक वेदों और हिंदुओं के पवित्र ग्रंथों की अनुचिंता-मात्र है। ये ग्रंथ ज़र्दुश्त ने, युवाकाल में, ब्राह्मणों से पढ़े थे।

इस प्रकार फ़ारस पर और सिंधु के सभी देशों पर भारत का प्रभाव एक ऐतिहासिक सचाई है। यहाँ ऐतिह्य, जो मिसर की

अपेक्षा कम अस्पष्ट है, धार्मिक और राजनैतिक संस्थाओं के सादृश्य से निकाले हुए सभी प्रमाणों में उन अति प्राचीन युगों के इतिहास की साक्षी जोड़ देता है, जिनमें हम पूर्व के भारत से पश्चिम के भारत तक, गंगा के किनारों से सिंधु के किनारों तक, ज़र्दुश्त के चिह्नों का पता लगा सकते हैं।

क्या अब हम समझ गए कि ये हिंदू-ऐतिह्य बड़े केंद्र से निकल-कर किस प्रकार अरब, मिसर, फ़ारस और एशिया माइनर द्वारा, कुछ रूपांतर के पश्चात्, जूडिया, यूनान और रोम में पहुँच सके ?

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि अपने पूर्ववर्ती मनु और मेनस के सदृश ज़र्दुश्त ने, उन लोगों में जिन पर शासन करने या जिनका उद्धार करने के लिये वह आया था, अपनी उत्पत्ति और अपना जीवनोद्देश्य दिव्य ठहराया था।

नवाँ अध्याय

रोम और उसके वर्ण

रोम और उसकी संस्थाओं की उत्पत्ति एशिया से हुई है—यह एक ऐसी सचाई है, जिसकी व्याख्या का बहुत कम प्रयोजन है। पुराण-कथा कहती है कि इटालस, ट्राय के पतन के उपरांत, पराजित ट्रोजनों के साथ एशिया माइनर से भागकर इटली देश में आ बसा, और उसने अपने नाम पर इसका नाम रक्खा। बाद को, उसी जन्म-स्थान से, कुछ यूनानी जातियों ने आकर बस्ती बनाने में सहायता दी।

लोग कहेंगे कि हम यहाँ जो प्रमाण उपस्थित कर रहे हैं, वे ठीक उन्हीं काल्पनिक और वीर-युगों से लिए हुए हैं, जिनकी धज्जियाँ उड़ाने की हम प्रतिज्ञा करते हैं; इसका उत्तर सुगम है। इस बात को मानकर कि ये काल्पनिक और वीर-युग हिंदुओं के और एशिया के ऐतिह्य-मात्र हैं, उनको सामान्य उत्पत्ति का अभिज्ञान स्वीकार करके, हम समझते हैं, उपनिवेशित पृथ्वी के प्रत्येक कोने में उपनिवेशी को पूर्व से आया बतानेवाले उपाख्यान का पता लगाना हमारे सिद्धांत की और भी पुष्टि करता है। और यदि इस उपाख्यान से ऐसे रीति-रिवाज और संस्थाएँ उत्पन्न हो गई हैं, जो उस संपर्क और उस उत्पत्ति-स्थान को और भी उत्तम रीति से प्रतिष्ठित करती हैं, तो क्या हमें यह समझने का अधिकार नहीं कि हमने इस विषय को यथासंभव पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित कर दिया है।

हम देख चुके हैं कि रोम अपनी शासन-प्रणाली के उज्ज्वल सिद्धांतों के लिये भारत का ऋणी है। यदि लैटिन और ग्रीक भाषाएँ, जैसा आधुनिक विज्ञान स्वीकार करता है, संस्कृत से

निकली हैं ; यदि, जैसा कि निर्विवाद है, रोमन ओलिंपस ग्रीक ओलिंपस से निकला है और ग्रीक ओलिंपस की उत्पत्ति भारत, फ़ारस और मिसर के रहस्यों में हुई है, तो इस सत्य को अधिक सत्य बनाने के लिये हम और क्या कर सकते हैं ?

क्या रोम में अपनी पूर्ववर्ती अधिक प्राचीन जातियों के सदृश वर्ण न थे ? यदि ये वर्ण-विभाग कम महत्त्व रखते थे और अधिक सुगमता मे विनष्ट हो गए थे, तो क्या हमें इसका कारण अधिक उर्वरा भूमि पर तरुण रुधिर का छनकर आना और जीवन की प्रयोजनीय वस्तुओं का कम आसानी से, निस्संदेह, अधिक परिश्रम और अधिक शक्ति के साथ, उत्पन्न करना नहीं ठहराना चाहिए।

क्या पुरोहितों, शिष्ट सभा-सदस्यों (Senators) कुलीन (Patricians) और प्राकृत जनों (Plebeians) के रूप में रोमन लोगों की यह रचना हिंदू-समाज के एक दुर्बल चित्र को नहीं प्रकट करती ? क्या नीच वर्ण से उच्च वर्ण में आना वैसा ही असंभव नहीं ठहराया गया था ? क्या हम, वास्तव में, इस नई सभ्यता के आरंभ में ही, जनता की सुव्यवस्थित पराजय और पतन के द्वारा आधिपत्य जमाने का ही कार्य-क्रम नहीं देखते ?

और यदि हम प्रश्न करें कि रोम ने इन संस्थाओं की बुद्धि कहाँ से प्राप्त की, तो हमें पता लगता है कि उसने अपने ऋषियों और अपने व्यवस्थापकों को यूनान, मिसर, बल्कि एशिया में चित्त-प्रबोधन के उस बड़े केंद्र की तलाश में भेजा था, जिसने पूर्व से समस्त प्राचीन जगत् पर प्रकाश डाला था।

इस समय ब्राह्मण-धर्म के जराग्रस्त ऐतिह्यों का सर्वत्र ह्रास हो रहा था। यह सच है कि बुद्ध को हिंदुस्तान से बाहर निकाल दिया गया, परंतु उसने ब्रह्मा के अनुयायियों को एक ऐसी चोट लगाई कि जिसके असर को वे दूर नहीं कर सकते। दुर्ग़त पश्चिमी

भारत और फ़ारस में क्रांति पैदा कर रहा था। मिसर में पुरोहित-शाही के दिन बीत चुके थे और राजाओं का युग आरंभ हो गया था। यूनान अपने धुँधले भूतकाल का परित्याग करके अपनी लोक-तंत्र विशिष्ट संस्थाएँ तैयार कर रहा था। यह स्पष्ट है कि पुरोहित और विशेष सत्वधारी श्रेणियों की शक्ति से रोम में इस अवस्था के पुनरुद्धार का जो प्रयत्न हुआ था, उसका परिणाम लगातार युद्धों और गृह-विद्रोहों के सिवा और कुछ न हो सकता था। इन कलहों की समाप्ति, जल्दी या देर से, तब ही हो सकती थी, जब सामाजिक और राजनैतिक समता हो। इस समता का स्वप्न और अभिलाषा लोगों को पहले से ही होने लगी थी।

उच्च श्रेणियों ने, अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिये व्यर्थ ही युद्धों और विजयों से लोगों की आँखों को चौंधियाने और उनकी शक्ति को लगाए रखने का यत्न किया। वे उस प्राण-दायिनी वायु के सामने, जो उन्हें नष्ट कर डालने की धमकी दे रही थी, हार मानने और क्रमशः सिर झुका देने के लिये विवश थे।

यद्यपि सामाजिक विभागों का लोप कर दिया गया, या उनके प्रभाव को जड़ बना दिया गया, किंतु रीति-रिवाजों और क़ानूनों में प्राचीन पूर्वीय ऐतिह्य के अमिट चिह्न कम नहीं हो गए थे। यहाँ तक कि आधुनिक जातियों में इन क़ानूनों और रीति-रिवाजों पर उनके उत्पत्ति-स्थान की छाप अभी तक भी मिलती है।

हम इन विचारों को लंबा नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त, क्या लैटिन भाषा उच्च स्वर से इस बात की घोषणा नहीं कर रही कि मैं संस्कृत से उत्पन्न हुई हूँ? क्या हमने शासन-पद्धति पर अपने पहले अध्यायों में उस देश पर भारत के प्रत्यक्ष और प्रबल प्रभाव को प्रमाणित नहीं किया?

दसवाँ अध्याय

भारत में वर्ण-अपचय की जस्टिनियम के क़ानून मे Capitis Minatio (नागरिक स्वत्वों के अपचय या ह्रास) के साथ और नैपोलियन-स्मृति मे नागरिक मृत्यु (Mort Civile) के साथ तुलना ।

हम हिंदू-पुरोहितों को, वैदिक सभ्यता के पतन (जो उनका अपना ही काम था) के उपरांत, अपने अधिकार की रक्षा के लिये और अपने आखेटों को उपकारक भय के रंग में रँग देने के आशय से, सारी जाति से, आंशिक या पूर्ण बहिष्कार के भीषण दंड की व्यवस्था करते देख चुके हैं । इससे अभागा कृतापराध पशु से भी नीच हो जाता था, क्योंकि पतित हो जाने और उसी के तुल्य बना दिए जाने के भय से उसके साथ कुछ भी सामाजिक संबंध नहीं रक्खा जा सकता था ।

यहाँ तक कि परिवार के बंधन भी तोड़ दिए जाते थे । निष्कासित व्यक्ति के बच्चे अनाथ हो जाते थे और किसी शिक्षक के पास भेज दिए जाते थे । उसकी स्त्री विधवा हो जाती थी, और यदि वह ऐसी जाति की हो, जिसमें विधवा-विवाह का निषेध न हो, तो वह पुनर्विवाह कर सकती थी । उस मनुष्य का वंश समाप्त हो जाता था; और, अंततः यदि उसे कोई मार डाले, तो नागरिक क़ानून मारनेवाले को कुछ भी दड न देता था । उसे केवल अपनी शुद्धि का धर्म-संबंधी संस्कार ही कराना पड़ता था; क्योंकि वह अछूत के स्पर्श से अपवित्र हो जाता था ।

निरंकुश पुरोहितशाही की यह संस्था अपनी जन्मभूमि भारत से बड़ी शीघ्रता से दूसरे देशों में चली गई । उन्होंने इसे प्रभुत्व का

एक अद्भुत साधन समझकर, बारी-बारी से, ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आग और पानी का निषेध सारी प्राचीन जातियों में एक न्याय-संगत और हितकर दंड समझा जाने लगा।

यह बता देना भी आवश्यक है कि इस कठोर दमन के प्रयोग में एक परिवर्तन भी किया गया।

इस प्रकार, भारत में तो पुरोहित का, या राजा का, स्वच्छंद और निरंकुश अधिकार, दोषों और अपराधों के लिये, धार्मिक तथा सामाजिक पापों के लिये, जाति-बहिष्कार की व्यवस्था देना था, परंतु हिंदू-प्रभाव में रँगी हुई भिन्न-भिन्न प्राचीन जातियों ने अत्यंत कठोरता के साथ, इस दंड का प्रयोग राजनैतिक तथा धार्मिक अपराधों, राजद्रोहों और सब प्रकार के अधिकार के विरुद्ध षड्यंत्रों तक परिमित कर दिया। व्यक्ति के विरुद्ध अपराध और अन्याय दूसरे क़ानूनों के अधीन रक्खे गए। परंतु इस अपवाद में मिस्र नहीं था। इसने इस नियम का वैसा ही कठोर और स्वच्छंद प्रयोग बनाए रक्खा। इसका कारण मालूम करना भी कुछ कठिन नहीं।

भारत के पश्चात् मिसर ही हमारे सामने ऐसे लोगों की मूढ़ धर्मभ्रष्टता और अपकर्ष का अत्यंत दुःखमय उदाहरण उपस्थित करता है, जिनके हाथ से सारे सामाजिक और राजनैतिक कार्य छीन लिए गए थे, जिनकी विचार-शक्ति भी किसी हद तक उनसे ले ली गई थी, क्योंकि वे जानने, कर्म करने और बोलने के अधिकार से वंचित किए गए थे; वे नए काम को आरंभ करने की शक्ति से शून्य कर दिए गए थे, इसलिये भोजन, विश्राम और ईश्वर-प्रार्थना के लिये नियत उनके घंटे लंबे, परंतु विनेय साधन थे—उन थोड़े-से निर्वाचित मनुष्यों की सारी मनोलोलताओं को तृप्त करने के उत्पादक यंत्र थे, जिन्होंने धार्मिक विचार, त्रास और मिथ्यावादों की सहायता से अपने आप को निर्वाचित किया था।

ज़र्दुश्त ने इस दंड को रहने तो दिया, परंतु आज्ञा कर दी कि इस-का प्रयोग केवल उन्हीं लोगों पर हो, जिन्होंने परमेश्वर और मनुष्यों की दृष्टि में कोई बहुत बड़ा अपराध किया है। इस प्रकार उसने इसे प्रायः असाधारण बना दिया। यूनान में [बहिष्कार (Ostracism) के नाम से, इसका प्रयोग केवल उन्हीं लोगों पर होता था जिनके राजनैतिक प्रभाव का डर रहता था] जल और अग्नि के निषेध की अवस्था, सिवा अस्थायी रूप के, बहुत कम दी जाती थी। और ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कोई विशेष नियम इसके प्रयोग की व्यवस्था करते थे।

भारत और मिसर के उदाहरण के अनंतर, रोम ने इस दमन नीति को अपने लिखित क़ानून में निर्दिष्ट कर दिया; और, क्योंकि पूर्वी धर्म-व्यवस्थापक मनु ने जाति से आंशिक या पूर्ण बहिष्कार को स्वीकार किया था, इसलिये रोमन शासन-प्रबंध ने इस दंड के दरजे नियत कर दिए। इनके नाम बड़ा, मँझला और छोटा ह्रास (Minutio Capitis) थे।

पहले से, नागरिक से सारे सामाजिक और राजनैतिक अधिकार, परिवार के सारे अधिकार छीन लिए जाते थे, और उसकी वही अवस्था हो जाती थी, जो सारी जाति से निष्कासित किसी मिसरी और हिंदू की होती थी।

जल और अग्नि का उसके लिये उसी रूप में और वैसी ही कड़ी रीति से निषेध होता था, जैसा मनु ने चावल, जल और अग्नि का किया है।

उसे दास-वृत्ति से भी अपना पेट भरने की आज्ञा न थी; उसको मार डालना कोई अपराध नहीं था।

दूसरे से, पिता और स्वामी के सभी स्वत्व छिन जाते थे, उसका अपने बच्चों पर कोई अधिकार न रह जाता था। वे स्वतंत्र हो जाते

थे, और उसका दायाधिकार उसके उत्तराधिकारियों में बाँट दिया जाता था।

तीसरा था छोटा ह्रास अपराधी को केवल न्यायाधिकार से और लोकतंत्र राज्य की सेवा से बाहर कर देता था। परंतु उसका पैतृक अधिकार और अपनी संपत्ति का स्वतंत्र विधान अखंड बना रहता था।

इस प्रकार रोम के लिखित क़ानूनों में लिए जाने से यह परि-कल्पन जैसा हम देखते हैं, साधारण क़ानून का एक दंड बन गया।

व्यक्तिगत पदभ्रंश द्वारा, और उस सारे के निर्दय अपहरण द्वारा जो परमात्मा के दिए हुए जीवन का सार है, दमन की ये क्रूर रीतियाँ पूर्व की ही उपज थीं; और ब्रह्मा तथा ओसिरिस (Osiris) के पुरोहितों को ऐसे कलक गढ़ते देखकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता। रोम पर प्राचीन जगत् का प्रभाव पड़ा था और उसने प्राचीन संसार का अनुकरण किया था—इस बात को मैं उसकी निंदा करने के लिये कोई पर्याप्त कारण नहीं समझता, परंतु जब मैं अपने आधुनिक स्मृतिकारों को हमारी स्मृतियों में इस जाति-बहिष्कार को लिखते, वस्तुतः, इस नागरिक मृत्यु का संविधान करते देखता हूँ, तो कोप से मेरे रोमांच हो आता है।

नागरिक मृत्यु ! क्या कोई विश्वास करेगा कि मुश्किल से पंद्रह वर्ष भी नहीं हुए, जब भारत के अछूत के सदृश, इस दंड के आखेट का नाम लेने के लिये, ऐसे भाग्यहीन व्यक्ति से थोड़ा-सा प्रेम करने के लिये, और उसके हताश हो जाने पर, अपनी काल-कोठरी में, किसी को स्मरण करके ही जीवन के थोड़े-से दिन काटने के लिये इस भूतल पर उसकी न कोई स्त्री, न कोई संतान और न कोई बंधु होता था ! क्या कोई विश्वास करेगा कि उसकी स्त्री को

दुबारा विवाह कर लेने और उसके बच्चों को उसकी लूट को आपस में बाँट लेने की अनुमति मिल जाती थी ?

सन्, ८६ बीत गया। हमने भी प्राचीन काल के इस भीषण रिक्थदान को स्पर्श करने का साहस न किया, जिसे उस याजकीय और धर्मोन्मत्त मध्यकाल ने सुरक्षित रक्खा था, जो जाति-पाँति की बाँट और पुरोहित के आधिपत्य द्वारा योरप में ब्राह्मण-धर्म की सभी निरंकुशताओं और सभी क्षीण पुण्यताओं को पुनः स्थापित करना चाहता था।

जनता के नाम पर, मनुष्य-समाज के नाम पर यश और स्मृति हो; बड़े-बड़े दुःख झेलकर प्राप्त की हुई उन्नति के इतिहास पर सम्मान और अनुचिंता हो, सनातन न्याय के नाम की, श्रेष्ठ प्रभाव की कीर्ति हो, जिसने सन् १८६३ में हमारी स्मृतियों में से प्राचीन दुराचार और पाप के इस कुत्सित स्मृति-चिह्न को मिटा दिया !

हम कह चुके हैं कि भारत में नागरिक मृत्यु, अर्थात् जाति से पूर्ण बहिष्कार की घोषणा या तो विशुद्ध नागरिक अपराधों के लिये विचारपति करता था अथवा धार्मिक पापों के लिये पुरोहित। मध्य-कालों में हिंदू-ब्राह्मणों का अनुकरण करने का यत्न करते हुए पोप-शासित रोम के लिये ऐसी रीतियों को ग्रहण करना निश्चय ही आवश्यक था। यह साधन उसके हाथ के उपयुक्त भी था। यदि उसे यह अपने विश्रुत पूर्वजों से दाय में न मिलता, तो उसे इसका आविष्कार आप ही कर लेना था।

बहिष्कार निरंकुश सत्ता का एक शस्त्र-मात्र था, जो सर्व-साधारण और राजाओं की पराजय और ब्राह्मणों की विजय के लिये ब्रह्मा के मंदिर में ग्रहण किया गया था। हमने मध्यकाल में इसे चलते देखा है, लोगों की संतानों को शाप देते—राजाओं के वंशों को कोसते देखा है।

हम सैवनारोला (Savonarola) को छठे एलेग्ज़ेंडर के कुप्रबंधों पर प्रकाश डालने के कारण सूली चढ़ते, और फ्रांस के धर्मात्मा रॉबर्ट को उसके मित्रों और अतीव स्वामि-भक्त नौकरों द्वारा परित्यक्त और एक धार्मिक भ्रांत बुद्धि के हाथ के नीचे घुटनों तक झुकते हुए देख चुके हैं।

हम श्रद्धा की जलती चिताओं पर सैकड़ों मनुष्यों की बलि चढ़ते और धर्म की वेदी को रक्त से लाल हुई देख चुके हैं।

कई युग बीत गए ; हमारे अंदर स्वाधीन विचार की उन्नति की जागृति-मात्र हुई है। परंतु हमें उस समय तक अनंत युद्धों की आशा करनी चाहिए; जब तक हमारे अंदर सारी पुरोहितशाही को स्वतंत्रता की कचहरी में घसीटने का साहस उत्पन्न न हो जाय।

ग्यारहवाँ अध्याय

देव-दासियाँ अर्थात् मंदिरों की क्वाँरी कन्याएँ—सर्व प्राचीन पूजाओं द्वारा सुरक्षित रीतियाँ—एथंस में 'भाव' खेलनेवाली स्त्रियाँ—डेल्फ़र की भाव खेलनेवाली पुजारिन (Pythoness) रोम में वेस्टल-नामक पवित्र पुजारिन कन्याए ।

इस अध्याय के विषयों द्वारा सुझाई हुई बातों पर हम संक्षेप से विचार करेंगे। ये बातें सर्व प्राचीन पूजाओं के पूर्ण अध्ययन का द्वार सुगमता से खोल देंगी। परंतु यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह हमारा उद्देश नहीं है।

हमने अपनी योग्यतानुसार यह सिद्ध कर दिया है कि शासन-प्रबंध और नैतिक तथा दार्शनिक विज्ञान द्वारा सारे प्राचीन समाज पर भारत का प्रभाव था। हमने प्रमाणित कर दिया है कि क्लीबता, ह्रास और प्राचीन सभ्यता के पतन का कारण सिवा इसके और कुछ नहीं कि उन लोगों ने धर्म-बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया, जिनका कर्तव्य इसे जनता के सामने विशुद्ध स्वर्गीय रूप में रखना था। हमने प्राचीन जगत् में व्यापक सभी बड़े-बड़े नियमों की कल्पना की एकता से श्वेतांग वंश की सभी जातियों की उत्पत्ति की अभिन्नता का प्रतिपादन कर दिया है। अब हम केवल इतना ही बताएँगे कि इन नियमों की अधिक परीक्षा करने से, सकल सापेक्ष विस्तार के साथ इनका अध्ययन करने से, उनसे उत्पन्न होनेवाले सभी परिणामों से हमें, उन विस्तृत विषयों को सुव्यवस्थित और आवश्यक रूप से परिवर्तित करनेवाले भिन्न-भिन्न लोगों की कल्पनाओं के होते हुए भी, संसर्ग की वही बातें, न्यायमंगत सादृश्य के वही विषय

मिलते हैं जो हिंदुओं की दूर की कल्पित कथाओं और उपाख्यानों तक पहुँचनेवाले पिता-पुत्र-संबंध को प्रकट करते हैं।

प्रारंभिक काल में देव-दासियाँ मंदिरों और देवालयों की सेवा के लिये चढ़ाई हुई क्वाँरी कन्याएँ होती थीं। उनकी संख्या जितनी अधिक होती थी उतने ही उनके काम भी बहुसंख्यक होते थे। उनमें से कुछ तो पवित्र त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—की द्योतक प्रतिमा के सम्मुख दिन-रात जलता रहनेवाली पवित्र अग्नि की रक्षा करती थीं। दूसरी, जुलूस के दिनों में, उस रथ के सामने नाचा करती थीं जिसमें या तो इस त्रिमूर्ति की प्रतिमा को या इसको बनानेवाले तीन व्यक्तियों की प्रतिमाओं को रखकर ग्रामों और देहात में घुमाया जाता था।

फिर कुछ देव-दासियाँ, उत्तेजक पेय से उत्पन्न होनेवाले विषम चित्तविभ्रम में, फ़क़ीरों और संन्यासियों को उन्मत्त बनाने या विस्मित जनता से फल, चावल, पशु और धन की एक प्रचुर राशि का चढ़ावा ऐंठने के लिये धर्म-मंदिरों में आकाश-वाणी सुनाया करती थीं। उस उत्तेजक पेय के रहस्य को ब्राह्मण लोगों ने अभी तक भी नहीं खोया है।

कई एक का काम पारिवारिक यज्ञों और पर्वों पर सुख और शांति के पवित्र मंत्रों का गान करना, और अपने प्रभु ब्राह्मणों के पास प्रत्येक प्रकार का दान लाना है। जनता में से प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इनको कुछ-न-कुछ दान दे। उनकी उपस्थिति उन अंत्येष्टि-संस्कारों पर भी आवश्यक थी जिनका, माता और पिता की मृत्यु पर और फिर प्रतिवर्ष उसी मृत्यु के दिन, पुत्र के लिये करना धर्म की दृष्टि से अनिवार्य था।

युद्ध या किसी अन्य महान् घटना के एक दिन पहले राजागण उन लोगों से परामर्श लिया करते थे जिनको परमात्मा की ओर से प्रत्यादेश मिलते थे, और उनके बताए हुए शकुनों के अनुसार बड़े भक्ति-भाव से कार्य करते थे। ये प्रत्यादेश सदैव इस प्रकार आरंभ होते थे—

"हे महाराजा दुष्यंत ! जिसकी शक्ति को सारा संसार जानता है, तू ब्राह्मणों को स्वर्ण के हौदेवाले पचास हाथी, और दो सौ ऐसे घोड़े दे जिनके गले में अभी जूआ न पड़ा हो।" इत्यादि।

या अन्यथा—

"हे महाराजा विश्वामित्र ! तू जिसका धन समुद्र को भर सकता है, यदि तू ऐसा पुत्र चाहता है, जो पिता के समान प्रतापशाली और उदार हो, तो ब्राह्मणों को इतना दान दे, जिससे बढ़कर और कोई दे न सके, इत्यादि ❀।"

संक्षेप में कहें तो कह सकते हैं कि ब्राह्मण का आराधन करो, ब्राह्मण को दान दो, क्योंकि यह जाति तृप्त होनेवाली नहीं।

कहने का प्रयोजन नहीं कि महाराजा दुष्यंत, अथवा विश्वामित्र ने ईश्वरीय प्रत्यादेश को संतुष्ट करने के लिये शीघ्र ही अपने आप को नष्ट कर डाला।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि ये हिंदू रीति-रिवाज स्वदेश-त्यागियों के साथ-साथ गए, और प्राचीन काल के सभी रहस्यों में स्त्रियों का नियोग इसी का फल समझना चाहिए।

मिसर की उपकल्पित कुमारियाँ जो देवताओं की मूर्तियों के सामने नाचा करती थीं, डेल्फी (Delphi) की भाव खेलनेवाली कन्याएँ, सीरीस (Ceres) पुजारिनें, जो आकाश-वाणी बताया करती थीं, रोम की पवित्र पुजारिन कन्याएँ जो पवित्र अग्नि की रक्षा करती थीं—ये सब भारत की देव-दासी की उत्तराधिकारिणी-मात्र थीं। इन-

---

❀ 'हे इँगलैंड के महान् लोगो जिनके धन से तुम्हारी श्रद्धालुता के सिवा और कोई नहीं बढ़ा, लंडन के मुख्य ब्राह्मण को एक करोड़ रुपया दो।' इस प्रकार पूर्व का अत्यंत निडर ब्राह्मण-धर्म अपने पश्चिम के अशंकाशील प्रतिनिधि के सामने फीका हो जायगा !

के गुण और कर्म आपस में इतने मिलते हैं कि किसी दूसरे परिणाम पर पहुँचना असंभव है।

स्त्री, कुमारी और पुजारिन का यह ऐतिह्य पूर्व से लिया गया है और हम प्राचीन काल की सभी जातियों को ज्यों-ज्यों वे मूढ़विश्वास और रहस्य के जाल से अपने आपको क्रमशः मुक्त करती जाती हैं, इसका परित्याग करते देखते हैं। अब यदि यह प्राथमिक जन्म-स्थान का उत्तरदान दिखाई देता है, तो इससे बढ़कर और कोई बात स्वाभाविक नहीं जान पड़ती कि इसका उस देश तक पता लगाया जाय जहाँ से कि उपनिवेश बसानेवाली जातियाँ रवाना हुई थीं।

प्राचीन काल की अन्य जातियों के सदृश ही इबरानी लोग भी इन विश्वासों से, जो उस समय सर्वत्र व्यापक थे, बच नहीं सके। और बाइबिल से ज्ञात होता है कि गिलबोआ की लड़ाई के सायंकाल सौल एंडोर (Endor) की जादूगरनी से परामर्श लेने गया। जादूगरनी ने उसे सम्युपल-नामक भविष्यद्वक्ता की प्रेतात्मा का दर्शन कराया।

हम तर्क, विचार और निषेध करें, परंतु हम बल-पूर्वक कहते हैं कि जगत् पर भारत के इस प्रभाव का हम खंडन न कर पाएँगे। यह प्रभाव पग-पग पर क्या बड़े-बड़े सिद्धांतों मे और क्या उनके प्रयोग की छोटी-छोटी बातों में पुनः प्रकट हो रहा है।

हम निश्चय से कह सकते हैं कि ये देव-दासियाँ, ये भाव खेलनेवाली स्त्रियाँ (Pythonesses), ये उपकल्पित कुमारियाँ, और ये पवित्र पुजारिन कन्याएँ (Vestals) प्राचीन काल में, भारत की तरह, प्रभुता जमाने का केवल एक और साधन थीं—बहुमूल्य चढ़ावों और पवित्र दानों की अपवित्र धारा को मंदिर की ओर आकर्षित करने के लिये दूसरे कपटों में एक और कपट की वृद्धि-मात्र थीं।

बारहवाँ अध्याय

सरल सिंहावलोकन

हमने प्राचीन सभ्यता पर भारत और ब्राह्मण-धर्म के प्रभाव की यह द्रुत आलोचना समाप्त कर दी है।

हमने इस प्रभाव का वर्णन दो प्रकार से किया है। एक तो इस तरह कि भारत-त्यागी लोगों ने जिन भिन्न-भिन्न भूमियों में जाकर उपनिवेश बसाए, वहाँ उन्होंने अपनी भाषा और अपनी प्राचीन सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं के अभिज्ञान का पेड़ भी लगाया। दूसरे इस प्रकार कि सभी ऋषियों और व्यवस्थापकों ने अपने ज्ञान को पूर्ण बनाने के लिये, सारे विज्ञान और सारे ऐतिह्य के मूल का पता लगाने के लिये, पूर्व की यात्रा की थी।

सब कहीं हमने प्रत्येक नव-निर्मित समाज के सिर पर पुरोहित के दारुण प्रभाव को अतीव बुद्धिहीन निरंकुशता और जनता का अति-निम्न पराजय और शीलभ्रंश उत्पन्न करते देखा है।

हमने दिखला दिया है कि प्राचीन जगत्, स्वतंत्रता के पद-चिह्न रखते हुए भी, भारत के सदृश, जिसकी वह उपज था, प्रारंभिक जरा-काल में ही मर गया। उसके इतना शीघ्र जीर्णावस्था को प्राप्त हो जाने का मूल-कारण धर्म-बुद्धि की भ्रष्टता से उत्पन्न होनेवाले जनता के मूढ़ विश्वास थे।

परमात्मा की एकता, त्रिमूर्ति और आत्मा के अमरत्व से संबंध रखने-वाली सारी श्रेष्ठ सचाई को ब्राह्मण और पुरोहित लोग जनता से छिपाकर रखते थे। इन लोगों ने अपनी जाति और अपने पारदर्शी पंडितों के प्रभुत्व को सुरक्षित रखने के लिये सर्वसाधारण में ऐसे-

ऐसे मूढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिए थे, जिनको मानने से आप उन्हें लज्जा आती थी।

निस्संदेह ज़र्दुश्त की इच्छा इन श्रेष्ठ विचारों का जनता में प्रचार करने की थी; परंतु उसके अनुयायियों ने उसे छोड़ दिया, और उसके सुधार का केवल इतना ही परिणाम हुआ कि याजकीय शक्ति का एक नवीन संस्कार हो गया।

बुद्ध भी, जो उसका पूर्ववर्ती था और जो यद्यपि अपने विचार की स्वतंत्रता के कारण ही भारत से निर्वासित किया गया था बाद को उसी तरह तिब्बत, चीन और जापान में जनता के वशीकरण और असहिष्णुता का चिह्न बन गया।

ये सुधारक अपने युग से बहुत आगे थे, और उनके भावों को समझनेवाले लोग अभी उत्पन्न नहीं हुए थे।

इस पुस्तक में आगे चलकर हम मूसा और ईसा के व्यवहार पर विचार करेंगे, और उसका समाधान कृष्ण के व्यवहार से करेंगे, जो हम प्रतिज्ञा-पूर्वक कहते हैं, न केवल भारत का, प्रत्युत समस्त भूमंडल का सबसे बड़ा दार्शनिक था।

यदि हमने सफलता-पूर्वक यह सिद्ध कर दिया है कि सारा प्राचीन जगत् भाषा, आचार, रीति-नीति और राजनीतिक ऐतिह्यों की दृष्टि से भारत की उपज-मात्र था, तो फिर यदि हम, दैवात् और न्याय-संगत रीति से, इस बात को प्रमाणित करने के लिये बाध्य हों कि आदि ईश्वरीय ज्ञान और सारे धार्मिक ऐतिह्य के स्रोत की खोज भारत में ही होनी चाहिए, तो कौन हमको दोष देने का साहस करेगा? जिस जाति ने फ़ारस, मिस्र, यूनान और रोम पर अपनी गहरी छाप लगाई, जिसने इन देशों को उनकी भाषा, उनका राजनीतिक संगठन और उनके क़ानून दिए, उसने क्या उसी प्रकार धर्म-बुद्धि न दी होगी?

जब यूनानी, लेटिन और इबरानी भाषाएँ संस्कृत से उत्पन्न हो सकती हैं, तो क्या यह संप्रदान-क्रिया वहीं समाप्त हो गई? यह बात मानी नहीं जा सकती।

जिस प्रकार ब्राह्मण-धर्म ने इन भिन्न-भिन्न देशों में सारे मूढ़ विश्वासों का बीज बोया था, और उनकी सहायता से जनता को धोके में डालकर उसे अपनी दासता के जुए में बाँधा था, उसी तरह मनु (Manou) और मेनस (Manes) अपने साथ विशुद्ध प्राथमिक ऐतिह्य—वेदों के ऐतिह्य—लाए थे। इनको इन्होंने पुरोहितों, लेवियों (Levites) और पारदर्शी पंडितों के लिये रख छोड़ा था। इबरानी और ईसाई समाजों के दो प्रवर्तक तत्त्ववेत्ताओं ने भी इन्हीं मूढ़ विश्वासों से प्रत्यादेश प्राप्त किया था।

हम दिखलावेंगे कि मूसा ने बाइबिल की पहली पाँच पुस्तकें—अर्थात् उत्पत्ति, निर्गमन, लैव्य व्यवस्था (Leviticus), गणना (Numbers) और व्यवस्था विवरण (Deuteronomy)—जिनका वह रचयिता समझा जाता है, कहाँ से निकाली थीं।

इबरानी सभ्यता, प्राचीन काल की दूसरी सभी सभ्यताओं के सदृश, भारत का केवल एक प्रतिबिंब, उस सामान्य जननी का केवल एक अभिज्ञान, थी, हमारे इतना प्रमाणित कर देने से जब मार्ग साफ़ हो गया, तब हमें बिना किसी भय के इस बात की आज्ञा है कि हम उस ईसाई तत्त्ववेत्ता के कार्यों की परीक्षा करें, जिसने इबरानी ऐतिह्य को रखकर हिंदू संस्कारक कृष्ण के आचरणों की सहायता से उसका संशोधन किया। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इस आचरण का अध्ययन उसने स्वयं मिसर और भारत की पवित्र पुस्तकों में किया था।

सारे ईश्वरीय प्रत्यादेश को सुबुद्धि, तर्क और ईश्वर की महत्ता के विरुद्ध समझकर जिस समय हम बड़े बल से उसको अस्वीकार करते हैं, जिस समय हम सभी अवतारों को क़िस्से-कहानी समझते हैं, तब

हमारे परिणाम से बढ़कर और कौन-सी बात स्वाभाविक, सरल और न्यायसंगत हो सकती है ?

क्या हमें यह न मालूम करना चाहिए कि सब जातियों को एकता में बाँधनेवाला कोई सामान्य सूत्र है या नहीं; क्या अतीत सभ्यताओं के इतिहास में विचार की सभी बातें एक दूसरे के साथ मिली हुई नहीं ?

क्या हमारे आधुनिक शाके की उन्नीस शताब्दियों में से प्रत्येक ने अपनी अग्रगति में अपने परवर्ती का समर्थन नहीं किया ? क्या आगे उठनेवाला प्रत्येक पग आश्रय पाने के लिये किसी पहले हो चुकनेवाली बात पर नहीं झुका ?

आज से तीन सहस्र वर्ष उपरांत, जब हमारे स्थान में दूसरे लोग पैदा हो चुके होंगे, जब दूसरी सभ्यताओं ने हमारी सभ्यता का स्थान ले लिया होगा, तब अन्वेषणकर्ता आज के इस स्वतःसिद्ध सत्य की घोषणा करेगा; वह हमारे युग के लिये पुनर्निर्माण का वैसा ही काम करेगा, जैसा कि प्राचीन युगों के लिये हमारी यह पुस्तक चाहती है ।

दूसरा खंड

पहला अध्याय

मूसा अथवा मौसे (Moise) और इबरानी-समाज

ईश्वरीय प्रत्यादेश—अवतार

दूसरे खंड के आरंभ में ही हमारे लिये सब ईश्वरीय प्रत्यादेशों के संपूर्ण निराकरण की घोषणा कर देना आवश्यक है, फिर ये प्रत्यादेश चाहे मनु, ज़रदुश्त, और मेनस के हों, चाहे मूसा के; कृष्ण और बुद्ध के हों, चाहे ईसा के।

इस इनकार के कारणों का बताना कठिन नहीं।

परमेश्वर ने, संसार की रचना करते समय, जगत् के उपादान-कारण को, भौतिक प्रकृति को, चरम नियम दिए थे। इनको न वह बदल सकता है और न बदलेगा ही। इसी प्रकार आत्मा अर्थात् बुद्धि अथवा नैतिक प्रकृति की सृष्टि करते हुए उसने इसको अपरिवर्तनशील नियमों के अधीन रख दिया। इन नियमों में थोड़ा-सा भी हेर-फेर करना न उसके माहात्म्य के उपयुक्त है और न उसके ज्ञान के ही।

उसने स्वतंत्र और ज़िम्मेदार मनुष्य के मन में दूसरे जीवन में अमरत्व के, पुण्य और पाप के, सद्गुणों और दुर्गुणों के उच्च विचार उत्पन्न कर दिए; उसे समझा दिया कि संसार की शासक एक सर्वशक्तिमान् सत्ता है। इसके उपरांत उसने अपने सृष्ट मनुष्य को इस भूतल पर अपने रहस्यमय अदृष्ट को संपादित करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया।

मेरा तर्क, हाँ, वह तर्क, जो स्वयं परमेश्वर का ही दान है, इस परिणाम पर पहुँचता है। परंतु मैं कम-से-कम वहाँ भौतिक और

नैतिक प्रकृति में कल्पना और सनातन ज्ञान का एकत्र पाता हूँ। इससे मुझे संतोष मिलता है, और मैं इसे समझ सकता हूँ।

मेरे लिये इससे बढ़कर और कोई ईश्वरीय ज्ञान नहीं।

मनु, कृष्ण, बुद्ध, मेनस, ज़र्दुश्त, मूसा और ईसा, जिन्होंने देवत्व का, अथवा अपने जीवनोद्देश के ईश्वरीय होने का, दावा किया, केवल मनुष्य ही थे, जिन्होंने लोगों को भली भाँति प्रभावित करने के लिये, चतुराई से, अपनी उत्पत्ति को छिपाए रक्खा और रहस्यों तथा अद्भुत बातों की सहायता ली।

आप मूसा को दैवज्ञ और ईसा को ईश्वर से उत्पन्न हुआ मानकर ही संतुष्ट हैं—

परंतु तब क्या आप यह भूल जाते हैं कि
मिसर ने मेनस (Manes) को माना था ?
कि फ़ारस ने ज़र्दुश्त को स्वीकार किया था ?
कि भारत ने मनु और कृष्ण का देवता-भाव से पूजन किया था ?
कि तिब्बत, तातार, चीन, जापान बुद्ध की पूजा करते हैं ?

और आपके दरवाज़े पर ही योरप का, एशिया का और अफ्रीका का एक भाग इस समय मुहम्मद के सामने सीस नवाता है ?

तब क्या आप यह भूल जाते हैं कि ये सब लोग, जिनकी संख्या आपसे कहीं अधिक है, आपके दैवज्ञों और आपके देवदूतों को वैसी ही घृणा से अस्वीकार करते हैं, जिस प्रकार आप उनके दैवज्ञों से इनकार करते हैं ?

तब फिर आप कौन हैं, जो अपने को सच्चा और उनको झूठा कहें ?

मैं दैवयोग से यहाँ या वहाँ उत्पन्न हो जाता हूँ; इसलिये दैवयोग ही मेरे विश्वासों की सत्यता अथवा असत्यता का निश्चय करता है।

जहाँ परमेश्वर मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लेता है, वहाँ वह इसे अस्वीकार कर देता है।

हाँ, मनुष्य ने अपने इष्टदेव को बहुत कुछ अपनी ही प्रतिच्छाया बना दिया है। उसमें अपनी सभी निर्बलताएँ, सभी त्रुटियाँ भर दी हैं। उसमें अपने समान सभी प्रकार की महत्वाकांक्षाएँ और असहिष्णुताएँ मान ली हैं। परम बुद्धि और परम न्याय के नाम पर हम ब्राह्मणों की जातियाँ और अछूतों की जातियाँ बनाते हैं। पूर्वोक्त के लिये हम भविष्य में पुरस्कारों का द्वार खोलते हैं, और शेषोक्त के लिये उनका निषेध करते हैं। छिः, छिः, यद्यपि राजनीतिक तथा सामाजिक विचार उन्नत भी हो गए हैं, परंतु धार्मिक विचारों की दृष्टि से हम अभी तक ब्राह्मणों के प्रभुत्व के युग में ही हैं।

इसी से मैं ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार नहीं करता; क्योंकि सारे मानवीय कलहों, सारे धर्म-संबंधी युद्धों, सारे मानुषी बलिदानों, और निरंकुश पुरोहितशाही की जलाई हुई सारी चिताओं का मूल-कारण यही है।

ईश्वर में विश्वास, पुण्य और पाप का ज्ञान, अमरत्व में श्रद्धा और अंतःकरण को उपदेष्टा मानना ही ईश्वरीय ज्ञान है।

उसके परे और जो कुछ है, वह अपनी निरंकुश सत्ता को छिपाने के लिये पुरोहित के स्वयं गढ़े हुए मूढ़ विश्वास के सिवा और कुछ नहीं।

अब अवतार के विषय में सुनिए।

यदि मैं भारत में उत्पन्न होता, तो मैं कृष्ण का अवतार मानता; यदि जापान या चीन में मेरा जन्म होता, तो बुद्ध को अवतार मानता; फिर योरप में जन्म लेने से क्या मेरे लिये ईसा को अवतार मानना आवश्यक है?

नहीं! मैं परमात्मदेव की इससे अधिक तेजस्वी और अधिक पूज-

नीय मूर्ति बनाता हूँ। यह नश्वर आवरण, कविता और उपाख्यानों के सभी समाधानों के होते हुए भी, न उसके भविष्यत् ज्ञान और न उसकी प्रज्ञा के ही योग्य है; उसको इस प्रकार अपमानित करने की धृष्टता मैं उन्हीं के लिये छोड़ता हूँ, जो इसका साहस करते हैं।

कृष्ण, बुद्ध, ईसा सबने मनुष्य-जीवन व्यतीत किया था, और परमात्मा ने, अन्य सारे लोगों की तरह, उनके सुकर्मों के अनुसार ही उनका विचार किया है।

यह बात उल्लेखनीय है कि इन लोगों में से कोई एक भी ईश्वर की संतान होने का दावा करता नहीं मालूम होता। फिर यह बात द्रष्टव्य है कि ये लोग सर्वसाधारण को अपने उदाहरण और शिक्षा का उपदेश देते हुए इस संसार से चल दिए। इन्होंने अपने सिद्धांतों को लिपिबद्ध करके चिरस्थायी नहीं किया। अपनी शिक्षाओं को सुरक्षित रखने का काम इन्होंने अपने शिष्यों पर ही छोड़ दिया।

मुझे इस बात के मानने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती कि उत्तराधिकारियों ने, जो अपने गुरु से भी अधिक चालाक थे, गुरु को परमेश्वर बना दिया, जिससे उनका अपना मार्ग साफ़ हो जाय, वे जनता के सामने अपने को ईश्वर का दूत प्रकट कर सकें, और इस प्रकार अपने ऊर्ध्वदृष्टि अधिकार को पवित्र बना सकें। यही कारण है, जो मैं सारे अवतारवाद से इनकार करता हूँ। क्या इसी के नाम पर पृथ्वी के चारों कोनों में—भारत, चीन, और योरप में—समान रूप से रक्त-पात नहीं हुआ था, और जलती चिताएँ नहीं खड़ी की गई थीं ?

हा ! यदि परमेश्वर के मन में कभी अवतार लेने का विचार आ सकता है, तो वह इन्हीं निकृष्ट समयों में आ सकता था,

जब उसके नाम पर संसार में लोगों को परम यातना दी जा रही थी। वह उन बूचड़ों को दंड देने के लिये अवश्य आता, जिन्होंने अपने को उसके नियम के परदे में छिपा रक्खा था !

जातियों ने क्रमशः अपने सामाजिक तथा राजनीतिक विप्लव कर डाले हैं; अब उनके लिये अपना धार्मिक उद्धार करना शेष है ।

दूसरा अध्याय

जीउस (द्युस् ?)—जेज़ीउस (Jezeus)—आईसिस (Isis)—
जीसस (Jesus)

जिस प्रकार मनु (Manou), मेनस (Manes), मिनोस (Minos) और मूसा (Moses) नाम के चार व्यवस्थापकों का, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, समग्र प्राचीन समाज पर पूर्ण आधिपत्य है, उसी प्रकार ज़ीउस (Zeus), जेज़ीउस (Jezeus), आईसिस (Isis) और जीसस (Jesus), ये चार नाम प्राचीन और अर्वाचीन समयों के सर्वधार्मिक ऐतिह्यों में प्रधान हैं *।

ज़ीउस (Zeus द्युस्) संस्कृत में परम देव परमात्मा का सूचक है ; यह सृष्टि के पूर्व निर्गुण और अव्यक्त ब्रह्म का विशेषण है। यह नाम अपने में परम सत्ता—ब्रह्मा, विष्णु, शिव—के सभी गुणों को प्रकट करता है।

ज़ीउस के इस अर्थ को, विना किसी परिवर्तन के, यूनानियों ने ग्रहण कर लिया। उनके लिये यह शब्द समान रूप से परमात्मा के विशुद्ध तत्त्व—उसकी गूढ़ार्थक सत्ता—को दरसाता था। जब वह अपने विश्राम से जागता है और क्रिया द्वारा निर्गुण से सगुण अवस्था में अपने को व्यक्त करता है, तो परमात्मा का नाम यूनानी देव-माला में ज़ीउस-पेटर (Zeus-Pater), अर्थात्, जूपीटर (बृहस्पति), परम पिता, स्रष्टा, देवों और मनुष्यों का स्वामी हो जाता है।

लैटिन-भाषा इस संस्कृत और यूनानी शब्द ज़ीउस को ग्रहण

---

* यह सारा वाक्य अँगरेज़ी अनुवाद में छोड़ दिया गया है।—सतराम

करते हुए इसमें केवल थोड़ा-सा लिखित परिवर्तन कर देती है; ज़ीउस का नाम डीउस (Deus) हो जाता है। इसी से स्वयं हमने दीऊ (Dieu द्यौः) शब्द निकाला है, जिसका आशय ठीक वही है, जो प्राचीन लोगों ने ग्रहण किया था।

वस्तुतः ईसाई-बुद्धि में परमात्मा (गॉड) सांकेतिक सत्ता का नाम है। इसमें त्रिमूर्ति के तीन व्यक्तियों—पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा—के सभी गुण सम्मिलित हैं।

मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि मैं न तो नामों की उन सम-ताओं को, न उन ऐतिहासिक तथ्यों को, न सभ्यताओं की उन अभिन्नताओं को और न भाषा के उन सादृश्यों को, जो मुझे इस परिणाम पर ले जाते हैं कि पूर्व में और भारत में हमारी जाति का जन्म-स्थान था, अपनी ओर से नहीं गढ़ रहा हूँ। मैं युक्ति और सत्य का अवलंब लेना चाहता हूँ, और किसी बात पर उसके पृथक् रूप में विचार करने का, इसकी व्याख्या उसी से या संयोग से करने का, और यह दिखलाने का कभी यत्न नहीं करता कि यदि मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति होती है, तो इस सचाई का नियत उपसिद्धांत यह है कि जातियाँ अपने से अधिक प्राचीन जातियों से उत्पन्न होती हैं।

मैं फिर कहता हूँ कि यह कोई नई शैली नहीं हैं। यहाँ केवल युक्ति के तर्क का इतिहास के तर्क पर प्रयोग किया गया है।

मैं इस पर बहुत अधिक हठ नहीं कर सकता। सब कोई स्वीकार करते हैं कि आधुनिक लोगों ने प्राचीनों की नक़ल की है, और आधुनिक लोगों ने यह मान लिया है कि उन प्राचीन लोगों ने पुरानी सभ्यता की मशाल को रोशन किया था। अस्तु, जल्दी या देर में, हमें निश्चय करना पड़ेगा, और स्वीकार करना पड़ेगा कि हमने जिस प्रकार प्राचीन जातियों का अनुकरण किया है, उन्होंने

उससे भी कहीं अधिक चापलूसी से भारत का अनुकरण किया था।

हमें अपनी शताब्दियों और उन लोगों की अतुल प्रशंसा को घटाकर संतुष्ट होना चाहिए, जो हमारे सामने सतत रीति से आदर्श रूप में उपस्थित किए जाते हैं, जिनका अनुकरण करनेवाले लोग तो थे, पर जिन्हें अपना कोई अग्रसर मालूम न था। निस्संदेह उन्होंने पूर्व से प्राप्त किए हुए आदि-प्रकाश की कीर्ति को उज्ज्वल किया था; परंतु उस कीर्ति की पूर्ववर्ती सभ्यताओं की उपेक्षा करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए।

हमें भारत का पता लगे अभी मुश्किल से एक शताब्दी हुई है। उन लोगों की संख्या बहुत ही कम है, जिनमें, उस देश में जाकर, उसके स्मृति-स्तंभों और हस्तलेखों का, जो सब-के-सब उसके आदि-युगों के अपरिमित ख़ज़ाने हैं, अन्वेषण करने का साहस हो। कुछ लोगों ने संस्कृत के अध्ययन में अपना जीवन लगाया है, और योरप में इसकी रुचि को बढ़ाने का यत्न किया है।

फल आशातीत हुआ है। परंतु अभी अन्वेषण और आविष्कार के लिये क्या कुछ बाक़ी नहीं रहता! हमने उस प्राचीन भाषा को खोज लिया है, जिसमें शायद आदि-मनुष्य ने बड़बड़ाहट की थी। कुछ अनुवादित खंडों ने हमें सूचित किया है कि परमात्मा का एकत्व, आत्मा का अमरत्व और हमारे सभी नैतिक और दार्शनिक विश्वास केवल कल ही नहीं बने थे। अतीत काल पर छाया हुआ अंधकार छिन्न-भिन्न होना आरंभ हो गया है। तब बढ़े चलो, सदा आगे बढ़े चलो। अंत में खोज प्रकाश को इतना निर्मल बना देगी कि फिर इनकार न हो सकेगा।

परंतु इसके लिये हमें शुद्ध विद्याओं की विजय के उद्देश्य से अवश्य आगे बढ़ना चाहिए; मिथ्या वासना, मायावाद और रहस्य

को घुसने नहीं देना चाहिए, केवल परमात्मा और तर्क को ही सिद्धांत मानना चाहिए, और यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि इस भूतल पर हमसे पूर्ववर्ती जितनी सभ्यताएँ थीं, वे अपनी उत्तरवर्ती सभ्यताओं को अपने विचारों तथा उदाहरणों का प्रभाव प्रदान किए विना ही लोकांतरित नहीं हो गई।

जब कभी यह विषय मेरे सामने उपस्थित होता है, तो मैं इसका और दूर तक अन्वेषण करने के लिये ठहर जाता हूँ, और उस सुदीर्घ पुनरुक्ति-जनित निंदा की कुछ परवा नहीं करता, जिसे ये असाधारण बातें मुझ पर ला सकती हैं।

मैं अज्ञानी और पक्षपाती लोगों की समालोचना का प्रतिवाद किए विना नहीं रह सकता, और इस पुस्तक में व्याप्त युक्तिसंगत सम्मतियों का विकास करने के लिये मैं असंदिग्ध श्रद्धा और भक्ति का व्यवहार करना चाहता हूँ।

यह पुस्तक स्वतंत्र विचार और तर्क के पक्षपातियों के लिये लिखी गई है, इसलिये मैं उनसे उच्च स्वर से कहता हूँ—

यदि आप मिस्र के आईसिस (Isis) के, यूनान के इल्यूसिस (Eleusis) के तथा रोम के वेस्टा (Vesta) के रहस्यों को, जलती हुई झाड़ियों और उन स्वर्गीय दूतों को मानते हैं, जो अब, चाहे हमें उनकी कितनी ही आवश्यकता क्यों न हो, हमारे सम्मुख उपस्थित होने का साहस नहीं करते, यदि आप यह मानते हैं कि किसी अतीत युग में मृतों को पुनर्जीवित कर दिया जाता था, बहरों, लंगड़ों और अंधों के शारीरिक दोष अलौकिक रीति से दूर कर दिए जाते थे, यदि आप राक्षसों, पिशाचों, बीलज़बुब (Beelzebub) और देवमाला के सभी पापात्माओं को मानते हैं, यदि आप देवों, फ़रिश्तों और सिद्धों में विश्वास रखते हैं, यदि आप इनको मानते हैं, तो आपको इस पुस्तक के पढ़ने का

कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं, यह आपके लिये नहीं लिखी गई।

यदि आप इनको नहीं मानते, तो मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनिए, और मेरी पुष्टि कीजिए। मैं केवल आपके तर्क के सम्मुख ही अपने अभियोग को विचारार्थ रखता हूँ। वही इसको समझ सकता है।

क्या आप समझते हैं, जिस युग का मैं स्वप्न देख रहा हूँ, यदि वह आ गया होता, यदि मैं एक ओर धर्मोन्मत्त लोगों को, "हम इसे मानते हैं; क्योंकि यह असंगत है" पुकारते, और दूसरी ओर अभिज्ञान और नीच मूढ़विश्वासों से प्रभावित स्वतंत्र विचार के कट्टर भक्तों को "मैं नहीं मान सकता" के साथ ही झट "फिर भी हम प्रमाणों का खंडन देखना चाहते हैं" कहते न देखता, तो मैं इस पुस्तक को लिखने का काम हाथ में न लेता?

अब तक भी हमारी यही स्थिति है।

हमें असंगत की असंगति को सिद्ध करने के लिये उसके साथ युद्ध करने का नीच कार्य करना आवश्यक है।

अपने अन्वेषणों के आरंभ में मैंने एक दिन एक युक्तिवादी से कहा—मेरा मन कहता है कि मूसा ने अपनी इंजील (बाइबिल) मिसरियों की पवित्र पुस्तक से बनाई, और उन्होंने उसे भारत से लिया था।

उसने उत्तर दिया—इसके लिये प्रमाणों की आवश्यकता है।

मैंने कहा—परंतु क्या आप नहीं जानते कि फिरऔन (Pharaoh) के दरबार में उसने पुरोहितों से दीक्षा ली थी? क्या तब यह परिणाम निकालना युक्तियुक्त नहीं कि इबरानी लोगों के लिये संस्थाएँ बनाते समय उसने उस प्राप्त किए हुए ज्ञान का व्यवहार किया था?

उसने उत्तर दिया—इसके लिये प्रमाणों की आवश्यकता है।

मैंने कहा—तो क्या आप उसे परमेश्वर का दूत समझते हैं ?

उसने कहा—नहीं, परंतु प्रमाणों का होना अच्छा ही है।

एँ ! मूसा तीस से अधिक वर्षों तक मिसर में अध्ययन करता रहा, और उसे अपने इबरानी होने का भी ज्ञान न था।

क्या इस सत्य घटना में आपकी बुद्धि को मेरी अभी प्रकट की हुई सम्मति के पक्ष में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं दिखाई देता ! आओ, तब हम अपने विचार को अस्पष्ट बना देनेवाली इस युग-परंपरा को मिटा दें।

मैंने कहा—यदि किसी योरपियन से मध्य-आफ्रिका की किसी जंगली जाति के लिये क़ानून और पूजा-विधि बनाने के लिये कहा जाय, तो क्या आप समझते हैं, वह स्वदेश में प्राप्त किए हुए ज्ञान का, जिन लोगों का वह पुनरुद्धार करना चाहता है उनकी क्षमताओं के अनुसार परिवर्तित और रूपांतरित करके, व्यवहार करने के स्थान में उस पूजन-विधि और उन नियमों को अपनी ओर से गढ़ने का यत्न करेगा ?

उसने कहा—ऐसी सम्मति निश्चय ही अयुक्ति सिद्ध होगी।

आपकी युक्ति निर्दोष है; परंतु विश्वास कीजिए हमारा बूढ़ा योरप अपनी तांत्रिक पूजा से प्रेम रखता है। यदि आप मूसा के विषय में कुछ कहते हैं, तो प्रमाण दीजिए, और प्रमाण दीजिए, और सदा प्रमाण दीजिए।

यही कारण है, जो वेदों और मनु के ग्रंथों की मूसा के ग्रंथों के साथ, कृष्ण की कृति की ईसा की कृति के साथ केवल तुलना करने की जगह और यह कहने की जगह कि यह उससे लिया गया है, मैंने इस सम्मति की पुष्टि में यह दिखलाना अच्छा समझा है कि समग्र पुरातनता का जन्म पूर्व में और भारत में हुआ था, और इसे ऐसी

उत्तम रीति से दिखाया है कि मेरे विपक्षियों के पास सारी बातों से इनकार करने के—जो दूसरे शब्दों में सब बातों को स्वीकार कर लेना है—सिवा और कोई विकल्प नहीं रह जाता।

इस प्रकार हम दिखा चुके हैं कि जो नाम सब जातियों ने परमात्मा को दिया है, वह संस्कृत शब्द ज़ीउस (Zeus द्यु) से निकला है।

एक दूसरा संस्कृत शब्द जज़ीउस (Jezeus), जो विशुद्ध परमात्मतत्त्व का सूचक है, निश्चय ही पुरातन काल के उन दूसरे बहुत-से नामों का मूल और मौलिक उत्पत्ति है, जिनको देवतों और प्रतिपक्ष मनुष्यों ने समान रूप से धारण किया था, जैसे मिसर की देवी आईसिस (Isis), जोसुए (Josue), इबरानी भाषा में जोसुआह (Josuah), जो मूसा का उत्तराधिकारी था, इबरानियों का राजा जोसियस (Josias), और जेस्युस (Jeseus) अथवा जीसस (Jesus), इबरानी में जिओसुआह (Jeosuah)।

जीसस या जीस्युस या जिओसुआह का नाम, जो इबरानियों में बहुत प्रचलित है, प्राचीन भारत में एक उपाधि थी, एक विशेषण था, जो सभी अवतारों के साथ लगाया जाता था, जिस प्रकार कि सभी व्यवस्थापकों ने मनु नाम ग्रहण किया था।

मंदिरों और देवालयों के पुजारी ब्राह्मण जीसस अर्थात् विशुद्ध तत्त्व या दिव्य प्रवृत्ति की यह उपाधि अब केवल कृष्ण को ही देते हैं। वैष्णव और ब्राह्मण-धर्म के स्वतंत्र-विचारक (नास्तिक) केवल कृष्ण को ही अक्षर और सच्चा अवतार स्वीकार करते हैं।

हम इन व्युत्पत्ति-संबंधी संपर्कों का, जिनके सारे महत्त्व को हम समझ सकते हैं, वर्णन-मात्र करते हैं; वे आगे चलकर एक बहुमूल्य पुष्टि बन जायँगे।

हमें इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि पक्षपात-पूर्ण समालोचना इस

मत का, जो इन भिन्न-भिन्न नामों की सामान्य उत्पत्ति मानता है, खंडन करने में अपना पूर्ण बल लगावेगी; परंतु वह उनके स्पष्ट सादृश्य को मिटाने में सफल न होगी। हमारे लिये इतना ही पर्याप्त है।

जो मनुष्य इन सादृश्यों को संयोग का (जो हताश युक्ति का बड़ा आश्रय होता है) फल बताते हैं, वे बताते रहें। निश्चय ही सभी विचारशील और स्वतंत्र प्रकृति के लोग हमारा समर्थन करेंगे।

तीसरा अध्याय

मिसर के पेरिया और मूसा

उपनिवेशी बननेवाली आधुनिक जातियों ने उस नवीन भूमि पर, जिसमें वे शक्ति और जीवन लाई हैं, अपने को हास्यास्पद आख्यानों से परिवेष्टित नहीं किया। किसी भी मनुष्य ने उनसे यह कहना आरंभ नहीं किया कि मैं परमेश्वर का दूत हूँ। जो प्रत्या-देश ईश्वर ने मुझे दिया है, वह मैं तुम्हें देने आया हूँ।

अब हम अपने कार्य के अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग पर पहुँच गए हैं। इस जलती हुई भूमि पर, जहाँ हम निर्भय होकर मूसा के यहूदी धर्म से अपने आधुनिक समाजों को प्राप्त सर्व मूढ़-विश्वासों और सर्व असंगतियों पर आक्रमण करनेवाले हैं; हम आलोचना का एक ऐसा भाव उत्पन्न करेंगे, जो दृढ़ और पक्षपात-शून्य होगा, जो सब पद्धतियों और सब अपरिहार्य विश्वासों से रहित होगा, और जो केवल सत्य का ही सम्मान करेगा।

वर्तमान काल में जिन बातों को असंभव होने के कारण हम छोड़ देते हैं, भूत काल में भी असंभव होने से हम उनका परित्याग कर देंगे।

जब कभी विचित्रता का युक्ति के साथ मुक़ाबला होगा, तो हम उसी अधिकार से उससे प्रमाण माँगेंगे, जिससे उसके पक्षपाती युक्ति से माँगते हैं।

जब हमें कोई असंगत मिलेगा, तो हम केवल इतना कहेंगे—तुम असंगत हो; जाओ, चले जाओ।

न मनुष्य के शरीर में और न उसकी मनःशक्तियों में ही कोई

परिवर्तन हुआ है। यदि वह प्राचीन और काल्पनिक समयों में ऐसी बातों को सच मान लेता है, जिन पर आज करुणा से उसे हँसी आती है, तो इसका कारण यह है कि उसमें सरल और युक्ति-संगत मत के लिये निर्भीकता नहीं, और वह आख्यान के उस उद्वेग का परित्याग करने में असमर्थ है, जिसके साथ जन्म से ही उसकी बुद्धि को ढक देना ठीक समझा गया था।

हमें पूरी तरह से मालूम है कि आधुनिक असहिष्णुताएँ किसलिये अपने सारे गर्जनों को तर्क के विरुद्ध झोंकती हैं, और इसकी जीतों का निराकरण करती तथा उन्हें अभिशापित करती हैं। इसका कारण यह है कि जिस दिन से निर्णय की स्वतंत्रता सभी मतों के लिये एक स्वीकृत नीति हो जायगी, उसी दिन से उनका शासन समाप्त हो जायगा; क्योंकि जिन क़िस्से-कहानियों और रहस्यमय अनुष्ठानों पर उनका ज़ोर है, उनका समाधान करना उनके लिये असंभव हो जायगा।

जाइए, आस्ट्रेलिया-निवासियों तथा स्वाधीन अमरीकनों से पूछिए कि वे बुद्ध, मनु, ज़र्दुश्त और मूसा का किस प्रकार स्वागत करेंगे।

यदि बुद्धि के विकास और निर्णय की स्वतंत्रता के कारण इन नवीन लोगों में ऐसी बातें उत्पन्न नहीं हुईं, तो क्या हमारा प्राचीन लोगों में इनकी उत्पत्ति का कारण जाति-पाँति की बाँट और जनता के पराजय तथा अविद्या को समझना युक्ति-संगत न होगा?

यह एक ऐसी मोटी सचाई है कि हमें इसको प्रतिष्ठित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

परमात्मा करे, हमारे भाई जो समुद्र पार करके एक ऐसे देश में चले गए हैं, जो अतीत काल की सारी अस्पष्टता से, सारी याजकीय निरंकुश सत्ता से रहित है, योरप की सारी शासन-पद्धतियों में

नागरिक अधिकार को धार्मिक प्रभाव से शीघ्र ही मुक्त करने में अपने उदाहरण से हमारी सहायता करें ।

जब तक इसको दूर न किया जायगा, किसी प्रकार की उन्नति का होना संभव नहीं । फिर ऐसी संधि के स्वप्न देखना तो और भी असंभव है, जो अब तक केवल विचार के पैरों में बेड़ियाँ डालने, जातियों को दास बनाने और राजों को अपने अधीन करने का ही काम देती रही है ।

उपर्युक्त बातें हम ब्राह्मण-धर्म के नीचे दबी हुई प्राचीन सभ्यताओं के शीघ्र वर्णन में देख चुके हैं । भारत के इस पौराणिक धर्म ने इन सब सभ्यताओं को दूषित किया था । इनको हम उन सब धार्मिक कल्पनाओं के अध्ययन से और भी अधिक स्पष्ट रूप में देखेंगे, जिनको यहूदिया (Judea) ने मिसर और भारत से उधार लिया था, और जिन्होंने, जैसा कि हम जानते हैं, आधुनिक समयों में उन्नति को रोकने का काम किया है ।

हम दिखा चुके हैं कि मिसर ने मेनस (Manes) अथवा मनु के द्वारा भारत से सामाजिक संस्थाएँ और क़ानून लिए, जिनका परिणाम यह हुआ कि लोग चार वर्णों में विभक्त किए गए । पहली श्रेणी में पुरोहित को रक्खा गया; दूसरी में राजों को; फिर वणिकों और शिल्पियों को । और, सामाजिक सोपान के सबसे अंतिम स्थान में किंकरों, प्रायः दासों को रक्खा गया ।

इन संस्थाओं और इसी दंड-नीति ने, भारत की तरह सारी जाति से बहिष्कृत लोगों की सहायता से, एक मिश्रित वर्ण, बाक़ी सबका उच्छिष्ट उत्पन्न किया, जो सदा के लिये अपवित्र और बहिष्कृत विघोषित होने के कारण क़ानून द्वारा अपने ऊपर अंकित अमिट धब्बे को कभी मिटा नहीं सकता ।

जाति के ये उच्छिष्ट, मिसर के ये पेरिया, मूसा द्वारा स्वतंत्रता

की आशा से फुसलाए आकर, इबरानियों के, जो बड़े गर्व के साथ परमेश्वर की जाति कहलाते हैं, जनयिता बन गए।

जब हम उस युग के सारे समाजों की, क्या समष्टि रूप से और क्या व्यष्टि रूप से, परीक्षा करते हैं, तब इस नीच जाति के पुनरुद्धार के विषय में और किसी परिणाम को ग्रहण करना असंभव जान पड़ता है।

यदि भारत में अछूत थे, तो यूनान में क्रीत दास (Helot) थे। यदि मिसर में अपांक्त थे, तो रोम में भी नीच जाति थी, जिसको उसने चिरकाल तक नागरिक के नाम से वंचित रक्खा।

गुलामों का रखना, चाहे विजय द्वारा और चाहे अपराधियों को, बल्कि उनके वंशजों को भी समाज-निष्कासन द्वारा पतित बनाकर हो, पूर्ण रूप से प्राचीन लोगों का अनुकरण था, और यदि हम इबरानियों को मिसर की निष्कासित जातियों के वंशज बताते हैं, तो यह इसलिये कि पुराने-से-पुराने ऐतिहासिक ऐतिह्यों को खोज डालने पर भी यह प्रकट नहीं होता कि वे युद्ध-विपाक से दासता की दशा में पतित हो सके हों, और जाति-रूप से उनकी उत्पत्ति केवल मूसा के समय से ही है।

परंतु हमें इस उत्पत्ति—जो युक्तिसंगत और प्राचीन सभ्यता की सामाजिक दशा के योग्य है—और उस उत्पत्ति में से, जो स्वयं मूसा बाइबिल की पहली दो पुस्तकों—उत्पत्ति और निर्गमन—में अपने लोगों की बताता है, एक को चुनना पड़ेगा।

तब हमें देखना चाहिए कि यह व्यवस्थापक कौन था। इस अन्वेषण से ऐसे निर्णायक प्रमाण मिल जायँगे, जिनका लगभग चार सहस्र वर्ष के व्यतीत हो जाने पर किसी ऐसे युग के विषय में दिया जाना संभव हो सकता है, जिसको अंधकार और अस्पष्टता से ढकने में सब प्रकार की क़िस्से-कहानियों ने कुछ कम भाग नहीं लिया।

स्वयं मूसा के कथनानुसार, जब इबरानी लोग इतने बढ़ गए कि जाति के अंदर जाति बन गई, और तत्कालीन राजा फ़िरऔन (Pharaoh) को उनसे भारी डर हो गया, तब उसने उनको नष्ट कर डालने का भरसक यत्न किया, और आज्ञा दे दी कि लड़कों को पैदा होते ही मार डाला जाय। एक दीन स्त्री, जो अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र की हत्या नहीं देख सकती थी, बालक को बेदमजनूँ की टोकरी में रखकर नील नदी के तट पर फेंक आई। फ़िरऔन की पुत्री दासियों सहित नदी पर स्नान करने आई। नन्हे-से बालक को पड़ा देखकर उसे दया आ गई। उसने उसे बचा लिया, उठवाकर अपने राजभवन में ले आई, और उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया। यह बालक मूसा था।

चालीस वर्ष तक वह मिसर के राजपरिवार में पलता रहा, और उसकी उत्पत्ति के विषय में उसे किसी ने भी कुछ न बताया। एक दिन उसे एक मिसरी को मारने के लिये, जो एक इबरानी से कुव्यवहार कर रहा था, विवश होकर मरुस्थली में जाना पड़ा। वहाँ ईश्वर ने उस पर उसका पूर्व-निरूपित जीवनोद्देश्य प्रकट किया।

मैं कट्टर-से-कट्टर पक्षपाती से पूछता हूँ कि क्या इससे यह परिणाम निकालना स्वाभाविक और तर्कसंगत नहीं कि मूसा को पुरोहितों ने पाला, और उसे शुद्ध ईश्वर-पूजा तथा उच्च श्रेणियों की विद्या सिखाई। उसके ज्ञानवान् होने का यही कारण था।

बाद को उसकी उत्पत्ति का पता लग जाने के कारण, जिसे उसकी रक्षा करनेवाली राजकुमारी ने छिपा रक्खा था, या जैसा कि वह आप ही हमें बताता है, एक मिसरी को मार डालने के कारण, जब वह फ़िरऔन के राजभवन से निकाल दिया गया, तब क्या प्रकोप और प्रतिहिंसा ने उसे उस जाति का उद्धार करने के लिये बाध्य न किया होगा, जिसमें उसका जन्म हुआ था?

तब उन भीषण दुर्भिक्षों में से, जो भूमि को उर्वरा बनानेवाली नील-नदी की बाढ़ों के अभाव से मिसर को नष्ट कर डालते हैं, अथवा प्लेग और सान्निपातिक ज्वररूपी उन विनाशक कीड़ों में से, जिनकी उन देशों में कमी नहीं है, किसी एक-से लाभ उठाकर, उसने अपने को तत्कालीन शासक के सामने एक ईश्वरीय दूत प्रकट किया, और उन व्याधियों को ईश्वर के कोप का फल बताया। वह राजा से हतभाग्य इबरानियों को उनकी दुःखित अवस्था से निकालने की आज्ञा लेने में सफल हो गया।

परंतु मैं तो इबरानियों के विद्रोह और स्थानांतर-गमन को मूसा और उसके भाई आरोन (Aaron) की चिरकाल की तैयार की हुई क्रांति समझता हूँ। आरोन मूसा की प्रत्येक कल्पना का अनुमोदन करता था, और मिसरियों को इन योजनाओं का केवल उस समय पता लगा, जब इनको दबाने का समय गुज़र चुका था।

फ़िरऔन के अपनी सारी सेना सहित लाल समुद्र में नष्ट हो जाने और भगोड़ों के उसी समुद्र पर से सूखे-पैर पार हो जाने को मैं चमत्कार और आविष्कार का संदिग्ध प्रमाण-विषय मानता हूँ।

हम यह कल्पना कर सकते हैं कि मूसा, जिसने अपने को परमेश्वर का दूत बताने के पश्चात् ये सब बातें लिखीं, उनको अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये, अपने बहुत ही अनुकूल, रहस्यमय परिवेश से परिवेष्टित करने की रुचा रखता था।

उसके सभी पूर्ववर्तियों ने अलौकिक और आश्चर्यजनक बातों से ही असभ्य और मूढ़-विश्वासी जनता को ठगा था। वह एक चतुर मनुष्य था, और उसका उद्देश्य अपने अधिकार पर ईश्वर की मुहर लगाना था, जिससे इसके विषय में किसी को संदेह करने का साहस ही न हो।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इन अशिक्षित जन-समूहों को, जो

कल दास थे और आज स्वतंत्र हो गए, जो उन पर लगाए जानेवाले किसी भी संयम के अधीन मुश्किल से ही रह सकते थे, उनका प्रतिग्रहण और पालन-पोषण करनेवाली उर्वरा भूमि की तलाश में मरुस्थली में से ले जाना कोई सुगम कार्य न था।

मरुस्थली बहुत बड़ी थी। किसी को, यहाँ तक कि स्वयं मूसा को भी यह ज्ञात न था कि कहाँ जाना है। असंतुष्ट जनों का असंतोष दिन-पर-दिन अधिक भयानक रूप धारण करता जा रहा था। इसलिये, उनको शांत रखने के लिये, किसी कार्य-क्रम का बनाना आवश्यक था। मूसा ने उनसे कहा—"हम उस भूमि को जीतने चले हैं, जिसके लिये हमें वचन दिया गया था।" इस पर उन सबने कूच जारी रक्खा।

दिवस, मास, वर्ष बीत गए; परंतु यह भ्रमणकारी जन-समूह मरुस्थली से बाहर न निकल सका। कभी वे क्रोध से पृथ्वी पर पाँव मारते हुए आगे जाते थे, और कभी फिर उसी मार्ग से लौट आते थे; ये अपांक्त लोग इस प्रकार थक गए। वे मिसर देश को छोड़ने पर पछताने और उस परमेश्वर की निंदा करने लगे, जिसका मूसा ने अपने को दूत बताया था। तब उन्हें एपिस-नामक वृषभ देवता याद आने लगा। उन्होंने पहले दिनों में पुरोहितों को संगीत और नृत्य के साथ इसका जुलूस निकालते देखा था। उन्होंने सोने या पीतल का एक वैसा ही वृषभ बनाया, उसको स्त्रियों की चूड़ियों और पुरुषों की ढालों से सजाया, और उसका पूजन करके प्रार्थना की कि अब हममें इन दुःखों को सहन करने की सामर्थ्य नहीं, कृपया अब इनकी समाप्ति कर दीजिए। मूसा अपने तंबू में अकेला, और अदृश्य था; शायद वह भी हताश था।

अकस्मात्, दिन ढलते ही, आकाश अंधकारमय हो गया, बिजली चमकने लगी, और घोर मेघ-गर्जन होने लगा।

यह काम करने का समय था। जन-समूह इन भौतिक चमत्कारों को सुनकर भयभीत हो गया। वे उन्हें समझ नहीं सकते थे। जल्दी से मुखिया प्रकट हुआ। उसके मुखमंडल पर दैव-ज्ञान की झलक थी। उसको देखते ही लोग सम्मान के भाव से शांत हो गए। उसने मूर्तियों को तोड़ डाला, और उच्च स्वर से गर्जकर कहा कि जगदीश्वर ने तुममें श्रद्धा की कमी और असंतोष देखकर तुम्हें यह दंड दिया है कि अपने अभिलषित देश में पहुँचने के पूर्व अभी तुम्हें और चलना पड़ेगा। इसलिये उन्होंने चलना जारी रक्खा। यह उसे समय मिल गया।

अंत को वे एक पर्वत-शिखर पर पहुँचे। वहाँ से उन्हें हरियाली से ढके हुए विस्तृत मैदान दिखाई पड़े। अब उचित समय था; कलह और क्लांति से चकनाचूर, जीवन की अवधि पर पहुँचा हुआ मूसा उच्चस्वर से केवल इतना ही कह सका —"वह देखो भूमि, जहाँ तुम्हें ले जाने के लिये परमेश्वर ने मुझे आज्ञा दी थी।" उसने अपनी बाँहों को फैलाया, मानो उसे अपने अधिकार में लाने लगा है— और इसके साथ ही उसकी मृत्यु हो गई। अपने कार्य को पूर्ण करने का भार वह अपने भाई तथा भक्त पर, जिसको उसने तैयार किया था, छोड़ गया।

अपने लंबे भ्रमणों में उसने एक धर्म-शास्त्र लिखा। इसमें उसने इन कल के लोगों का एक कृत्रिम भूतकाल ठहराया, और उन ऐतिह्यों तथा धर्म-ग्रंथों से प्रोत्साहित होकर, जिनका उसने मिसर में अध्ययन किया था, उसने परमात्मा तथा सृष्टि-संबंधी हिंदू-उपाख्यानों को पुनर्जीवित किया, पुरोहितों अथवा लेवियों (Levites) की व्यवस्था की, बलिदानों तथा उनकी रीतियों का विधान किया, और थोड़े-से नागरिक और धार्मिक नियमों में उस नवीन समाज की नींव रक्खी, जिसे उसके उत्तराधिकारी बनाने को थे।

इस प्रकार चमत्कार और कल्पना-सृष्टि के वस्त्रों को उतारकर और सबसे बढ़कर अपनी युक्तियों की सफलता के लिये मूसा द्वारा परमेश्वर के साथ निरूपित अयोग्य कार्य का अस्वीकार करके मैं इबरानियों के पलायन के ऐतिहासिक ऐतिह्य को और उनके उस देश में आगमन को, जिसको उन्हें जीतना था, स्वीकार करता हूँ।

इसके अतिरिक्त, क्या यह बहुत ही सरल उपाख्यान नहीं, जो सारे पुरातन स्वदेश-त्यागियों पर, सारी प्राचीन सभ्यताओं के उत्पत्ति-स्थान पर लागू हो सके ?

सब कहीं आप एक व्यवस्थापक, एक ऐसा मनुष्य पाइएगा, जो ईश्वर-प्रेषित होने की प्रतिज्ञा करता है, और जो अपनी प्रतिभा तथा स्वयं-निरूपित उत्पत्ति की दुहरी मान्यता के द्वारा लोकसमूह को मिलाने और उसे अधिकार में रखने में सफलता-लाभ करता है। मनु, मेनस (Manes), बुद्ध और ज़रदुश्त ने इसी प्रकार अपना अधिकार जमाया और अपना जीवनोद्देश्य प्रतिष्ठित किया था।

क्या लोग कहेंगे कि मैं आख्यान के स्थान में आख्यान रख रहा हूँ ? नहीं, यह बात नहीं; क्योंकि मैं प्राचीन इबरानी इतिहास की केवल अतीत स्पष्ट बातें ही लेता हूँ। मेरी समझ में वही प्रामाणिक मानी जानी चाहिए।

मैं केवल गुह्य और ईश्वर-प्रकाशित बातों से ही इनकार करता हूँ, जैसा कि मैंने भारत, मिसर, ईरान, यूनान और रोम में किया है। मैं न एक देश के काव्यमय और पवित्र उपाख्यानों को मानने और न दूसरे देश के वैसे ही उपाख्यानों को न मानने का ही अधिकार रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

जातियों के सभी पहले संस्थापकों के कृत्य की अभिन्नता और एकता ही, जो धर्म-बुद्धि को उनके प्रभुत्व का आधार बनाती है, मेरे विचार की अदूषणीय शक्ति है। और, यह मानना पड़ेगा कि प्राथमिक

लोगों की सरल बुद्धि पर यही धर्म-बुद्धि अतीव दृढ़ अधिकार स्थापित करती है। प्रत्येक व्यवस्थापक अपने धर्म-शास्त्र का संबंध परमेश्वर से बताता है—प्रत्येक धार्मिक तथा नागरिक जीवन के लिये विधि-रचना करता है। सभी जनता को श्रेणियों में बाँटते और पुरोहित को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। अंततः, सभी, चाहे वे पहले-पहल अपने को अवतार बताते हों, अथवा अपने उद्देश को ईश्वर का काम बताते हों, अपनी मृत्यु और अपने जन्म को बड़ी सावधानी से रहस्य के आवरण से ढक देते हैं।

मनु का अंत कैसे हुआ, इसका भारत को कुछ भी पता नहीं। चीन, तिब्बत और जापान बुद्ध को स्वर्ग में पहुँचा देते हैं।

ज़र्दुश्त को सूर्य की एक किरण उठा ले गई, और मूसा को एक फ़रिश्ता उठाकर मुआब-उपत्यका में ले गया। वहाँ वह अपने लोगों की दृष्टि से अंतर्द्धान हो गया। उन लोगों को कुछ भी पता नहीं कि पृथ्वी के किस कोने में उसकी हड्डियाँ आराम कर रही हैं। लोगों का विश्वास है कि जिस परमात्मा ने उसे भेजा था, वह उसी के पास लौट गया। निर्दोष बुद्धि मूसा के विषय में केवल इतना ही कह सकती है। मैं कह चुका हूँ कि इस व्यवस्थापक ने परमेश्वर का जो काम निरूपित किया था, वह उस परम सत्ता के गौरव और महत्ता के अनुपयुक्त है। बाइबिल के भिन्न-भिन्न अध्यायों के शीर्षकों के पाठ से इस सचाई का यथेष्ट प्रमाण मिल जायगा।

† "निर्गमन", अध्याय ७, अंश १—मूसा फ़िरऔन के लिये परमेश्वर-सा ठहराया जाता है। वह राजा को ढूँढ़ने जाता है। हारून की कुमारी को उसके सामने साँप बना दिया जाता है, जो जादूगरों के साँप को निगल जाता है।

अंश २—कुमारी के अजगर बन जाने के चमत्कार को देखकर फ़िरऔन का मन हठीला हो जाता है। इसलिये परमेश्वर मिसर के

सारे पानियों को लहू बना देता है। फ़िरऔन के जादूगर भी यही चमत्कार दिखलाते हैं, जिससे उसका हृदय कठोर ही बना रहता है।

अध्याय ८, अंश १—परमेश्वर मूसा को फ़िरऔन के पास भेजता है। राजा का मन वैसा ही कठोर बना रहता है। मिसर पर एक और महामारी, अर्थात् मेंढकों की महामारी, आती है।

अंश २—दूसरी महामारी से भी फ़िरऔन नरम नहीं होता, तब परमेश्वर उस पर तीसरी महामारी, अर्थात् मच्छड़ भेजता है।

३—इन उत्पातों से छुटकारा पाने के लिये फ़िरऔन इसरायल-वंशियों को जाने देने का वचन देता है; परंतु वह अपना मन बदल देता हैऔर फिर कठोर बन जाता है।

अध्याय ९, अंश १—पाँचवीं महामारी। परमेश्वर मिसर के सारे पशुओं में भारी मरी फैलाता है, किंतु इसरायल-वंशियों के पशुओं को छोड़ देता है।

अंश २—छठी महामारी। परमेश्वर हवा में से अंगारे फेकता है, उनसे सारे मिस्र में मनुष्यों और पशुओं के घाव हो जाते हैं।

अंश ३—सातवीं महामारी, ओले और तूफ़ान। परमेश्वर फ़िरऔन को सूचना देता है, ताकि वह इससे बच जाय; परंतु उसका हृदय ज़ियादा कठोर होता जाता है।

अंश ४—उस उत्पात से डरकर फ़िरऔन इसरायल-वंशियों को जाने देने का वचन देता है; परंतु यह देखकर कि मैं अब छूट गया हूँ, वह और भी कठोर होता जाता है।

अध्याय १०, अंश १—परमेश्वर मिसर में आठवीं महामारी टिड्डियों की भेजता है। मिसर में जो चीज़ तूफ़ान से बच रही थी, उसे वे चट कर जाती हैं।

अंश २—जब इन महामारियों से भी फ़िरऔन का हृदय नरम नहीं होता, तब परमेश्वर नवीं महामारी, अर्थात् अंधकार, भेजता है,

जो सारे मिसर को घेर लेता है। इस पर फ़िरऔन पहले तो इसरायल-वंशियों को जाने की अनुमति दे देता है, परंतु शीघ्र ही अपने वचन से फिर जाता है, और उसका चित्त फिर कठोर हो जाता है।

अध्याय ११, अंश १—दसवीं और अंतिम महामारी का भविष्य-कथन, जो परमेश्वर मिसर में भेजेगा, मिसरियों से सोने और चाँदी के बर्तन उधार लेने की इसरायल-वंशियों को आज्ञा।

अध्याय १२, अंश १—प्रभु परमेश्वर इसरायल-वंशियों को पहला ईस्टर पर्व मनाने की आज्ञा देता है। वह उसमें की जानेवाली प्रक्रियाओं का विधान करता है।

अंश २—प्रभु परमेश्वर मिसरियों के सभी जेठे बच्चों को मार डालने और इसरायल-वंशियों के जेठों को छोड़ देने की अनुमति देता है। वह उस दिन की स्मृति को एक गंभीर उत्सव द्वारा सदा मनाते रहने की आज्ञा करता है।

अंश ३—इसरायल-वंशियों को भेड़ का बच्चा मारने और उसका लहू अपने घरों के दरवाज़ों में डालने की आज्ञा (ताकि मौत का फ़रिश्ता, जो अपना मृत्यु का काम करने आ रहा था, इबरानियों के घरों को मिसरियों के घरों के साथ गड़बड़ न कर दे)।

अंश ४—प्रभु परमेश्वर मिसर के सभी जेठे बच्चों को मार डालता है। फ़िरऔन भयभीत होकर इसरायल-वंशियों को उसका देश छोड़ जाने पर ज़ोर देता है। वे मिसरियों से सोने के बर्तन तथा कपड़े उधार लेते हैं, और छः लाख की संख्या, छोटे बच्चों के एक अनंत समूह सहित, शीघ्रता से कूच कर जाती है।*

---

† से लेकर * तक अंगरेज़ी अनुवाद में छोड़ दिया गया है। ये अवतरण Jesuit's Bible, edition of Pere-de-Carrieres, of the Society of Jesus से लिए गए हैं। —अनुवादक

बस, रहने दीजिए ! ऐसे मूढ़ विश्वासों और ऐसी नीचताओं के पर्यवेक्षण से हृदय घृणा और कोप से भर जाता है !

निश्चय ही यदि मैंने सारे पक्षपात का, सारे संकीर्ण विश्वासों का चिरकाल से शपथ-पूर्वक परित्याग न भी कर दिया होता, तो इन असंगतियों का पाठ ही मुझे शुद्ध बुद्धि का उपासक बनाने के लिये पर्याप्त था। इस शुद्ध बुद्धि के द्वारा मुझे चटपट देव की अतीव सरल और अतीव उच्च कल्पनाएँ मिलती हैं।

क्या आप इस ईश्वर को मेंढकों और छोटी-छोटी मक्खियों द्वारा आक्रमण करते, फिर सारी-की-सारी जाति को महामारी और भयानक व्रणों द्वारा पीड़ित करते और अंततः प्रत्येक परिवार के सभी जेठे लड़कों की हत्या से अपनी शक्ति को प्रकट करते देखते हैं ?

हास्यास्पद से भीषण तक यह एक कैसा क्रम है !

हा, आप सारी प्राचीन देवमालाओं को देख डालिए, आलिंपस के सारे रहस्यों में गहरी डुबकी लगाइए, सभी जातियों के अतीव दुर्बोध ऐतिह्यों का अन्वेषण कीजिए, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, आपको ऐसी शोचनीय और ऐसी घोर दुर्वृत्तकारिणी बात कहीं न मिलेगी। मैं सदर्प कहता हूँ, यदि मुझे मूसा के परमेश्वर और 'एपिस वृषभ' में से कोई एक चुनना पड़े, तो मैं वृषभ को ही अपना परमेश्वर चुनूँ !

जब उसने नाना प्रकार के दंडों द्वारा मिसर को भली भाँति खंड-खंडितकर दिया, तब यहोवह (परमेश्वर) ने उसके कार्य को बच्चों की बीभत्स हत्या के साथ समाप्त किया। किंतु अभी इतना ही पर्याप्त नहीं था; उसने अपने लोगों को इस पुण्य-कार्य का शाश्वत अभिज्ञान बनाए रखने और प्रक्रियाओं और गीतों के साथ त्योहार के रूप में इसका वार्षिकोत्सव मनाने की आज्ञा दी। और, आधुनिक भाव अभी तक ऐसे अत्याचारों पर प्रसन्न होता है ! मैं अभी

पुरोहितशाही को मुझे पागल और ईश्वर-निंदक बताकर धमकाते सुन रहा हूँ !

तब कौन पागल है ? कौन ईश्वर-निंदक है ?

कौन ईश्वर को रक्त की पालकी में लोटाता है ? या कौन सर्व-शक्तिमान्, सर्वज्ञ और पूर्ण परमेश्वर को बूचड़ मानने से इनकार करता है ?

यह धर्मोन्मत्त दास, जो फ़िरऔन के राजपरिवार की उदारता से पला था, अवश्य ही उन लोगों की नीचता और अज्ञता को भली भाँति जानता होगा, जिनका उसने उद्धार किया था। इसीलिये उसने इस क्रांति का इतिहास लिखते समय इसको इन हास्यास्पद विभीषिकाओं से परिवेष्टित करने का साहस किया।

वस्तुतः यह मूसा का अपना ही है। अनुकरण करने के लिये उसे और कहीं नहीं मिला। अभी, जब हम यह दिखलावेंगे कि बाइबिल का ऐतिह्य हिंदुओं की धर्म-पुस्तकों की झूठी और भद्दी नक़लों के सिवा और कुछ नहीं, तब हमें यह प्रकट करने का अवसर मिलेगा कि वे लोग, परमेश्वर को एक संत्रास-हेतु बनाना तो दूर, उसकी शक्ति के अतीव सुंदर गुणों, दयालुता और क्षमा पर विचार करके आह्लादित होते हैं।

जिन लोगों को मूसा मरुभूमि में ले गया था, वे वास्तव में अछूत ही थे !

जिनके गले में कल अभी दासता का जुआ पड़ा हुआ था, और जो अधीनता से स्तंभित हो रहे थे, उन्हें मिसर के देवता ऐसी अमंगलकारिणी काली आत्माएँ ही दिखाई देते थे, जो अपने आखेटों के वेदना-विलाप को सुनकर प्रसन्न होती थीं; क्योंकि उनके उच्च श्रेणी के शासकों ने उन्हें ऐसी ही शिक्षा दी थी। इबरानी लोग स्वतंत्रता को समझने के बिना ही स्वतंत्र हो गए, और मूसा ने, जो अपेक्षाकृत

उन पर अच्छा शासन कर सकता था, अपनी पुस्तक को पवित्र सिद्धांतों और नीच मूढ़-विश्वासों की, पुरोहितों से पढ़े हुए वेदों के दुर्बल स्मरण और मिसरियों की नीच पूजा के ऐतिह्यों की एक खिचड़ी बना दिया।

जो जाति एपिस-वृषभ और स्वर्णीय तर्णक में अपने पुराने विश्वासों के पुनर्ग्रहण के लिये सदैव उद्यत रहती हो, उस पर शासन करने और उससे अपने विघोषित परमेश्वर को स्वी-कराने के लिये आवश्यक था कि वह भी अतीत काल के देवता-का-सा ही काम करता।

और, क्या इस नीच जन-समूह को, जिसे भूतकाल में सामान्य वेदना की स्मृति के विना और कोई भी बात इकट्ठा करके एक जाति बनानेवाली न थी, ढकेलकर आगे बढ़ाने के लिये, भय और चमत्कार समान रूप से आवश्यक न थे?

मूसा ने अपने आरंभ की कठिनता का उस समय अवश्य अनु-भव किया होगा, जब एक दिन, फ़िरऔन के देश में, उसने दो इबरानियों को झगड़ते देखकर उनमें से झगड़े के आरंभ करनेवाले से कहा—"तू इस प्रकार अपन भाई को गालियाँ क्यों देता है?"

तब उसे उत्तर मिला—"तुझे किसने हमारा राजा और विचार-पति बनाया है? क्या तू मुझे भी उसी तरह मार डालेगा, जिस तरह कल तूने एक मिसरी को मारा था?"

इस समय, निस्संदेह, उसने अनुभव किया होगा कि मेरा परिचिंतित निर्गमन निष्कासितों, दासों और व्यवसाय-शून्य लोगों के इस समूह को सभ्य बनाने के कार्यक्रम का सुगमतम भाग है।

जो विनाशक यहाँ सदा प्रतिहिंसा और विभीषिका द्वारा ही अपनेको अभिव्यक्त करता है, उसकी सृष्टि का कारण मैं केवल

यही समझ सकता हूँ। यह निरंकुश और असंतोष से बड़बड़ानेवाले लोगों के लिये एक हितकर रोक है।

परंतु यदि मैं इसे किसी जाति के प्रथम आविर्भाव पर नीच विद्रोह से उत्पन्न हुआ एक उपाय समझूँ, तो मैं इसे इससे बढ़कर और कुछ नहीं समझता, और न ही इसे एक पीछे का विश्वास स्वीकार कर सकता हूँ। मैं इसकी गणना उन कल्पित कथाओं और संत्रासहेतुओं में करता हूँ, जिनका प्रयोग प्राचीन समाजों के संस्थापकों ने किया था।

इसलिये अब हमें परमेश्वर की जाति (!) के विषय में और अधिक न सुनना चाहिए।

अपनी कल्पित उत्पत्ति को हत्याओं और लूट-मार से परिवेष्टित करने के कारण (क्योंकि वे सदा परमेश्वर की आज्ञा (!) से मिसरियों के सोने के बर्तन और पोशाकें उधार लेकर उनको नितांत लूटते हैं !) इबरानी लोग उनके विषय में मेरे इस निर्णय को कि वे अभिद्रोही अछूत-मात्र हैं, कभी नहीं बदल सकते। मेरी अपनी दी हुई युक्तियों के अतिरिक्त स्वयं बाइबिल में एक ऐसी युक्ति है, जिसे मैं यदि भूतकाल के इन अध्ययनों में सत्य का मूल्य केवल असंगति से ही न लगाया जाय, अखंडनीय कह सकता हूँ।

यहूदी काल-गणना के अनुसार याक़ूब सन् २२९८ में मिसर में बसने के लिये गया। उसकेसाथ सत्तर व्यक्तियों—पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र—का उसका सारा परिवार था।

फिर, उसी प्रमाण के अनुसार, सन् २५१३ में, अर्थात् दो सौ पंद्रह वर्ष पश्चात्, इबरानियों ने, स्त्रियों और बच्चों को न गिनकर, छः लाख मनुष्यों की संख्या में, जिनसे कम-से-कम बीस लाख प्राणियों की एक जाति बनती है, मिसर देश का परित्याग किया।*

* ६००००० योद्धा २०००००० जनता के बराबर है।

क्या एक क्षण के लिये भी यह मानना संभव है कि इस छोटी-सी अवधि में, और उस दौरात्म्य के होते हुए, जो उन्हें सहना पड़ा, याक़ूब के वंशज ऐसी शीघ्रता से बढ़ सकते थे? इस उपाख्यान की सत्यता को प्रतिष्ठित करने का यत्न क्या सहज बुद्धि पर अत्याचार न होगा?

यूसुफ़ और कुलपतियों के इतिहास या तो मूसा की गढ़ी हुई परिकथाएँ हैं, या जो मेरी सम्मति में उत्तम जान पड़ता है, ये मिसर के ऐतिह्य हैं, जिनको इस व्यवस्थापक ने इकट्ठा कर लिया है, और यह प्रकट करने के लिये इनका प्रयोग किया है कि इबरानियों का ईश्वर-विहित उद्देश्य बहुत पुराना है, और उनके पूर्वज पहले ही परमेश्वर के प्रिय रह चुके हैं।

मैं पूर्ण सुहितता से पूछता हूँ कि क्या एक स्वतंत्र, समझदार और ऐतिहासिक समालोचक को चमत्कारों और घोर मूढ़ विश्वासों की इस राशि का, जो इबरानी जाति की उत्पत्ति को बोझ से लाद रही है, अस्वीकार नहीं कर देना चाहिए?

हमने यूनानी और रोमन देवमालाओं को मानने से घृणापूर्वक इनकार कर दिया है। तो फिर यहूदियों की देवमाला को सम्मान-पूर्वक क्यों स्वीकार करें?

क्या जूपीटर के चमत्कारों की अपेक्षा यहोवह के चमत्कारों का हम पर अधिक परिणाम होना चाहिए?

क्या परम बुद्धि, अर्थात् विवेक द्वारा हम पर प्रकाशित ईश्वर को इन दो क्रोधी और रक्तप्रिय सत्ताओं में से, जो बदला लेने के लिये तत्पर और लौकिक श्रद्धालुता के संत्रासहेतु हैं, किसी एक में मानना संभव है।

और, फिर अविनय और अभिमान का यह अभिनय, जिसके समान इतिहास में दूसरा नहीं मिलता, क्या है?

एक जाति अपने को ईश्वर की एकमात्र प्रिय जाति बताकर अभिमान करती है, अपने पड़ोसियों के सामने केवल कपट और निर्दयता के अत्यंत गर्ह्य उदाहरण उपस्थित करती है, और परमेश्वर के नाम पर उन देशों के अधिवासियों का उन्मूलन करती है, जिनको वह अपने लिये लेना चाहती है!

जो लोग अभी कल दास थे, वे क्या अपने नवीन समाज में दासता का नाश कर देंगे? नहीं, वे अब तक भी ईश्वर के नाम पर अपने विजित लोगों को दास बना रहे हैं!

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, अतीत काल में और कोई जाति ऐसी नहीं हुई, जो दंभ में इतनी दृढ़ हो, और जो अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रत्येक उपाय को पवित्र बना लेती हो।

परंतु इस पर हमें आश्चर्य न होना चाहिए। मूसा द्वारा प्रतिष्ठित इस ईश्वर-कर्तृक शासन के सिर पर पुरोहित अर्थात् लेवी (Levite) प्रकट हुआ। वह शीलभ्रंश द्वारा वशीकरण के प्राचीन याजकीय अभिनय का भक्त था। हिंदू-पौराणिक-धर्म के उत्तराधिकारी ने, जैसा कि इसने मिसर में, फ़ारस में और सभी प्राचीन समाजों में किया था, परमात्मा को अपनी निरंकुश कामनाओं का साधन बनाना, और श्रद्धालु लोगों को अपनी जाति के स्वच्छंद प्रभाव के अधीन करने के लिये धर्म-बुद्धि से काम लेना जारी रक्खा।

जब इस विषय की विस्तारपूर्वक परीक्षा से हमने यह प्रमाणित कर दिया कि इबरानियों की यह सामाजिक प्रणाली भी मनु की सामाजिक प्रथा की एक प्रतिलिपि-मात्र थी, तब क्या यह स्पष्ट नहीं कि मूसा, मिसर के मेनस के द्वारा, उस व्यवस्थापक का दायाद-मात्र ही हो सकता है, और उसकी नागरिक संस्थाओं की भाँति इसकी उत्पत्ति-पुस्तक भी प्राचीन भारत की दी हुई एक बख़शीश थी?

प्राचीन जगत् की दूसरी जातियों के विषय में जो अन्वेषण हो चुके हैं, उनके बल पर हम कह सकते हैं कि अब यह मत विरोधाभास नहीं रहा ; यह हिमालय की समस्थली को छोड़नेवाले स्वदेशत्यागियों के उस महान् आंदोलन का केवल तर्कसंगत और अविरुद्ध सातत्य है जिसका प्रभाव कि संसार के चारों कोनों तक फैला था, और जिससे यह मान लेना स्वाभाविक है कि मिसर से निकलनेवाले इसराईलवंशी लोग न बचे थे।

इबरानी व्यवस्थापक के ग्रंथ की हिंदू-व्यवस्थापक के ग्रंथ के साथ तुलना करते समय हम इसको एक सचाई प्रमाणित करेंगे, और भूमि के इस प्रकार साफ़ हो जाने पर, हम बेधड़क होकर सृष्टि की उत्पत्ति पर वेदों के और हिंदुओं के उन लिखित ऐतिह्यों के अनुसार विचार करेंगे, जिनको बाइबिल ने बहुत थोड़े परिवर्तन के साथ दुबारा वर्णन किया है।

एक शब्द कहकर हम बस कर देंगे।

जिन मतों के साथ संसार के प्राचीन समाजों के विषय में विवेक और अन्वेषण मुझे प्रोत्साहित करते हैं, उनकी क्रूरता और वंचना के इस जाल की यशू के समाज द्वारा मूल्य-वृद्धि के साथ तुलना करना मुझे दिलचस्पी से ख़ाली नहीं जान पड़ता।

निर्गमन की पुस्तक के माथे पर फ़ादर डी कैरीएरीस (Father de Carrieres) की लिखी यह विज्ञप्ति है—

"इस प्रकार ईसाई लोग इस महान् ईश्वरदूत (सेंट पाल) से ईश्वर के उन गंभीर निर्णयों का आदर करना, जिन पर दृढ़ रहते हुए उसने फ़िरऔन का साथ छोड़ दिया, और उस अनंत ज्ञान की प्रशंसा करना सीखते हैं, जिसके द्वारा उसने उस राजा की ढिठाई से, जो उसने उसका प्रतिरोध करते हुए दिखाई थी, अपनी शक्ति और महिमा को अभिव्यक्त करने में सहायता ली।"

"वही ईश्वरदूत उन्हें सिखाता है कि लाल समुद्र के मार्ग को अपने बपतिसमे का आदर्श स्वरूप समझो; स्वर्ग से गिरनेवाले वंश-लोचन को यूकरिस्ट (Eucharist) का सांकेतिक समझो; मरु-भूमि में इसराईली लोगों के पीछे-पीछे जानेवाला जल जिस चट्टान से निकला था, उसे यशू खीष्ट का रूप समझो, जो इस जीवन में ईसा-इयों का पोषण करता और आत्मा तथा शांति में उनके पीछे-पीछे चलता है, जब तक वे सच्ची प्रतिज्ञात भूमि में नहीं पहुँच जाते; और सिनाई पर्वत को ऐहिक जेरूसलम की प्रतिमा समझो। धर्म-नियम को एक ऐसा उपदेष्टा समझो, जो सच्चा न्याय नहीं सिखला सका, किंतु जो यशू खीष्ट को इसका स्रोत बताता है। मूसा के मुख के प्रका-शमान तेज को सुसंवाद (बाइबिल) के मुख की प्रतिच्छाया समझो। जिस आवरण से उसने अपने को ढाँपा था, उसे यहू-दियों के अंधेपन का रूप समझो। उपासना-मंदिर को, जो स्वर्गीय-धर्ममंदिर का नमूना है, यशू खीष्ट के रक्त को दिखलानेवाला बलि होनेवाले लोगों का रक्त समझो।"

इसलिये नाना प्रकार के दंडों, महामारियों और हत्याओं द्वारा मिसर देश का खंडित किया जाना हमारे आधुनिक लेवियों (पुरोहितों) के अनुसार ईश्वर की महामहिमा का द्योतक है !

इसमें संदेह नहीं कि मध्यकाल में सैकड़ों मनुष्यों के निष्ठुर बलि-दान भी समान रूप से दिव्य-शक्ति की अभिव्यक्ति के लिये ही थे, और दुराग्रही मिसरियों ने वौडोइस (Vaudois) और सेंट बार्थोलोम्यू की बलियों का नमूना दिखाया था !

कैसा उन्मार्ग-गमन है ! नैतिक बुद्धि का कैसा विपर्यय है !

यह सोचकर घोर दुःख होता है कि हमें अभी तक ऐसे मूढ़-विश्वासों पर वाद-प्रतिवाद करना पड़ता है, और चार-पाँच सहस्र

वर्ष के विनाश ने भी लोगों को स्वतंत्र विचार और धार्मिक स्वतंत्रता के मार्ग का अनुगामी नहीं बनाया !

आओ, हम साहसपूर्वक उनके छद्म वेष को फाड़ डालें, और सबको दिखला दें कि ये केवल मानव-निर्बलताओं और मानुषी मनोविकारों के ही काम हैं।

चौथा अध्याय

भारत और मिसर के समाजों के नमूने पर मूसा इबरानी-समाज की स्थापना करता है

अपनी धार्मिक तथा राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना करते हुए मूसा उस प्रभाव से नहीं बच सका, जिसे हमने समस्त प्राचीन जगत् में व्याप्त वर्णन किया है।

निष्कासितों के इस समूह को मरुस्थली में ले जाने और, बाइबिल के कथनानुसार, उनके पीछे मिसरी जन-समूह के जाने से उनको शिक्षित करना, उनके लिये नियम बनाना और नियमित स्वभावों का उन्हें आदी बनाना आवश्यक हो गया। जाति-पाँति का विचार उनके आचार-व्यवहार में इतना गहरा गड़ चुका था कि वे उसकी उपेक्षा न कर सकते थे; अतः यह नवीन शासन की रचना में फैल गया। यह नया शासन हिंदुओं के ब्राह्मण-शासन की हूबहू नक़ल के सिवा और कुछ न था।

चार के स्थान में यहाँ बारह वर्ण बनाए गए। इनमें से पहला सदा की भाँति पुरोहित वर्ण था। जाति के सभी नागरिक तथा धार्मिक व्यापार इसी के अधिकार में थे। यह ईश्वरीय ज्ञान का व्याख्याता और मंदिरों का संरक्षक था। यज्ञ (बलिदान) करने की केवल इसे ही आज्ञा थी। मानसिक पापों और सामाजिक अपराधों का एकमात्र निर्णेता यही था।

इस ईश्वरकर्तृक शासन का सबसे बड़ा मुखिया एक उच्च आचार्य होता था। इसका अधिकार बड़ा ही प्रबल और रहस्यमय था, जिससे कोई उसकी आज्ञा-भंग न कर सके। लौकिक और पारलौकिक

दोनों प्रकार के विषयों में उसके शब्द राजनियम माने जाते थे। वह अपने कार्यों के लिये केवल परमेश्वर के सामने ही उत्तर-दाता था।

पोप के भक्तों (Ultramontanism) को आज इसी आदर्श के स्वप्न हो रहे हैं। वे पोपों के लाभार्थ इस अधिकार को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस अभीष्ट की सिद्धि के लिये वे आधुनिक समाजों की शक्ति को घटाकर उन्हें केवल ऐसे जत्थे बना देना चाहते हैं, जिनको अपने प्रत्येक कार्य तथा विचार के लिये रोम से आज्ञा लेनी पड़े।

क्या कोई यह कहेगा कि इबरानियों की उपजातियाँ 'वर्ण' नहीं, किंतु ये याक़ूब के पुत्रों से उनके जन्म तथा उत्पत्ति के स्वाभाविक विभाग थे?

मैं समझता हूँ, यह पिता-पुत्र-संबंध मूसा की चतुर कल्पना-मात्र है, जिससे लोग यह मानने लगें कि उसके द्वारा प्रतिष्ठित विभाग स्वयं परमेश्वर की ही रचना है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि लोगों को इनके विरुद्ध अवश्य ही शिकायत होगी। इसके अतिरिक्त क्या इस प्रकार अतीत काल के सादृश्यों का प्रचलित करना आवश्यक न था, जिससे इबरानियों को वे दुःख याद आते रहें, जो उन्होंने मिसर की निरंकुश राजसत्ता के नीचे भोगे थे, और किसी का जी अपनी जाति बदलने के लिये न ललचाय?

स्वतंत्र होते ही, सदा उसी संकल्प से, इबरानी व्यवस्थापक ने अपनी युक्तियों तथा महत्त्वाकांक्षाओं में दीक्षित सहचरों से अपने को परिवेष्टित कर लिया, उनको पुरोहित बना दिया और उनको ईश्वरीय रक्षा में रख दिया जिससे लोग उनके अधिकार की सत्यता के विषय में प्रश्न न करने लगें।

इन व्यावर्तित उपजातियों अथवा वर्णों को, भारत और मिसर के

वर्णों की भाँति, मूसा ने निस्संदेह लेवियों (Levite) का स्थायी प्राधान्य स्थापित करने और इस कुल की दूसरी उपजातियों के साथ विवाह करने से रक्षा करने के लिये ही ग्रहण किया था।

ऐसे युग में, जब कि सभी जातियाँ पुरोहित के शासन के नियम को ग्रहण कर चुकी थीं, इससे बढ़कर सरल बात और क्या हो सकती थी कि मूसा हिंदू स्वदेश-त्यागियों और उपनिवेशियों की रचना की, जिसकी मिसर तथा सारे एशिया भूखंड में प्रतिष्ठा थी, कुछ रूपांतर के उपरांत, केवल नक़ल कर लेता?

इसके समाधान के लिये ईश्वरीय उद्देश्य का और उन कहानियों और सृष्टिक्रम-बाह्य अद्भुत बातों का प्रयोजन नहीं, जिनका प्रयोग इस इबरानी व्यवस्थापक ने अपने अधीनस्थ दुर्दांत और विगुण जन-समूह को अधिक सुगमता से वश में रखने के लिये किया था। आज्ञाभंग, असंतोष और अभिद्रोह इतने अधिक होते थे कि हम पूछते हैं, यदि वह चालाकी से इस परमेश्वर की रचना न करता, जो अतिक्रम पर सदा ईश्वर-निंदकों तथा विद्रोहियों का वध कर डालता और अपनी प्रतिहिंसा के अत्याचारों से जनता को भयभीत रखता है, तो संभवतः उसे सफलता कैसे हो सकती? क्या लेवी (Levi) वर्ण अर्थात् पुरोहितों ने सुनहरे बछड़े के संप्रदाय के पश्चात् यहोवह के नाम पर ही तेईस सहस्र इसराईलियों की हत्या नहीं की थी? मूसा की चाहे कितनी ही शक्ति क्यों न हो, हत्या के इन भीषण दृश्यों को मानकर यह कहना पड़ता है कि यदि उसने जनता को भिन्न-भिन्न श्रेणियों या वर्णों में बाँट न दिया होता, और सबसे बढ़कर, यदि उसने पुरोहित वर्ण को, जो उसकी अपनी जाति में से थे, उसके व्यग्र पोषक थे, धर्मोन्मत्त न बना दिया होता, तो अवश्य ही इनका परिणाम उसकी अपनी मृत्यु होता। यदि मुझसे पूछो, तो मुझे तो पौराणिक हिंदू-धर्म और लेवियों के धर्म (Leivtism) में कुछ

भी भेद नहीं देख पड़ता, और प्रत्येक चीज़ इसी बात की घोषणा करती सुनाई देती है कि लेवीधर्म पौराणिक हिंदू-धर्म से ही उत्पन्न हुआ है।

इन दोनों सभ्यताओं को उनके रीति-रिवाजों द्वारा जोड़ते हुए हमें अब यह दिखलाने का अवसर मिलेगा कि इनमें से एक का दूसरी से उत्पन्न होना काल्पनिक-मात्र नहीं, संस्थाओं का केवल सादृश्य ही नहीं।

ईश्वर के एकत्व की महान् कल्पना का, अस्पष्ट रूप से, सबसे पहले प्रतिपादन करनेवाला मूसा को माना गया है। इस कल्पना को उसकी समकालीन दूसरी जातियों ने, कम-से-कम उस युग के ऐतिहासिक ऐतिह्यों में, वैसी ही पूर्ण रीति से समझा मालूम नहीं होता—यह मत एक भारी भ्रम है। इसका खंडन करना कुछ भी कठिन नहीं; यद्यपि इसको काल और ईसाई सिद्धांत ने सुप्रतिष्ठित किया है। इबरानी परंपरा को स्वीकार कर लेने के कारण ईसाई मत का इसको बड़े अनुराग के साथ ग्रहण करना और इसका प्रचार करना स्वाभाविक ही था।

मूसा ने, जो मिसर में राजकीय शिक्षा द्वारा हिंदुओं के एकेश्वरवाद में दीक्षित हो चुका था, इबरानियों के लिये उन मूढ़-विश्वासों पर आश्रित कोई पूजन-विधि नहीं तैयार की, जिनका मिसरदेशीय पुरोहितों ने, एक स्पष्ट उद्देश से निम्न जातियों को अभ्यास कराया था। इसके स्थान में वह पहला मनुष्य था, जिसने ईश्वर के एकत्व और सृष्टि की उत्पत्ति के ऐतिह्यों (जो भारत और मिसर ने केवल ब्राह्मणों और पुरोहितों के विशेष स्वत्वधारी वर्णों के लिये ही परिरक्षित रक्खे हुए थे) पर आश्रित दीक्षा के रहस्यों का उन पर उद्घाटन किया। परंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि लोगों पर परमात्मा की एकता-संबंधी इन उच्च कल्पनाओं को प्रकट करते हुए भी उसे उनका

विशुद्ध रूप बताने का साहस नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि ये लोग दासता की संतान थे, बुद्धि-शून्य थे और भूतकाल से उतनी यथेष्ट रीति से मुक्त नहीं हुए थे कि वे ईश्वर—सृष्टि-कर्ता, सर्वशक्तिमान्, और दयालु—की कल्पना को क्रूर प्रतिहिंसा और भीषण दंड की सभी सहकारिणी कल्पनाओं से अलग कर सकें।

इसीलिये मूसा ने अपने यहोवह को उन भुवनों का, जो हिंदुओं की धर्म-पुस्तकों के अनुसार शांत और प्रसन्न हैं, अधिष्ठातृदेव बनाने का साहस नहीं किया; क्योंकि इसके योग्य केवल दिव्य परमेश्वर ही है।

यदि एक ओर उसमें, अपने अग्रगामियों से बढ़कर, यह गुण था कि वह जाति के क्रोध की कुछ परवा न करके ईश्वर के एकत्व की घोषणा और उन मूढ़-विश्वासों का बहिष्कार कर सकता था, जिनको मनु और मेनस (Manes) लोगों के लिये अच्छा समझते थे, वहाँ दूसरी ओर, पीछे क़दम हटाते हुए, अपने अधिकार तथा उन संस्थाओं के परित्राण के लिये, जिनको वह बना रहा था, वह उस ईश्वर को एक ऐसी क्रूर सत्ता बनाने के लिये विवश हुआ था, जो लोगों में त्रास उत्पन्न कर सके, और विना सोचे-समझे उनसे आज्ञा का पालन करा सके।

त्रासों और भीषण अभिव्यक्तियों के समूह को, जिसे दूसरों ने संख्यातीत देव-मूर्तियाँ बनाकर अनंत रीति से बाँट डाला था, मूसा ने केवल एक में इकट्ठा कर दिया, और उसकी बताई हुई पूजन-विधि दूसरों की अपेक्षा न कम घोर और न कम निष्ठुर ही थी। अपने नाम के गुण-प्रशंसन और मिसर के प्राचीन दासों के लिये मार्ग साफ़ करने के उद्देश्य से क्या यहोवह ही बाइबिल के सारे संहारों और मूर्ति-पूजक जातियों के सारे प्रमाथों की आज्ञा नहीं देता?

मूसा को एक असभ्य कल्पनाकारी के सिवा, जिसके प्रधान साथी आग और तलवार थे, और कुछ समझने, और यहोवह को एक संत्रासहेतु, याजकीय अल्पजनसत्ता राज्य (Sacerdotae Oligarchy) के हाथ में प्रभुताप्राप्ति के एक साधन के सिवा और कुछ मानने के लिये मनुष्य की आत्मा में भयंकर पदार्थों के प्रति सम्मान का भाव—असहिष्णुता के मूढ़ कलह का प्रेम होना आवश्यक है।

सारांश यह कि मूसा द्वारा प्रतिष्ठित शासन पुरोहितों के परम प्रचोदन के अधीन एक ईश्वरकर्तृक शासन था। जातियों के जिन विभागों का उसने विधान किया, वे वर्ण थे, जो नवीन शक्ति और नवीन संस्थाओं की सफलता को निश्चित करने के योग्य स्थिरता की दशा में लोगों को बनाए रखने के उद्देश्य से गढ़े गए थे। इसलिये हम कह सकते हैं कि इबरानी लोग न अपने विश्वासों और न अपनी सामाजिक अवस्था की दृष्टि से ही उस नियम का अपवाद थे, जो सभी प्राचीन जातियों में व्यापक था।

अनेक लोग मूसा की दस आज्ञाओं को श्रेष्ठता का आश्रय लेकर इबरानियों के सिर पर नीति का मुकुट रखते हैं, और उनके सहयोगियों को इससे वंचित करते हैं।

इन दस आज्ञाओं में माता-पिता का सम्मान करने, वध न करने, व्यभिचार न करने, चोरी न करने, पड़ोसियों के विरुद्ध मिथ्या साक्षी न देने और दूसरों की संपत्ति का लालच न करने का उपदेश है।

ये नियम सिनाई पर्वत के समय से ही नहीं, ये इबरानियों और उनकी अग्रगामिनी सभी सभ्यताओं के भी पहले के हैं। जिस समय मूसा ने पर्वत पर इनका प्रकाश जनता पर किया, अंतरात्मा उसके बहुत पहले सभी निष्कपट मनुष्यों को इनका ज्ञान करा चुकी थी। इसके अतिरिक्त ये दस उपदेश, जो बाजों और तुरहियों को

बजाते हुए एक भारी आडंबर के साथ इबरानी लोगों पर विघोषित किए गए थे, मुझे एक बड़ी कटु व्यंगोक्ति प्रतीत होते हैं। यह दिखलाने के लिये बाइबिल का पाठ ही पर्याप्त है कि उस समय कुछ ही लोग अधिक दुष्ट थे, कुछ ही लोग अपने पड़ोसियों के साथ धोका करते थे और थोड़े ही लोगों के हृदय में दूसरों की संपत्ति के लिये सम्मान का भाव न्यून था।

मिसर को छोड़ने के पहले उन्होंने उसकी जेबें कतर लीं, मरुस्थली को तय किया, अपनी लूट जारी रक्खी, प्रत्येक नई भूमि को, जहाँ वे गए, बलात् नष्ट कर दिया; यहाँ तक कि लोगों का धैर्य हाथ से जाता रहा। फलतः उन्हें घोर रूप से दंडित किया गया, और वे फिर दासत्व के गहरे गढ़े में ढकेल दिए गए।

मूसा और उसके उत्तराधिकारियों के होते भी पतित पतित ही बने रहे; फ़िरऔन के इन पूर्वतन दासों को एक स्थान में घर बनाकर बसने और परिश्रम करनेवाले संभ्रांत मनुष्य बना देना असंभव था। वे आरंभ में भी गृहशून्य आवारागर्द थे, और फ़िलिस्तीन (Palestine) में पड़ाव डालने पर भी आवारागर्द ही बने रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी पड़ोसी जातियाँ उनके बार-बार होते रहनेवाले अत्याचारों को रोकने तथा उन्हें दंडित करने के उद्देश्य से आपस में मिल गईं।

यह समाज उस समाज से सर्वथा भिन्न था, जो हमें वेदों के भारत में, प्राक्कालीन पवित्र ऐतिह्यों के भारत में दिखाई देगा; और यदि मूसा के दस उपदेशों की गँवारू सचाइयों की इतनी प्रशंसा की जाती है, तो हम उन महान् दार्शनिक और नैतिक नियमों को किस भाव से देखेंगे, जिनका ईसाई सुधारकों ने पीछे से आकर उस जगत् को पुनः उपदेश दिया, जो उन्हें भूल चुका था!

मूसा इनको जानता था, और उसने इनका निस्संदेह अपनी युवा-

वस्था में अध्ययन किया था। यह उसके परमात्मा का एकत्व अंगीकार करने और उसकी "सृष्टि-उत्पत्ति" से, जो हिंदुओं की "सृष्टि-उत्पत्ति" की प्रतिध्वनि-मात्र है, प्रमाणित होता है। यदि वह पुनरुद्धार करने में असमर्थ था, यदि उसने वैदिक धर्म के स्थान में ब्राह्मण लोगों के चलाए पौराणिक धर्म को ग्रहण किया, तो इसका कारण शायद मिसर में इबरानियों की पतति नैतिक अवस्था थी। इन इबरानियों को स्वाधीनता ने परिवर्तित नहीं किया था, और उनकी पतित दशा ने, जैसा कि हम कह आए हैं, व्यवस्थापक को मूढ़-विश्वास और निर्दय परमेश्वर के बदला लेने के डर द्वारा इनका शासन करने पर विवश किया था।

यदि उसके पास इनसे भिन्न प्रकार के लोग होते तो, संभव है, वह यहूदिया (Judea) में एक ऐसे समाज की रचना कर देता, जिसकी तुलना यूनान के सर्वोत्तम काल के समाज से हो सकती।

इसलिये कहना पड़ता है कि कदाचित् वह आप असमर्थ नहीं था, प्रत्युत लोग अयोग्य थे; क्योंकि उनमें उसकी बातों को समझने के लिये बुद्धि की कमी थी।

मेरा दृढ़ विश्वास है और यह इतना सत्य जान पड़ता है कि यदि मूसा के पास ऐसे लोग होते, जिनको दासता ने इनकी अपेक्षा कम भ्रष्ट-बुद्धि बनाया होता, तो मूसा के सुधार ने एक दूसरा रूप धारण किया होता। यह प्रत्यक्ष है कि "उत्पत्ति-पुस्तक" का परमेश्वर, अर्थात् बाइबिल की आदि-क्रिया का परमेश्वर "निर्गमन" तथा उसके बाद की पुस्तकों के द्वेषी और मनुष्यों के बलिदान के प्यासे यहोवह के सदृश नहीं।

हमें कहना पड़ता है कि मरुस्थलों में शिकायत और विरोध के अधिक बढ़ जाने के कारण, मूसा को अपने जन-समूह को अधिकार में

रखने के लिये परमेश्वर को अधिक भयानक रूप देना पड़ा, क्योंकि उन लोगों पर तर्क का कुछ भी प्रभाव न होता था।

अपनी अक्षय क्षमा और सहिष्णुता के साथ वेदों का परमेश्वर यहाँ क्या कर सकता था? ग़ुलामों और आवारागर्दों का यह समाज उसे निर्वासित कर देता। उनके लिये एक लोहे के हाथोंवाले परमेश्वर का प्रयोजन था, जो उन्हें एक शाप, एक पाखंडता, अथवा "सुनहले बछड़े" के प्रति एक प्रार्थना के लिये दंडित करता—बीस या तीस सहस्र मनुष्यों को समूल नष्ट कर डालता।

इसलिये मूसा "उत्पत्ति" के पश्चात् वेदों को छोड़कर जी-जान से ब्राह्मण लोगों के चलाए पौराणिक धर्म (ब्राह्मणिज़्म) अर्थात् पुरोहित का आधिपत्य और पुरोहित के ही लाभार्थ-रूपी नियम का भक्त बन गया।

निस्संदेह कुछ लोगों को हमारा यह मत बड़ा विचित्र प्रतीत होगा; क्योंकि हमारी उन्नीस शताब्दियों की शिक्षा हममें विचार तथा वाणी की स्वतंत्रता से काम लेने की प्रवणता नहीं मानती।

एक ओर तो हम ऐसी विशेष धार्मिक परिकथाओं को स्वीकार करने के लिये विवश हैं, जिन पर विचार करने की हमें आज्ञा नहीं, और दूसरी ओर, वैसे ही कारणों से, ऐसी धार्मिक परिकथाओं को अस्वीकार करने के लिये बाध्य किए जाते हैं, जिन पर केवल उनसे इनकार करने के लिये ही विवाद करने की आज्ञा है। ऐसी स्थिति का क्या परिणाम हो सकता है?

सचाई यहाँ, अर्थात् हमारे पास है—भूल वहाँ, अर्थात् दूसरों के पास है, सभी संप्रदायों का यही नियम है, सभी धर्म-सम्मेलनों की यही रीति है।

"मैं तुम्हारे पास यह सिद्ध करने आया हूँ कि सभी मूढ़ विश्वासों की उत्पत्ति, सारी निरंकुश सत्ताओं की भाँति, एक ही स्थान से है;

मैं तुम्हें वह रचना दिखलाने आया हूँ, जिसका विध्वंस कर डालना चाहिए, ताकि तुम भूत की शिक्षाओं से भविष्य की रचना कर सको। मैं तुम्हें यह बतलाने आया हूँ कि उस विनाश को देखते हुए, जो विशेष-विशेष वस्तुओं ने उत्पन्न किया है, उन वस्तुओं से किसी भी रचना का बनाना संभव नहीं,"—जिस स्वाधीन-विचारक में यह कहने का साहस होगा, मुझे पूर्ण विश्वास है, उस भावी पथ-प्रदर्शक को उन सब सूरों के सदृश, जिनके मार्ग का उसने अवलंब किया है और जिनके ग्रंथ आग में जला दिए गए थे; क्योंकि अब मनुष्यों को जलाने की आज्ञा नहीं रही थी, तिरस्कृत और बहिष्कृत कर दिया जायगा।

पाँचवाँ अध्याय

इबरानियों की दंड-नीति

जिस दंड-नीति की मूसा ने प्रतिष्ठा की, वह हूबहू मिसर या भारत की दंड-नीति न थी; किंतु उनमें जो प्रभेद हमें मालूम होते हैं, वे उस उत्पत्ति पर किसी प्रकार का प्रभाव डालने के स्थान में, जो हमने इसरायलियों की निश्चित की है, स्पष्ट रूप से उसी मूल को सिद्ध करते हैं।

मूसा, अपने पूर्वाधिकारियों की तरह, दमन और प्रायश्चित्त के साधनों के तौर पर, यह विधान करता है—

मृत्यु, लाठी की मार, अर्थ-दंड, और बलिदान द्वारा शुद्धि।

परंतु उसने जाति अथवा वर्ण से समग्र और असमग्र सभी प्रकार के बहिष्कार का परित्याग कर दिया। इस बहिष्काररूपी दंड को, जैसा कि हम देख चुके हैं, ईरान, यूनान और रोम ने ग्रहण किया था, और यह जस्टिनियन की व्यवस्थाओं के साथ, पीछे से, आधुनिक दंड-नीतियों में 'नागरिक मृत्यु' के नाम से प्रविष्ट हो गया है।

इबरानी धर्म (जूडाइज़्म) का बड़े-से-बड़े अपराधियों के लिये भी आग और पानी का निषेध (जो कि पूर्वीय रीति के इतना अविरुद्ध है) न मानना एक ऐसा अपवाद है, जो तर्कसंगत रीति से अपना समाधान आप ही करता है।

इसमें न कोई प्रगति पाई जाती है, और न मनुष्यत्व का कोई स्वप्न ही; क्योंकि जाति अथवा वर्ण से बहिष्कार निश्चय ही उन बीस सहस्र इसराईलियों की हत्या से तो अच्छा है, जिनका एक-मात्र अपराध यह था कि उन्होंने मोआब की बेटियों के साथ हँसी-

दिल्लगी की थी। बाइबिल के पाठ-मात्र से यह मालूम हो जाता है कि यह धर्म मनुष्य-वध और मनुष्य-बलिदानों से भरा पड़ा है, और स्वयं पुस्तक ही रक्त से लिखी हुई है।

अतएव हम यहाँ प्राचीन आचार को नरम किया हुआ नहीं देख सकते।

जिस विचार से मूसा प्रेरित हुआ था, वह इतना सरल है कि वह सत्य नहीं हो सकता, और हम कह सकते हैं कि यह उस अवस्था के लिये अलंघनीय था।

यदि इबरानी लोग, जैसा कि हम दिखला चुके हैं, मिसर के अपराधी वर्णों के उच्छिष्ट-मात्र थे, यदि वे फ़िरऔनों के अधीनस्थ समाज के पेरिया (पतित) थे, तो यह आवश्यक था कि मूसा इबरानी समाज में अछूत उत्पन्न न करता।

प्रथम तो इस बात की आवश्यकता थी कि इन नए लोगों को इस बात का पता न लगने दिया जाय कि किसी अवस्था में उनके उसी विपन्न दशा में दुबारा लौट जाने की भी संभावना है, जिसमें से वे अभी बचकर निकले थे।

फिर राज्य का भी एक कारण था। निस्संदेह मूसा ने इसका अनुभव किया था। वह इस वर्ण-बहिष्कार से जाति के भीतर एक दूसरी जाति उत्पन्न नहीं करना चाहता था, ताकि वह कहीं क्रमशः बढ़ते-बढ़ते एक दिन सामाजिक भीति का रूप न धारण कर ले।

इसरायलियों की वृद्धि को मिसिरियों ने संहार और दौरात्म्य द्वारा रोकने की चेष्टा की थी। इस बात को पहले से ही समझ लेना कि वही कारण एक दिन दासों की क्रांति के डर से वैसे ही उपायों का अवलंब करने पर विवश करेंगे, बड़ी ही बुद्धिमत्ता की बात थी। इसलिये इस प्राचीन दंड को ग्रहण करने की अपेक्षा, जिसका भावी परिणाम अमोघ रूप से अंतःक्षोभ और विश्लेष था, मूसा ने सारे

बड़े-बड़े अपराधियों की समूहतः हत्या कर डालना ही अच्छा समझा। इस प्रकार उन्होंने यहोवह को न माननेवालों और इस व्यवस्थापक तथा उसके उत्तराधिकारी पुरोहितों के प्रभुत्व के विरुद्ध शिकायत करनेवालों से छुटकारा पाया।

कम महत्त्व के अपराधों के लिये, जो राज्य की कल्पनात्मक रचना के मूल पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं रखते थे, बदला लेने का नियम स्थापित किया गया; अर्थात् आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत, इत्यादि। देखो बाइबिल की "निर्गमन" पुस्तक, अध्याय २१, वाक्य २४,२५।

प्राचीन समाजों में बदला लेने के क्रूर नियम के इस प्रथम प्रादुर्भाव की जय हो!

जिस बात की कल्पना करने में पुरोहित-शासित भारत और मिस्र असमर्थ थे; जिसको मनु, बुद्ध, ज़र्दुश्त और मेनस मारे भय के दूर फेंक देते, उसका हमें देना यहूदी धर्म और यहोवह के लिये ही रह गया था।

यह किसी दूसरे का अनुकरण नहीं था। इस आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत लेने के नियम को मूसा अपनी व्यवस्था-पक की अक्षमाला में एक अपूर्व और स्वयंकृत पुष्प कह सकता है!

यह दंड बाद को अनेक जातियों के प्रथम प्रादुर्भाव पर दिखाई देता है, परंतु केवल उनके प्राथमिक निर्दय रीति-रिवाजों में ही। इस-रायलियों के सिवा और किसी जाति ने भी इसे अपने लिखित नियमों में सुरक्षित करने का साहस नहीं किया।

ज्यों-ज्यों हम आगे चलेंगे, त्यों-त्यों हमें इस बात को दुहराने के अधिक अवसर मिलेंगे कि यदि यहूदिया ने भारत और मिस्र से पाई हुई सभ्यता में कोई फेर-फार किया है, तो केवल इतना ही कि वह पहले समयों की क्रूरता और नृशंसता की ओर लौटा है, जब

कि भेड़-बकरी चरानेवाला अस्थिर-निवासी मनुष्य लाठी के सिवा और किसी अधिकार को मानता ही न था।

कैन हाबिल से कहता है—"यह भूमि मुझे दे दो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।"

मूसा इबरानियों से कहता है—"ईश्वरीय वचन के सामने दीन भाव से सिर झुकाओ, नहीं तो तुम्हें मृत्यु-दंड मिलेगा।" फिर इबरानी लोग अपनी बारी पर अपनी पड़ोसी जातियों से कहते हैं—"अपनी संपत्ति, अपनी कुँआरी बेटियाँ और अपने घर हमारे सिपुर्द कर दो, नहीं तो आग और तलवार से तुम्हारा नाश कर दिया जायगा।"

मैं उन थोड़ी-सी पंक्तियों को नहीं छोड़ सकता, जिनमें उन सारी प्रथाओं और रक्तपातों का सविस्तर वर्णन है, जो यहोवह की आज्ञा से या तो मूसा और उसके उत्तराधिकारियों ने स्वयं इसरायलियों पर, अथवा इसरायलियों ने उन लोगों पर, जिनको वे लूटना चाहते थे, किए थे।

यह मेरे विषय का उत्क्रम नहीं कहला सकता; क्योंकि इससे मिलनेवाली उस उच्च नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त मैं इससे उन लोगों के विरुद्ध जो हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के प्रमाण को अस्वीकार करने से कभी नहीं चूकते—जो उनको बाइबिल से नक़ल किया हुआ बताते हैं, एक अकाट्य युक्ति निकालूँगा।

ईश्वर की एकता, त्रिमूर्ति, सृष्टि-उत्पत्ति, मौलिक अतिक्रम और निष्कृति-विषयक उच्च ऐतिह्यों ने भारत में एक श्रेष्ठ दार्शनिक और नैतिक सभ्यता उत्पन्न की थी।

ये ऐतिह्य इबरानी भूमि की उपज न थे। इसलिये उनका अनुकरण इन लोगों का, जो हत्या और अपहार से उत्पन्न हुए थे, और केवल हत्या और अपहार से ही जीवन बिताना जानते थे, पुनरुद्धार न कर सका।

यह पुस्तक अत्याचार और विध्वंस का एक प्रगल्भ गुणकीर्तन-मात्र है। इसमें इबरानी उत्पत्ति के पहले दो अध्याय असामयिक हैं। ये दोनों अध्याय वेदों से लिए गए हैं, और इन्हें वेदों को ही दे देना चाहिए।

चाहे सभी पुराने मूढ़-विश्वासी लोग मुझे अभिशाप दें, मेरा अभी तक यही मत है। मेरे प्रमाण सुनिए।

छठा अध्याय

बाइबिल का चिट्ठा (Balance sheet)—दंड, संहार, विध्वंस

मूसा का वृत्तांत पढ़ते समय कोई भी पृष्ठ ऐसा नहीं आया जब कि हमने इस पुस्तक, बाइबिल के घोर धर्मोन्माद और क्रूर सिद्धांतों पर क्रोध प्रकट न किया हो। पर जनता बिना सोचे-समझे और बिना परीक्षा किए इस पुस्तक के सामने घुटने टेकती है। अनेक लोग इसे परम नियम और ज्ञानस्वरूप की कृति मानते हैं; परंतु हमारी दृष्टि में यह भीषण मूढ़-विश्वासों की एक संहिता-मात्र है। आइए, हम उस निंदासूचक नीच प्रशंसा को एक ओर फेंक दें, जिसका उपदेश हमें बाल-काल में मिला था। आइए, हम अपने भीतर दृष्टि डालें। आइए, हम उस भीतरी सुबुद्धि पर भरोसा करें, जो अंतरात्मा का शब्द है; तब पढ़िए और विचार कीजिए।

इबरानियों के भाग जाने को सुगम करने के लिये यहोवह को इस-से अच्छा और कोई साधन नहीं मिला कि वह मिसरियों के सभी जेठे बच्चों का नाश कर डाले, अर्थात् निरपराधों की हत्या कर दे।

इबरानी लोगों ने दौड़ते समय सोने के सभी पात्र और बहुमूल्य वस्त्र उधार लेकर, जिनको वे उठाकर ले जा सकते थे, मिसरियों को लूट लिया। यहोवह इबरानियों को लौटने की आज्ञा और फ़िरऔन को उनका पीछा करने का प्रलोभन देता है, जिससे वह उसे उसकी सारी सेना सहित नष्ट कर दे, (यह एक निरर्थक और क्रूर बदला था; क्योंकि इबरानी लोग भय से बाहर थे)।

इसरायल-वंशी मरुस्थली में अभाव से मरने लगते हैं, तो यहोवह उनके लिये बटेर और वंशलोचन भेजता है।

"सुनहले बछड़े" के पूजन से क्रुद्ध होकर यहोवह सारे इसरायलियों का नाश कर डालना चाहता है। मूसा बीच में पड़ता और उससे प्रार्थना करता है कि जिन तेईस सहस्र मनुष्यों का मैं पुरोहितों द्वारा वध करा चुका हूँ, उन्हीं पर संतुष्ट रहिए। शत्रों के इस करतब के उपरांत परमेश्वर इबरानियों को सहायता देना स्वीकार कर लेता है (मैं समझता हूँ केवल नरमांस-भक्षियों की देवोत्पत्तियों में ही हमें ऐसे घोर कर्म मिल सकते हैं)।

यहोवह इबरानियों को चेतावनी देता है कि यदि तुम मुझे अपने को अभिव्यक्त करने के लिये पुनः विवश करोगे, तो मैं तुम्हें समूल नष्ट कर दूँगा। मूसा यहोवह का मुँह देखना चाहता है, परंतु वह उत्तर देता है कि मैं तुम्हें अपने पिछले भाग ही दिखला सकता हूँ—"Videbis posteriora mea". (कैसा अपमान-जनक असंगति है!)।

ऊपरी अग्नि के साथ बलिदान देने के अपराध पर नादाब और आबीहू को मृत्यु-दंड दिया जाता है।

प्रभु को भेंट चढ़ाने के लिये रक्खे हुए बैल, भेड़ या बकरी को मारनेवाले की प्राण-हानि की जाती है।

जो अपने बच्चों को देव-मूर्तियों पर चढ़ाता है, उसे मार डाला जाता है।

इसरायल-वंशी थकान से चकनाचूर होकर प्रभु परमेश्वर के विरुद्ध कुड़कुड़ाते हैं, और वह उनके विरुद्ध आग भेजता है, जो कि अनेकों को नष्ट कर डालती है।

यहोवह इसरायलियों के लिये दुबारा बटेर भेजता है; परंतु जो लोग उन्हें बहुत खा जाते हैं, उन सबके लिये वह मृत्यु भेजता है।

हारून की बहन मरियम ने मूसा के विरुद्ध शिकायत की। परमेश्वर ने मरियम को श्वेत कुष्ठ का रोग उत्पन्न कर दिया।

इबरानी फिर कुड़कुड़ाते हैं। वह बाईस वर्ष और इससे बड़ी आयु के सभी लोगों को मरुस्थली में मरने का दंड देता है।

कोरह, दातान और अबीराम ने कुछ लोगों के साथ मूसा के विरुद्ध विद्रोह किया; यहोवह अग्नि को पृथ्वी मे निकालकर उनको विध्वंस कर डालने की आज्ञा देता है।

लोग फिर कुड़कुड़ाते हैं, वही आग चौदह हज़ार सात सौ व्यक्तियों को नष्ट कर डालती है।

इबरानी लोग फिर यहोवह की निंदा करते हैं। वह उनके विरुद्ध एक अग्निमय सर्प भेजता है और अनेकों को नष्ट कर डालता है।

इसरायल-वंशी, परमेश्वर की आज्ञा से, कवानियों और अमोरियों (Amorites) का नाश कर डालते हैं। वे बशन के राजा ओग और उसकी सारी प्रजा को बिना किसी अपवाद के टुकड़े-टुकड़े कर डालते और विजित भूमि पर आप बस जाते हैं।

मोआब की बेटियों के साथ संसर्ग के कारण पुरोहितों ने चौबीस सहस्र इसराइलियों का वध कर डाला।

यहोवह मूसा को मिद्यानियों को दंडित करने की आज्ञा देता है। बारह सहस्र इसरायली लोग उन पर चढ़ाई करते हैं। सब लोग तलवार के घाट उतारे जाते हैं, राजों का वध किया जाता है और स्त्रियाँ क़ैद कर ली जाती हैं।

मूसा क्रोध करता है कि सारी मिद्यानी स्त्रियाँ क्यों बचाई गई हैं। वह उन सबको छोटे लड़कों समेत मरवा डालता है और उन्हें केवल कुँआरी लड़कियों को ही न मारने की आज्ञा देता है—"Puellas autem, et omnes feminas virgines reservate vobis."

और उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। क्या इन प्राथमिक

इबरानी समयों का सारा इतिहास विध्वंस, हत्या और अपकर्षकारी मूढ़-विश्वासों के सिवा हमें और कुछ दिखा सकता है ?

क्या तत्सदृश इतिहासवाली और कोई जाति है, जिसने इसको परमात्मा की रक्षा में रखने का साहस किया हो ?

यदि मान लिया जाय कि ये सब हत्याएँ वस्तुतः हुई थीं, तो हम इनका कारण केवल मूसा के धर्मोन्माद को ही ठहरा सकते हैं; क्योंकि वह चाहता था कि जो कोई व्यक्ति पुरोहितों को दिए हुए उसके, अपने अथवा ईश्वर के अधिकार के विरुद्ध शिकायत करने का साहस करे, उसे वे मार डालें ।

मरुस्थली शायद सारी जाति के लिये यथेष्ट आहार न दे सकती थी, इसलिये नेता ने उपज का दसवाँ भाग लेने का निश्चय किया, जिससे वह घोरतर संहार के उन दृश्यों को रोक सके, जो दुर्भिक्ष का अनिवार्य परिणाम होते हैं ।

चाहे जो हो, इस जाति तथा इसके युग का हमारे लिये विचार हो चुका है । अतीत काल के इतिहास में मनुष्य-समाज के उत्पथ-गमन और निर्बलताओं के प्रमाण इससे बढ़कर और कहीं नहीं दिखाई देते ।

कई लोग ऐसे भी हैं, जिनको इन हत्याओं में, जहाँ क्वाँरी लड़कियों के सिवा स्त्री अथवा बच्चा कोई भी जीता न छोड़ा गया था, ईश्वरीय शक्ति की अभिव्यक्ति दिखाई देती है । हमें तो यह उन अशिष्ट और अशिक्षित लोगों पर, जो मिसर को छोड़ने से केवल लूट-खसोट और हत्या के द्वारा ही अपना मार्ग बना सके थे, निष्कंटक राज्य करनेवाले पाप के भाव की ही अभिव्यक्ति जान पड़ती है ।

नहीं, हम अपने विश्वासों और अपने दार्शनिक तथा धार्मिक ऐतिह्यों के मूल की खोज में इन लोगों के पास नहीं जायँगे, और इस पुस्तक—बाइबिल—से आधुनिक जातियों का नवीन धर्म नहीं निकलेगा ।

सातवाँ अध्याय

मिसर द्वारा इबरानी समाज पर स्थापित प्रभाव के कुछ विशेष उदाहरण

यहूदिया के आचार-विचार और रीति-रिवाज भारत के रीति-रिवाजों से इतना अधिक मिलते हैं कि हिंदोस्तान के स्वदेश-त्यागियों के पुरानी दुनिया में बस्तियाँ बसाने के विषय में कुछ भी संदेह बाक़ी नहीं रह जाता।

हमने उस प्राचीन सभ्यता की बड़ी-बड़ी विशेषताओं को मिसर, फ़ारस, यूनान और रोम में फैला हुआ देखा है। यहूदिया अब उसी प्रभाव को, यहाँ तक कि उसके सामाजिक संगठन की अतीव छोटी-छोटी बातों में भी, दिखलानेवाला है।

संसर्ग और स्पष्ट सादृश्य की उन अनेक बातों में से, जो सभी प्राचीन जातियों की उत्पत्ति के एक होने के विषय में हमारी और भी अधिक निश्चित प्रतिज्ञा को, जिसका हमने पहले ही पृष्ठों से प्रतिपादन किया है, प्रायः एक तत्त्व के रूप में प्रमाणित करती हैं, किसी यत्न-पूर्वक निर्वाचन का प्रयोजन नहीं।

इबरानी और हिंदू-विधवाओं का विवाह

बाइबिल की "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक में लिखा है—

"यहूदा ने अपने जेठे पुत्र एर का विवाह तामार नाम की एक स्त्री से कर दिया। एर यहोवह की दृष्टि में दुष्ट था, इसलिये यहोवह ने उसे मार डाला। यहूदा ने तब अपने दूसरे पुत्र ओनान से कहा कि तू अपनी भौजाई—तामार से विवाह कर ले, और अपने भाई के लिये संतान उत्पन्न कर।

ओनान यह जानता था कि यह संतान मेरी नहीं, प्रत्युत मेरे भाई

की ठहरेगी। इसलिये जब वह अपनी भौजाई के पास गया, तब उसने अपना वीर्य भूमि पर स्खलित करके नष्ट कर दिया।"

फिर रूत के वृत्तांत में लिखा है—

बोअज ने कहा—"मैं महलोन की स्त्री रूत मोआबिन को अपनी स्त्री बनाता हूँ, जिससे उसके मरे हुए पति का नाम उसके निज भाग पर स्थिर करूँ, ताकि कहीं ऐसा न हो कि उस मरे हुए का नाम उसके भाई-बंधुओं में से और उसके निवास के नगर में से मिट जावे।"

बाइबिल के अनेक और वचन यह बताते हैं कि उन दिनों यह नियम था कि जो पुरुष संतानहीन मर जाता, उसके निकटतम संबंधी को उसकी विधवा से विवाह करना पड़ता था। उनसे उत्पन्न होनेवाले बच्चे मृत की संतान समझे जाते थे, और उसके दायभाग को बाँटते थे।

यह रिवाज कहाँ से चला, और व्यवस्थापक के इसे कर्तव्य ठहराने के कारण की विवृत्ति क्या है? हमने बाइबिल के पुराने धर्म-नियम की सभी पुस्तकें छान डाली हैं। वे इस विषय पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालतीं। बहुत से टीकाकार बोअज के रूत के साथ अपने विवाह के बताए हुए उद्देश को स्वीकार करके यह विश्वास करते हैं कि विधवा का उसके मृत पति के भाई अथवा संबंधी के साथ समागम का प्रयोजन पति की संतति को जारी रखने के सिवा और कुछ न होता था।

यह निष्पत्ति संतोष-जनक नहीं। क्या किसी ऐसे मनुष्य-विशेष का स्वार्थ, जो अब इस संसार में नहीं है, इतना महत्त्व रख सकता है कि एक भाई—यदि वह न हो, तो एक संबंधी—को उसकी ख़ातिर अपने नाम और वंश से हाथ धोना पड़े?

क्या भाई अथवा संबंधी को संतान की वैसी ही इच्छा न होनी चाहिए? तो फिर उन्हें ऐसे विवाह के लिये क्यों विवश किया जाय,

जो यद्यपि दूसरे के कुल को जारी रखता है, पर उनके अपने वंश को समाप्ति कर डालता है ?

यह रीति, जिसका यहूदी-धर्म कोई भी समाधान उपस्थित नहीं कर सकता, हिंदुओं के धार्मिक विश्वासों में उत्पन्न हुई, भारत से जानेवाले लोगों ने इसका मिसर में प्रचार किया, और संभवतः इसके आशय को न समझते हुए इबरानियों ने इसे ग्रहण कर लिया।

हिंदुओं के विश्वासानुसार पिता तभी स्वर्ग में जा सकता है, जब उसका पुत्र उसकी मृत्यु पर उसका क्रिया-कर्म और श्राद्ध करे, और प्रतिवर्ष उसी मृत्यु-तिथि पर करता रहे। ये पूजन और श्राद्ध मृतक की आत्मा से उन सब दोषों को दूर कर देते हैं, जो उसको ईश्वरीय तत्त्व—परमानंद में लीन होने से रोकते हैं।

इसलिये यह परम प्रयोजनीय समझा गया कि प्रत्येक मनुष्य का एक पुत्र हो, जो उसके लिये स्वर्ग-धाम का द्वार खोल दे। यही कारण है कि धर्म भाई अथवा संबंधी की भक्ति को उत्तेजित करता और ऐसे पवित्र कर्तव्य का पालन करने से इनकार करनेवाले को निंदनीय ठहराता है।

इबरानियों में विधवा के सभी पुत्र उसके मृत पति के माने जाते हैं। यह बड़ा ही असंगत है; क्योंकि यह एक के वंश को जारी रखने में दूसरे के वंश का दीपक बुझा देता है।

इसके विपरीत हिंदुओं में इस प्रकार उत्पन्न हुआ पहला पुत्र ही अपनी माता के मृत पति का होता है, वही उसका उत्तराधिकारी बनता है, और मृतक का आवश्यक क्रिया-कर्म करना उसके लिये अनिवार्य होता है। शेष सभी बच्चे उस भाई अथवा संबंधी के समझे जाते हैं, जिसने उस विधवा से विवाह किया है, और इस प्रकार उसका धर्मकृत्य उसकी अपनी आशाओं का नाश नहीं करता; यदि उसके दूसरा पुत्र उत्पन्न न हो, तो क़ानून उसे किसी

ऐसे लड़के को दत्तक बना लेने की आज्ञा देता है, जो उसके नाम को बनाए रक्खे, और मरने के उपरांत उसका क्रिया-कर्म करे।

इबरानी रीति एक असंगति-मात्र है; क्योंकि यह सारे बच्चे मृतक के ही ठहराती और स्वाभाविक पिता का कुछ भी विचार न करके उसको संतति से वंचित रखती है।

हिंदू-रिवाज तर्क-संगत और युक्ति-सिद्ध है; क्योंकि यह दोनों के स्वार्थों की रक्षा करता है, और इस कर्म के लिये, जो अन्यथा अतर्क्य है, एक धार्मिक हेतु ठहराता है। किंतु बाइबिल इसकी व्याख्यात्मक सिद्धि की कुछ भी चेष्टा नहीं करती। यदि करती भी, तो संभवतः उसे इसमें सफलता न होती।

हम साफ़ देखते हैं कि यह ५क सुरक्षित हिंदू-ऐतिह्य-मात्र है, जिसका यथार्थ उद्देश विस्मृत हो गया है। हमें निश्चय है कि ओनान को कभी तामर के बाँझपन को बढ़ाने का विचार भी न आता, यदि क़ानून केवल उनके जेठे पुत्र को हो उसके भाई का ठहराता।

बाइबिल इन पशुओं को अपवित्र समझकर निषिद्ध ठहराती है—

मूसा सब जुगाली करनेवाले पशुओं के, जिनके खुर फटे हुए होते हैं, और सुअरों के उपयोग का, जो खुर फटे होने पर भी जुगाली नहीं करते, निषेध करता है।

मछलियों में से वह केवल पर और छिलकेवालियों के भोजन की ही आज्ञा देता है, और शेष सबको अपवित्र बताकर उनका निषेध करता है।

पक्षियों में ये निषिद्ध हैं—

गरुड़, हड़फोड़, शिकरा, चील, गिद्ध और इनकी जाति के अन्य पक्षी। भाँति-भाँति के सब कौए, उष्ट्रपक्षी, तहमास, जलकुक्कुट

और भाँति-भाँति के बाज़। हवासिल, हाड़गील, उल्लू, राजहंस, धनेश, गिद्ध, सब भाँति के बगले, टिटिहरी, चमगीदड़ और जितने पंखवाले चार पाँव के बल चलते हैं।

स्थल के जंतुओं में निम्नलिखित अपवित्र और निषिद्ध ठहराए गए हैं—सब भाँति के न्योले, चूहे, बिसखोपड़ और घड़ियाल, गिरगिट, छिपकली, छछूँदर और चूहा। जो मनुष्य इन जंतुओं को खाता है, वह उनके सदृश ही अपवित्र हो जाता है। जो इनके शव को छूता है, वह सायंकाल तक अपवित्र रहता है। जिस पात्र में ये पड़े हों, वह अपवित्र हो जाता है, उसे तोड़ डालना चाहिए।

मनु और पुराणों द्वारा अभक्ष्य ठहराई हुई चीज़ें—

द्विजों के लिये, उनको छोड़कर जिनकी धर्म-ग्रंथ आज्ञा देते हैं, शेष सब चौपाए, जिनके खुर चिरे हुए नहीं, अभक्ष्य हैं।

पालतू सुअर (जंगली सुअर नहीं), यद्यपि उसके खुर चिरे होते हैं, अभक्ष्य ठहराया गया है। सभी शिकारी पक्षी—जैसे गिद्ध, उकाब और चील जो चोंच से मारते और पंजों से चीरते हैं, निषिद्ध हैं।

यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि यही निषेध चिड़ियों की रक्षा करता है; क्योंकि ये हानिकारक कीड़ों को मारती और फ़सलों को बचाती हैं। फिर कुलंग, तोता, राजहंस, कठफोड़ा और जीभ से शिकार को पकड़नेवाले सारे पक्षी अभक्ष्य हैं। पंखों और चानों से रहित सभी मछलियाँ भी अभक्ष्य हैं।

अंततः रेंगनेवाले जंतु अथवा जो अपने पंजों से बिल खोदते हैं, सबसे अधिक अपवित्र समझकर निषिद्ध ठहराए गए हैं।

निर्जीव जंतुओं की लाशों के छूने से लगनेवाली सभी प्रकार की अपवित्रता सद्गुण और पांडित्य के लिये मनुष्य की ख्याति के अनुसार दस दिन और दस रात तक या चार दिन तक या केवल एक ही दिन तक रहती है।

पीतल, चाँदी या सोने का बर्तन, जिसमें मैली चीज़ पड़ी हो, या जो मैले पदार्थ को केवल छू ही गया हो, विधिपूर्वक शुद्ध किया जाना चाहिए।

मिट्टी के बर्तन को तोड़कर पृथ्वी में गहरा दबा देना चाहिए; क्योंकि कोई भी वस्तु इसे शुद्ध नहीं कर सकती।

ऐसी अनुरूप विधि-रचना के विषय में हमें क्या कहना चाहिए? क्या कोई इस पर आपत्ति करेगा कि ये निषेध स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी नियम हैं, और सभी प्राच्य जातियों में पाए जाते हैं? भारत इसका प्रथम उपदेशक है।

इन सबके खंडन का एक ही मार्ग है। वह यह कि भारत की प्राचीनता से इनकार किया जाय! एक विशेष श्रेणी के शपथ लिए हुए योद्धाओं से मुझे इस प्रकार का किसी चीज़ की पूर्ण प्रत्याशा है। मैं उनसे कुछ और आगे जाने और संस्कृत को इबरानी भाषा से उत्पन्न हुई प्रमाणित करने की प्रार्थना करता हूँ! इबरानी संस्कृत की माता! कौन जानता है, शायद मुझे वस्तुतः ही ऐसा परिहास्य देखना पड़े! ......

ऐसी स्त्रियों की परीक्षा, जिन पर व्यभिचार का संदेह हो,

बाइबिल में लिखा है (गणना)—

वह पुरुष अपनी स्त्री को याजक के पास ले जाय, और उसके लिये एपा का दसवाँ अंश जौ का मैदा चढ़ावे के तौर पर ले जाय; परंतु उस पर न तेल डाले, न लोबान रक्खे; क्योंकि वह जलनेवाली और स्मरण दिलानेवाली अर्थात् अधर्म का स्मरण करानेवाली अन्न-बलि होगी।

और, याजक एक मिट्टी के पात्र में कुछ पवित्र जल ले, और निवास-स्थान की भूमि पर की धूल में से कुछ लेकर उस जल में डाल दे, और उस स्त्री से कहे—"यदि किसी पुरुष ने तुझसे कुकर्म

न किया हो और तू पति के सिवा दूसरे की ओर फिरकर अशुद्ध न हो गई हो, तो उस दशा में तू इस कड़वे जल के गुण से, जो शाप का कारण होता है, बची रहे। परंतु यदि तू अपने पति के सिवा दूसरे की ओर फिरकर अशुद्ध हुई हो, और तेरे पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष ने तुझसे प्रसंग किया हो, तो यह जल, जो शाप का कारण होता है, तेरी अँतड़ियों में जाकर तेरे पेट को फुलावे और तेरी जाँघ को सड़ा दे।" इन शब्दों के साथ वह उस स्त्री को वह घूँट दे।

इधर गौतम कहता है (मनुस्मृति की टीकाएँ)—

"यह एक पुरानी रीति थी कि जब किसी स्त्री पर पर-पुरुष-गामिनी होने का अभियोग लगता था, तो उसे मंदिर के द्वार पर लाकर मंदिर के अधिकारी ब्राह्मण के सिपुर्द कर दिया जाता था। वह एक पात्र में कुश का एक तिनका, किसी अशुद्ध जंतु के चरण-चिह्नों की थोड़ी-सी धूल, और किसी पतित द्वारा कुएँ से निकाला हुआ जल डालकर उस स्त्री को पीने के लिये देता और उससे कहता था— 'यदि तेरे गर्भाशय में कोई ऊपरी वीर्य नहीं गया, तो यह पात्र तुझे अमृत के समान मधुर प्रतीत होगा। यदि इसके विपरीत तू इस प्रकार दूषित हो चुकी है, तो तू मर जायगी, और गीदड़ की योनि में जायगी। परंतु इस बीच में तुझे श्लीपद-रोग हो जायगा, और तेरा शरीर सड़ जायगा।' इस धार्मिक अनुष्ठान के लिये क़ानून ने बहुत दिनों से" इत्यादि-इत्यादि।

लोथों के स्पर्श का दूषण (बाइबिल, गणना)—

"जो किसी मृत मनुष्य के शरीर को छूता है, वह सात दिन तक अपवित्र रहता है। प्रायश्चित्त के जल से उसके कलंक को साफ़ करना चाहिए।

"मृतक के तंबू में जानेवाले सभी लोग, और उसके भीतर के

सभी पात्र सात दिन तक अपवित्र रहते हैं। दूषित मनुष्य जिन पदार्थों को छूता है वे सब भी दूषित हो जाते हैं।"

मृतक के स्पर्श का दूषण (मनु और पुराण)—

"मृतक को छूने का अशौच दस दिन तक रहता है।" (मनु, अ० ५)

"ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध हो जाते हैं।"

"जो व्यक्ति मृत वैश्यों या शूद्रों के घर में जाता है, वह दस दिन तक अपवित्र रहता है।"

"मृत ब्राह्मण के स्पर्श का दूषण केवल एक ही दिन तक रहता है।"

"जब कोई मनुष्य मर जाता है, तो घर के सभी पात्र अशुद्ध हो जाते हैं। धातु के पात्र आग से शुद्ध किए जाते और मिट्टी के बर्तन तोड़कर दबा दिए जाते हैं।"

"शुद्धि के जल से स्नान करने से मनुष्य शुद्ध होता है।"

मनु अपने समय की शुद्धि की कुछ रीतियों और संस्कारों का वर्णन करता है। ऐसे मूढ़विश्वास-मूलक अनुष्ठानों की चर्चा करते हुए वह एक ऐसे उच्च आदर्श से, जिसका बाइबिल को पता ही नहीं, कहता है—

"सारी पवित्र वस्तुओं में से धनोपार्जन में पवित्रता सबसे उत्तम है। जो मनुष्य धनाढ्य बनने में अपनी शुद्धता की रक्षा करता है, वही वस्तुतः शुद्ध है, न कि वह, जो मिट्टी और जल द्वारा शुद्ध हुआ है।

"ज्ञानी लोग अपने को अपराधों की क्षमा, दान और प्रार्थना द्वारा शुद्ध करते हैं।

"ब्राह्मण अपने को पवित्र ग्रंथों के अध्ययन से शुद्ध करता है। जैसे शरीर जल से शुद्ध होता है, वैसे ही मन सत्य से शुद्ध होता है।

"निर्दोष सिद्धांत और सत्य-कार्य आत्मा को शुद्ध करते हैं। बुद्धि ज्ञान द्वारा शुद्ध होती है।"

मृतक से दूषण का यह विचार, जो जड़ पदार्थों तक फैला हुआ है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि हिंदुओं से आया है। मूसा ने इन प्राचीन ऐतिह्यों की अक्षरशः नक़ल की है; परंतु आचार-व्यवहार को पुनर्जीवित करते हुए उसने सावधानता-पूर्वक उन उदार मतों, उन उज्ज्वल विचारों, का पुनः प्रचार नहीं किया, जो मनु में, जब वह पुरोहितशाही की दासता को भूलकर प्राथमिक और सविस्तर वेदों के श्रेष्ठ उपदेशों को प्रतिध्वनित करता है, हमें पग-पग पर मिलते हैं।

बाइबिल उसके आदर्श से इस बार ही नीची नहीं पाई गई। वह इससे कभी नहीं बढ़ेगी।

उस प्राचीन सभ्यता के म्लान प्रत्यावर्तन ने, जिसने प्राचीन जगत् में जीवन का संचार किया था, ऐसा जान पड़ता है कि केवल नवीनों को ही उन हास्य-जनक कुसंस्कारों की दीक्षा देने का नियम बना रक्खा था, जिनमें पौराणिक पुरोहितशाही लोगों के जीवनों को रत रखती थी, ताकि वे अपनी दासता को भूल जायँ।

लेवियों और हिंदुओं के यज्ञ और अनुष्ठान

जिन यज्ञों और अनुष्ठानों की मूसा ने व्यवस्था दी है, उनकी प्रत्येक छोटी-से-छोटी बात भी भारत की अशिष्ट पूजा से ली गई है।

पौराणिक यज्ञों का विशेष हव्य वृषभ है, जो भारत में परमेश्वर के चढ़ावे के लिये सर्वोत्तम बलि होने के कारण, सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

लैव्य-व्यवस्था (बाइबिल) भी तबू के द्वार पर बैल के बलिदान का ही विधान करती है।

कम महत्त्व के अनुष्ठानों में पौराणिक पुरोहित लाल हरिण और बकरियों को, ऐसी भेड़ों को जिन पर कोई धब्बा न हो, और उनको

जिन्होंने अभी बच्चा न जना हो, काले मृगों, धब्बेवाली मृगियों, और कपोतों (Turtle dove) को वेदी पर चढ़ाता था।

"लैव्यव्यवस्था" भी इसी प्रकार भेड़ों, बकरियों और। कपोतों के बलिदान का विधान करती है।

हिंदुओं के फलों के चढ़ावे में ये चीज़ें होती थीं—आटा, चावल, तेल, घी और सब प्रकार के मेवे।

इबरानी लोग उसी बलि के लिये इन चीज़ों का व्यवहार करते हैं—आटा, रोटी, तेल और सब नाजों के पहले फल।

दोनों जातियाँ चढ़ावों में नमक का डालना आवश्यक समझती हैं। ब्राह्मण और लेवी लोग एक ही तरह बलि का कुछ भाग आपस में बाँट लेते हैं।

हिंदू-वेदी पर सदा आग जलती रहती है, देव-दासियाँ, अर्थात् सुप्रतिष्ठित धर्मयाजिकाएँ उसके बुझने का ध्यान रखती हैं।

वही आग इबरानी उपासना-मंदिर में जलती है, और लेवी उसके बुझने का ध्यान रखते हैं; क्योंकि मूसा स्त्रियों को परमात्मा की पूजा की आज्ञा नहीं देता।

अंत को भारत में और उसी प्रकार यहूदिया में, सारे अशौचों और धर्म के विरुद्ध सारे अपराधों की निष्कृति शुद्धि के यज्ञों और अनुष्ठानों द्वारा होती है।

मैं इस विषय में और अधिक नहीं कहूँगा। जो कुछ मैं कह चुका हूँ, मैं समझता हूँ अनुकरण सिद्ध करने के लिये वही यथेष्ट है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मिसर की भाँति, जहाँ यह लोगों के लिये एक देवता बन गया, फ़ारस और यूनान की तरह जहाँ यह उनका अत्यंत नैष्ठिक-बलिदान (Hecatomb) था, यहूदिया ने भी वृषभदेव के लिये यह सम्मान दाय में पाया था।

यह सम्मान निर्विवाद रूप से भारतीय उपज है। इस प्रकार बाइबिल के प्रत्येक पृष्ठ पर हमें इस प्रकार के वचन मिलते हैं—

"तू उस बैल का मुँह मत बंद कर, जो नाज को रौंदता है, और तू उसे वह खाने दे।"

"तू बैल को गधे के साथ जोतकर हल मत चला।"

हमें मानना पड़ेगा कि सम्मान के ये प्रमाण मिसरियों के प्राचीन, अशिष्ट कुसंस्कारों का अवशेष-मात्र हैं। मूसा अपने को इनसे मुक्त करने में सर्वथा असमर्थ था।

संतानोत्पत्ति के उपरांत स्त्रियों की हिंदू तथा इबरानी रीति के अनुसार

शुद्धि—

"लैव्यव्यवस्था" में लिखा है—

"जो स्त्री गर्भिणी होकर लड़का जने, उसे सात दिन का अशौच लगे, अर्थात् जैसे वह ऋतुमती होकर अशुद्ध रहा करती है, वैसे ही जनने पर भी अशुद्ध रहे।

"यदि वह लड़की जने तो उसको ऋतुमती का-सा अशौच चौदह दिन का लगे, और उसकी शुद्धि के लिये साठ दिन लगें।

"और जब उसके शुद्ध हो जाने के दिन पूरे हो जायँ, तब चाहे वह बेटा जनी हो चाहे बेटी,

मनु कहता है—

"बच्चे के जन्म से माता-पिता, विशेषकर माता अशुद्ध हो जाती है। वह उतने दिन तक अशुद्ध रहती है, जितने मास तक उसने गर्भधारण किया हो। उसकी शुद्धि वैसे ही होती है, जैसे उसके ऋतुमती होने के उपरांत होती है।"

कुल्लूक की टीका में लिखा है—"पूर्व-काल में यह रीति थी कि शुद्धि-संस्कार की समाप्ति पर, स्नान के पश्चात्, स्त्री एक अनमुँडे लेले, मधु, चावल और घृत का चढ़ावा चढ़ाती

वह होमबलि के लिये बरस दिन का भेड़ी का बच्चा, कबूतरी का एक बच्चा अथवा पिंड की उपासना-मंदिर के द्वार पर याजक के पास, निष्कृति के तौर पर, ले जाय।"

थी। आजकल, स्नान के उपरांत, वह ब्राह्मण संन्यासियों को चावल के दस मान, और घी के छः कुप्पे भेंट चढ़ाती है।"

ब्राह्मणों के लिये संपत्ति रखने का निषेध

मनु के अनुसार ब्राह्मण का धर्म यज्ञ कराना और वेद पढ़ाना है। उसका सारा समय ईश्वर को अर्पित होने के कारण वह उसका कोई भी भाग खेती करने, पशु चराने अथवा फ़सलें इकट्ठी करने में नहीं ख़र्च कर सकता। ये काम परमेश्वर ने वैश्यों के लिये नियत किए हैं। परंतु भारत में एक भी ऐसा खेत, ऐसा क्षेत्र, ऐसा पेड़, अथवा ऐसा गृह-पशु नहीं, जो ईश्वर के निरूपित पुरुष ब्राह्मण के अभावों को पूरा करने में सहायता न देता हो।

महर्षि भृगु कहते हैं—"प्रति वर्ष अपना चावलों का सबसे प्रथम इकट्ठा किया हुआ मान, अपना जेठा बछड़ा, जेठा लेला और जेठा मेमना ब्राह्मणों को दो। अपने नारियल के पेड़ों के पहले फल, अपने कोल्हू का पहला तेल, अपना पहला बुना हुआ कपड़ा उनको दो। यदि तुम चाहते हो कि परमेश्वर तुम्हारी संपत्ति तुम्हारे पास सुरक्षित बनाए रक्खे, और पृथ्वी तुम्हारी इच्छा के अनुसार प्रचुर उपज दे, तो जान लो कि तुम्हारे अधिकार में, जो कुछ है, उसका संपूर्ण पहला और सर्वोत्तम भाग उनका है।"

इसी प्रकार की इबरानी व्यवस्था—

यहोवह, मूसा और हारून के मुख से, लेवियों को भूमि देने का निषेध करता है।

यहोवह कहता है—"मैंने तुमको वह सब दिया है, जो अन्न, मदिरा

और तेल में सर्वोत्कृष्ट है, जो परमेश्वर को जेठे फलों के रूप में चढ़ाया जाता है। पृथ्वी के सभी पहले फल, जो परमेश्वर की भेंट किए जाते हैं, तुम्हारे उपभोग के लिये सुरक्षित हैं; तुम्हारे कुल के पवित्रात्मा व्यक्ति उन्हें खायँगे।

"इसरायल-वंशी जो कुछ मेरे लिये संकल्प करते हैं, वह तुम्हारा होगा। सभी जेठे बच्चे चाहे वे मनुष्य के हों अथवा पशु के, जो ईश्वर की भेंट चढ़ाए जाते हैं, तुम्हारे हैं, फिर भी शर्त यह है कि तुम मनुष्य के जेठे के लिये मूल्य स्वीकार करो, और अशुद्ध जंतुओं के लिये निष्कृति धन ले लो।

"परंतु तुम बैल, बकरी और भेड़ के जेठे बच्चों को रुपया लेकर न लौटाओ; क्योंकि वे ईश्वर को भाते हैं।"

हिंदू और इबरानी में केवल इतना ही भेद है कि ब्राह्मणों को मनुष्य का जेठा नहीं चढ़ाया जाता था और अशुद्ध पशुओं का जेठा बच्चा नहीं चढ़ाया जा सकता था।

इनकी इतनी बड़ी अभिन्नता पर किसी टीका-टिप्पणी का प्रयोजन नहीं। भारत का प्रभाव उसके प्राचीन जातियों को दायभाग में दिए हुए क्या बड़े-बड़े सामाजिक नियमों में, क्या उनकी छोटी-छोटी बातों में और क्या उनके व्यापक कार्य में, प्रत्यक्ष देख पड़ता है।

लेवियों की अशुचिता और उसकी शुद्धि

हम जब "लैव्यव्यवस्था" के पंद्रहवें अध्याय में स्त्री और पुरुष के अकाम अशौच की शुद्धि के नियमों को पढ़ते हैं, तब हमें उनको इसी विषय पर हिंदुओं के धार्मिक नियमों का प्रतिलिपि-मात्र देखकर स्वभावतः ही बड़ा आश्चर्य होता है।

अच्छा अब हम—उदाहरणार्थ—उपर्युक्त अध्याय की दो बातें लेकर उनकी तुलना उनके समान हिंदू-नियमों से करते हैं।

पुरुष की अशुचिता—

"इसरायल-वंशियों से कह दो कि जिस पुरुष के वीर्य झरता हो, वह उस कारण अशुद्ध ठहरे और, चाहे बहता हो और चाहे बहना बंद भी हो, तो भी उसकी अशुद्धता ठहरे ही गी।

"जिसके वीर्य झरता हो, वह जिस-जिस बिछौने पर लेटे, वह अशुद्ध ठहरे, और जिस-जिस वस्तु पर वह बैठे, वह भी अशुद्ध ठहरे। और जो कोई उसके बिछौने को छुए, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और, जिसके वीर्य झरता हो, वह जिस वस्तु पर बैठा हो, उस पर जो कोई बैठे, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जिसके वीर्य झरता हो, उससे जो कोई छू जाय इत्यादि-इत्यादि।"

"और जिसके वीर्य झरता हो यदि वह किसी शुद्ध मनुष्य पर थूके, तो जिस पर उसने थूका हो, वह अपने वस्त्रों को इत्यादि-इत्यादि, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जिसके वीर्य झरता हो वह सवारी की वस्तु पर बैठे, वह अशुद्ध ठहरे।"

"और जो कोई किसी वस्तु को, जो उसके नीचे रही हो, छू ले, वह साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जो कोई ऐसी किसी वस्तु को उठावे, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जिसके वीर्य झरता हो, वह जिस किसी को विना हाथ धोए छूए, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जिसके वीर्य झरता हो, वह मिट्टी के जिस किसी पात्र को छुए, वह तोड़ डाला जाय, और काठ के सब प्रकार के पात्रादि, जिन्हें वह छुए, वे जल से धोए जायँ।"

"फिर जिसके वीर्य झरता हो, वह जब अपने रोग से चंगा हो जाय, तब से शुद्ध ठहरने के सात दिन गिन ले, और उनके बीतने पर अपने वस्त्रों को धोकर बहते हुए जल से स्नान करे, तब वह शुद्ध ठहरेगा।"

"और आठवें दिन वह दो पिंडुक अथवा कबूतरी के दो बच्चे लेकर मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह के सम्मुख जाकर उन्हें याजक को दे।"

"तब याजक उनमें से एक को पाप-बलि और दूसरे को होम-बलि करके चढ़ावे। इस भाँति याजक उसके लिये उसके वीर्य झरने के निमित्त यहोवह के सामने प्रायश्चित्त करे।"

"और जब कोई पुरुष स्त्री से प्रसंग करे, तो वे दोनों जल से स्नान करें, और साँझ तक अशुद्ध रहें।"

स्त्री की अशुचिता—

"फिर जब कोई स्त्री ऋतुमती हो, तो वह सात दिन तक अशुद्ध रहे, और जो कोई उसको छुए वह साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जब तक वह अशुद्ध रहे, तब तक जिस-जिस वस्तु पर वह लेटे, और जिस-जिस वस्तु पर वह बैठे, वे सब अशुद्ध ठहरें।"

"और जो कोई उसके बिछौने को छुए, वह अपने वस्त्र धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"यदि कोई पुरुष उससे प्रसंग करे, और उसका रुधिर उसके लग जाय तो वह पुरुष सात दिन तक अशुद्ध रहे, जिस-जिस बिछौने पर वह लेटे, वे सब अशुद्ध ठहरें।

"फिर यदि कोई स्त्री अपनी ऋतु के योग्य समय को छोड़ बीच के दिनों में भी रजस्वला हो, अथवा उस योग्य समय से अधिक ऋतुमती रहे, तो जब तक वह ऐसी रहे, तब तक अशुद्ध ही रहे।

"उसके ऋतुमती रहने के सब दिनों में जिस-जिस बिछौने पर

वह लेटे, वे सब उसके रजस्वाले बिछौने के समान ठहरें, और जिस-जिस वस्तु पर वह बैठे, वे भी उसके ऋतुमती रहने के योग्य दिनों की तरह अशुद्ध ठहरें।"

"और जो कोई उन वस्तुओं को छुए, वह अशुद्ध ठहरे। वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जब वह स्त्री अपनी ऋतु से शुद्ध हो जाय, तब से वह सात दिन गिन ले, और उनके बीतने पर वह शुद्ध ठहरे।"

फिर आठवें दिन वह दो पिंडुक अथवा कबूतरी के दो बच्चे लेकर मिलापवाले तंबू के द्वार पर याजक के पास जाये।

"तब याजक एक को पाप-बलि और दूसरे को होम-बलि करके चढ़ावे इसी भाँति याजक उसके लिये उसके रजस् की अशुद्धता के कारण यहोवह के सामने प्रायश्चित्त करे।"

"इस-इस प्रकार से, हे मूसा और हारून ! तुम इसरायल-वंशियों को भाँति-भाँति की अशुद्धता से न्यारे कर रक्खो। कहीं ऐसा न हो कि वे मुझ यहोवह के निवास को, जो उनके बीच है, अशुद्ध करके अपनी अशुद्धता में फँसे हुए मर जायँ।"

"जिसके वीर्य झरता हो, और जो पुरुष वीर्य स्खलित होने से अशुद्ध हो, और स्त्री ऋतुमती हो, और क्या पुरुष और क्या स्त्री, जिस किसी के झरता हो और जो पुरुष अशुद्ध स्त्री से प्रसंग करे, इन सबों की यही व्यवस्था है।"

वेद-वर्णित अशुचिता और उसकी शुद्धि (रामसरियर Ram a-tsariar)—

वेद इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं कि जिस प्रकार आत्मा का मैल ईश्वर-प्रार्थना और उत्तम कार्यों से धुल जाता है, उसी प्रकार शरीर की अशुचिता स्नान से दूर करनी चाहिए।

रामसरियर, जिसके प्रमाण हम अभी देंगे, एक बहुत पुराना

महात्मा है। दक्षिणी भारत के ब्राह्मण धर्म-पंडितों में उसका बड़ा सम्मान है। धर्म-संबंधी सभी यज्ञों और अनुष्ठानों के विषय में वह प्रमाण माना जाता है।

इस विषय में उसके शब्द ये हैं—

"स्त्री और पुरुष, दोनों समान रूप से उस स्थिति के अधीन हैं, जो उनको अशुद्ध होने के कारण पारिवारिक उत्सवों और देव-मंदिर के अनुष्ठानों में भाग लेने से रोकती है। जब तक उस स्थिति की समाप्ति न हो जाय, गंगा के पवित्र जल में स्नान करने से भी वे शुद्ध नहीं हो सकते।"

पुरुष की अशुचिता—

"जिस पुरुष को स्त्रियों के उपयोग अथवा दुरुपयोग से कोई रोग हो जाय, वह उस रोग के दिनों में, और फिर नीरोग हो जाने के उपरांत दस दिन और दस रात तक अशुद्ध रहता है।"

"उसकी साँस अशुद्ध है, उसका थूक और उसका पसीना अशुद्ध हैं।"

"वह अपनी भार्या के साथ, अपने बच्चों के साथ, अपने वर्ण के किसी मनुष्य और अपने किसी संबंधी के साथ न खाय। उसका भोजन अशुद्ध हो जाता है। जो कोई उसके साथ खाता है, वह तीन दिन तक अशुद्ध रहता है।"

"उसके वस्त्र अशुद्ध हो जाते हैं। उन्हें शुद्धि के जल से साफ़ करना चाहिए।"

"जो लोग उसे छूते हैं, वे तीन दिन तक अशुद्ध रहते हैं।

"जो कोई हवा के रुख़ से उससे बातचीत करता है, वह अशुद्ध है, और सूर्योदय पर स्नान करने से अपने को पवित्र करता है।"

"उसके बिछाने की चटाई अशुद्ध है। उसे जला देना चाहिए।

"उसका बिछौना अशुद्ध है। उसे शुद्धि के जल से साफ़ करना चाहिए।"

"उसके जल पीने के पात्र, और उसकी मिट्टी की रकाबियाँ जिनमें उसके चावल थे, अशुद्ध हैं। उन्हें तोड़कर पृथ्वी में दबा देना चाहिए।"

"यदि उसके पात्र ताँबे अथवा किसी अन्य धातु के हों, तो उन्हें शुद्धि के जल अथवा अग्नि से शुद्ध किया जा सकता है।"

"जो स्त्री अपनी दशा को जानते हुए भी, उसे अंगीकार करती है, वह दस दिन और दस रात तक अशुद्ध रहती है। वह गर्ह्य अशुचिताओं के लिये निरूपित तालाब में स्नान करने के उपरांत शुद्धि का याग करे।"

"इस प्रकार अशुद्ध हुआ पुरुष अपने मृत माता-पिता का वार्षिक श्राद्ध करने में अक्षम हो जाता है। उसका किया श्राद्ध और यज्ञ अशुद्ध है। परमेश्वर उसे अस्वीकार करता है।

"जिस घोड़े, ऊँट अथवा हाथी पर चढ़कर वह यात्रा करता है, वह अशुद्ध हो जाता है।"

"उसे जल में कुश डालकर स्नान करना चाहिए।"

"उसके गंगा-स्नान करने से भी उसका पाप दूर नहीं होता; क्योंकि स्नान के समय वह अशुद्ध था।"

"यदि वह पवित्र गंगा-जल घर लावे, तो लोग उसे शुद्धि का जल समझकर काम में लावें। अन्यथा वे भी उसके सदृश ही अशुद्ध हो जायँगे।"

"यदि वह इस दशा में अपने वर्ण के किसी मनुष्य को पीटे, तो उससे साधारण दंड से दुगना लिया जाय, और जिस मनुष्य को पीटा है, वह सूर्यास्त तक अशुद्ध रहे।"

"निरामय होने पर वह गर्ह्य अशुचिताओं के तालाब में स्नान करे। फिर वह शुद्धि के जल से मज्जन करे। इसके उपरांत सारा दिन ईश्वर-प्रार्थना में बितावे, जिसके लिये वह उस समय तक अयोग्य समझा गया था।"

"ईश्वर-भक्तों को वह प्रचुर नैवेद्य दे।"

"तब वह मंदिर के द्वार पर जाय, और चावल, शहद, घी और ऐसे मेमने का चढ़ावा चढ़ावे, जिसका उस समय तक कभी मुंडन न हुआ हो। यदि वह निर्धन हो और भेड़ का बच्चा न चढ़ा सके, तो कबूतर के ऐसे बच्चों का जोड़ा चढ़ावे, जिन पर दाग़ न हो, और जिन्होंने उस समय तक घोंसले न बनाए हों, अथवा प्रणय का गीत न गाया हो।"

"तब वह शुद्ध ठहरेगा, और अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ आनंद भोग सकेगा।"

स्त्री की अशुचिता—

महर्षि मनु ने कहा है—"सोलह पूरे दिन, उन चार विभिन्न दिनों सहित, जिनको महात्माओं ने निषिद्ध ठहराया है, स्त्री का स्वाभाविक ऋतुकाल है। इन दिनों में ही पति उसके पास जा सकता है। इन सोलह दिनों में से पहले चार तथा ग्यारहवाँ और तेरहवाँ दिन निषिद्ध हैं। शेष दस दिनों की ही आज्ञा है।"

वेद कहता है—"स्त्री के ऋतुकाल में पति को उसका वैसा ही सम्मान करना चाहिए जैसा कि हम कदली-कुसुम का करते हैं; क्योंकि वह उर्वरता और आनेवाली फ़सल की घोषणा करता है।"

"संयम के प्रयोजन से ग्यारहवाँ और तेरहवाँ दिन निषिद्ध ठहराया गया है। केवल पहले चार दिन ही उन लोगों के लिये अशुचिकर समझे गए हैं, जो उनका सम्मान नहीं करते।

"इन चार दिनों में स्त्री अशुद्ध होती है। वह अपने अलग कमरे में रहे, और अपने को अपने पति, संतान और भृत्यों से छिपाए रक्खे।

"उस की साँस, उसका थूक, और उसका पसीना अशुद्ध है।

"जिस वस्तु का वह स्पर्श करती है, वह तत्काल अशुद्ध हो जाती है, और उसके दूध के बर्तन को हाथ में लेने से वह दूध फट जाता है।

"उसके बिछाने की चटाई अशुद्ध हो जाती है, इसलिये उसे जला देना चाहिए, और खाट को शुद्धि के जल से साफ़ कर डालना चाहिए।"

"जिस वस्तु पर वह विश्राम करती है, वह अशुद्ध हो जाती है। जो उस स्त्री से छूते हैं, वे अशुद्ध हो जाते हैं। उन्हें सायंकाल के स्नान से अपने को शुद्ध करना चाहिए।"

"इस दशा में वह न अपने पति का, न पिता का, और न माता का ही नाम उच्चारण करे; क्योंकि वह अशुद्ध है, और इससे वे भी अशुद्ध हो जायँगे।"

"वह अपने शरीर पर कुंकुम न मले।"

"वह अपने को पुष्पों से अलंकृत न करे।"

"वह दासियों से अपने बालों को सँवारने के लिये न कहे। इस दशा में वह प्रसंग करने का यत्न न करे।"

"वह अपने आभूषणों को उतार दे, नहीं तो वे अशुद्ध हो जायँगे और उन्हें आग से शुद्ध करना पड़ेगा।"

"उसे अपने पति, बच्चों और अपनी परिचारिकाओं के साथ, चाहे वे उसके अपने वर्ण को ही क्यों न हों, न खाना चाहिए।"

"वह होम न करे और न श्राद्ध ही में सहायता दे; क्योंकि उसका दिया नैवेद्य अशुद्ध और उसका किया श्राद्ध अपवित्र है।

"यदि महर्षि मनु द्वारा कही हुई चार दिन की अशुद्धता दो, चार या छः दिन तक और बढ़ जाय, तो ऐसे समय में, जैसा कि धर्म-शास्त्र कहता है, शुद्धि न की जाय।"

"जब सारे वाह्य चिह्न जाते रहें, तब सबेरे और साँझ दो स्नानों के उपरांत, जिनको सूर्योदय और सूर्यास्त के स्नान कहते हैं, वह शुद्धि के जल के साथ अपने को निर्मल करे।

"फिर वह देवमंदिर के द्वार पर जाय। चावल, शहद और घृत का

नैवेद्य चढ़ावे। वह भेड़ का एक ऐसा बच्चा भी चढ़ावे, जिस पर न कोई दाग़ हो, और जो तब तक न कभी मूँड़ा हो गया हो। यदि यह न मिल सके, तो वह कबूतरों का एक ऐसा जोड़ा दे, जिसने उस समय तक प्रणय का गीत न गाया हो, अथवा अपने घोंसले न बनाए हों।

"इतना कर चुकने के उपरांत वह पवित्र होकर घर का काम-काज करे।"

"अब उसे पति को बुलाने की आज्ञा है, जिसने शास्त्र की इस आज्ञा के अनुसार अपने को उससे अलग किया था,—"जो मनुष्य निषिद्ध रातों में स्त्री-समागम नहीं करता, वह द्विज अथवा ब्रह्मचारी के समान पवित्र है।"

इब्रानी और हिंदू-समाज में ऐसे स्पष्ट सादृश्यों को देखते हुए भी जो मनुष्य मूसा को एक व्यवस्थापक के अतिरिक्त कुछ और समझता है, वह वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान का एक असंकोचशील योद्धा है। मूसा को ऐसे लोगों के लिये व्यवस्था तैयार करनी थी, जो एक दास-समूह की, एक ऐसे मनुष्य-समुदाय की संतान थे, जो परिश्रम और तितिक्षा के नियमों के सिवा और किसी के अधीन होना जानता ही न था। इसलिये वह मेनस (Manes) और उन मिसरी संस्थाओं की नक़ल करके ही संतुष्ट हो गया, जो निर्विवाद रूप से पूर्व की उपज हैं।

इसके अतिरिक्त क्या हमें यह मालूम नहीं कि एशिया के सभी लोग इन्हीं रीति रिवाजों के अधीन थे, और उनमें से बहुत-से अभी तक भी उनका सम्मान करते हैं।

उन गरम देशों में धर्म ने शारीरिक शुचिता के लिये स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी व्यवस्थापन का काम भी अपने ही ऊपर लिया; क्योंकि उन भयानक महामारियों को रोकने का, जो समय-समय पर उन देशों को उजाड़ डाला करती हैं, और कुष्ठ-जैसे भयानक रोग से

बचने का, जो अब योरप में तो नहीं रहा, परंतु पूर्व में अभी तक प्राचीन समयों की-सी तीव्रता से फैल रहा है, यही एक-मात्र उपाय था।

मनु से लेकर मुहम्मद तक स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी नियम एक ही रहे हैं। जलवायु आवश्यकता को प्रकट करता था, और यदि कुछ लोग ऐसे मौजूद न होते, जो अपने धर्मोन्माद में, चाहे वह सच्चा हो अथवा दिखलावे का, सब कहीं ईश्वरीय प्रत्यादेश और ईश्वर का हाथ देखने पर दुराग्रह करते हैं, तो मैं यह दिखलाने का कभी यत्न न करता कि मूसा ने पुराने रीति-रिवाजों की केवल नक़ल की है, और उनका ग्रहण करना उसके लिये स्वाभाविक था।

मूसा ने ब्राह्मणों, मिश्र के भविष्यद्वक्ताओं, फ़ारस के मगों तथा प्राचीन यूनान के पुरोहितों के उदाहरण का अनुकरण करते हुए वेदी पर बैल की बलि की आज्ञा दी। परंतु कितने आश्चर्य का विषय है कि जेज़ूइट, मनोचियंस (Menochins) और केरीर (Carriere) लोग इसको अति प्राचीन रीति-रिवाजों का स्वाभाविक परिग्रहण न समझ इसे महायज्ञ (Eucharist) का नमूना और चिह्न मानते हैं।

मूसा उष्ण जलवायु के कारण आवश्यक स्नानों की आज्ञा देता है, और मेनस तथा मनु की बनाई मर्यादा का ग्रहण करता है; इसमें यह मानने के स्थान में कि उसने पूर्व के प्रचलित आचार-व्यवहार का अनुकरण किया है, वही जेज़ूइट लोग इबरानियों पर कर्तव्य ठहराए गए स्नानों को नवीन धर्म की पवित्रता का एक चिह्न समझते हैं, जो कि, बाद को, ईसाई जगत् का पुनरुद्धार करेगी।

अर्थ करने की शैली सदा वही है। अर्थात् अत्यंत तुच्छ रीति का संबंध भी सीनै पर्वत और ईश्वरीय प्रत्यादेश के साथ जोड़ा जाता है। परंतु ऐसी प्रतिज्ञाओं को बनाए रखने के लिये हमें कैसी-कैसी दीन युक्तियों का आश्रय नहीं लेना पड़ता!

परंतु हम आश्चर्यान्वित क्यों हैं ? क्या हमें यह बहुत देर से मालूम नहीं कि मनुष्यों की विशेष श्रेणियाँ ऐसी हैं, जो अपनी सीमा के बाहर किसी भी ऐतिहासिक तथ्य, सुबुद्धि और युक्ति का स्वीकार नहीं करतीं ?

क्या ब्राह्मण, मजूस, लेवी और भविष्यद्वक्ता, जो अपने आपको ईश्वर के प्यारे, सत्य और धर्म के एक-मात्र उपदेशक विघोषित करते हैं, एक क्षण के लिये भी अपनी प्रतिष्ठा के विषय में विचार करने की आज्ञा देंगे ? क्या वे अपने शत्रुओं का बहिष्कार नहीं करते? क्या उन्होंने उन अपने शासन से छुटकारा पाने की चेष्टा करनेवाले सम्राटों को कंपायमान नहीं किया ? क्या उन्होंने यातना और सूली का डर दिखाकर शासन नहीं किया ?

इसलिये यदि हम ऐतिह्य को निरंतर पाते हैं ; यदि दाय को दायाद मिल गए हैं, और यदि आधुनिक लेवी समाज (Levi teism) ने युक्ति और स्वतंत्रता को बहिष्कृत करने, और उस प्राचीन याजकीय निरंकुशता को, जिसने प्राचीन काल में संसार को खँडहरों और धर्मवीरों से भर दिया था, पुनर्जीवित करने के व्यक्त उद्देश्य से घोर युद्ध करने के लिये अपनी सभी सेनाओं को एकत्र किया है और सारी संचित सेना को वापस बुला लिया है, तो हमारे पास आश्चर्य करने के लिये कारण ही क्या है ?

बाइबिल में पशुओं के रक्त को खाने का निषेध

लैव्यव्यवस्था में लिखा है—"फिर यहोवह ने कहा इसरायल के घरानेवालों में से अथवा उनके बीच रहनेवाले परदेशियों में से कोई मनुष्य क्यों न होवे, जो किसी प्रकार का लोहू खावे, मैं उस लोहू खानेवाले के विमुख होके उसको उसके लोगों के बीच से नष्ट कर डालूँगा ।

"क्योंकि शरीर का प्राण जो है सो लोहू में रहता है और उसे मैंने तुम लोगों को वेदी पर चढ़ाने के लिये दिया है जिससे तुम्हारे प्राणों

के लिये प्रायश्चित्त किया जावे, क्योंकि लोहू में प्राण जो रहता है सो लोहू ही से प्रायश्चित्त होता है।

"इसी कारण मैं इसरायलवंशियों से कहता हूँ कि तुममें से कोई प्राणी लोहू न खावे और जो परदेशी तुम्हारे बीच रहे सो भी लोहू न खावे।

"सो इसरायलवंशियों में से अथवा उनके बीच रहनेवाले परदेशियों में से कोई मनुष्य क्यों न हो जो अहेर करके खाने के योग्य पशु अथवा पक्षी को पकड़े वह उसके लोहू को उँडेल के धूलि से ढाँपे।

"क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण जो है उनका लोहू ही उनका प्राण ठहरा है, इसी से मैं इसरायलवंशियों से कहता हूँ कि किसी प्रकार के शरीरधारी के लोहू को तुम न खाना, क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण उनका लोहू ही है। उसको जो कोई खावे सो नष्ट किया जावे।"

मृत पशुओं का निषेध

"और देशी हो चाहे परदेशी हो जो किसी लोथ अथवा फाड़े हुए पशु का मांस खावे सो अपने वस्त्रों को धोके जल से स्नान करे और साँझ लों अशुद्ध रहे, पीछे वह शुद्ध ठहरेगा।

"और यदि वह तन को न धोवे और न स्नान करे, तो उसको अपने अधर्म का बोझ उठाना पड़ेगा।"

इसी विषय पर पौराणिक हिंदू-धर्म का निषेध

रामत्सरियर(Ramatsariar)—

"जिस पशु के भक्षण की वेद में आज्ञा है उसके रक्त को खानेवाला रक्तशोषक पिशाच का पुत्र कहलाता है, और नष्ट हो जाता है, क्योंकि किसी भी मनुष्य को रक्त से अपना पोषण न करना चाहिए।

"जो मनुष्य ऐसे पशु का रक्त खाता है जिसका वेद ने निषेध किया है, वह कुष्ठ रोग से मरता और मरकर अशुद्ध गीदड़ की योनि में पड़ता है।

"लोहू प्राण है, यह वह दिव्य रस है जो उस उपादान को सींचता और उर्वर बनाता है जिससे शरीर बना है। जिस प्रकार गंगा की सैकड़ों शाखाएँ पुण्यभूमि को सींचती और उपजाऊ बनाती हैं, जिस प्रकार इस महानद के स्रोत को सुखा डालने की चेष्टा करना बुद्धिहीनता है, उसी प्रकार जीवन के स्रोतों को व्यर्थ न निचोड़ा जाय और न भोजन बनाकर उन्हें अपवित्र ही किया जाय।

"महान् परमेश्वर (जो सब कुछ है और सबमें है) से निकला हुआ दिव्य तत्त्व, जो प्राण है, लहू के द्वारा ही शरीर के साथ संयुक्त होता है। लहू ही भ्रूण को माता से युक्त करता है, लहू से ही हम परमेश्वर से बँधे हुए हैं।

"हम पेड़ों का रस, जो उनका रक्त है और फल उत्पन्न करता है, नहीं खाते। इसी प्रकार हमें पशुओं का रक्त, जो उनका रस है, नहीं खाना चाहिए।

"रक्त में जीवन के गुह्य रहस्य भरे पड़े हैं, और सृष्ट प्राणी इसके विना जी नहीं सकता। रक्त का खाना स्रष्टा के महान् कार्य को अपवित्र करना है।

"जिस मनुष्य ने इसे खाया है उसे डरना चाहिए कि क्रमिक पुनर्जन्मों में वह उस अशुद्ध जंतु के शरीर से कभी नहीं छूटेगा जिसमें उसकी आत्मा का पुनर्जन्म हुआ है।

"ऋत्विज् बैल, भेड़ के बच्चे अथवा बकरी को वेदी पर चढ़ाने के पहले उसका गला काटता है; इसे अपने लिये उदाहरण बनाओ।

"जब तुम्हारी इच्छा ऐसे जंतुओं का मांस खाने की हो, जो शुद्ध हैं और निषिद्ध नहीं, चाहे वे जुगाली करनेवाले और चिरे हुए खुरवाले हों, चाहे अन्य शिकार में पकड़े हुए, पक्षी अथवा चौपाए हों, तो पृथ्वी में एक गड्ढा खोदो और उसमें, जिस जंतु को तुम खाना चाहते हो उसका रक्त फेंककर उसे ऊपर से ढक दो।

"जो मनुष्य इन निषेधों का उल्लंघन करता है वह परलोक की यातनाओं के अतिरिक्त श्लीपद, कुष्ठ और अतीव गर्ह्य रोगों से पीड़ित होता है।"

मरे हुए जतुओं का निषेध

"स्वाभाविक मृत्यु से या अकस्मात् मरा हुआ जंतु अशुद्ध है, चाहे वह धर्मशास्त्र-निषिद्ध जाति का न हो, क्योंकि उसके शरीर में अभी तक भो रक्त है और वह पृथ्वी पर फेंका नहीं गया।

"जो इसे खाता है वह मांस के साथ रक्त को भी खाता है, जो कि निषिद्ध है, और वह उसके सदृश ही, जिसका उसने मांस खाया है, अशुद्ध हो जाता है।

"नीच जातियों के बहुत-से लोग कुष्ठ और गर्ह्य रोगों से मरते हैं। ये रोग उनकी मृत्यु के पहले ही उनके शरीरों को कोड़ों का शिकार बना देते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग जो भी मृत जंतु उन्हें मिल जाय उसे खा लेते हैं।

"जिसने इस प्रकार खाया हो वह गर्ह्य अशुचिताओं के लिये नियत किए हुए जलाशय पर जावे, और अपने वस्त्रों को धोकर, उस जल में डुबकी लगावे, और तीन लंबे स्नानों के पश्चात्, दूसरे दिन के सूर्योदय तक अशुद्ध ठहरे।"

मूसा रक्त-भक्षण के निषेध का कारण सिवा इसके जो इस पंक्ति में प्रकट किया गया है और कुछ नहीं बताता। "क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण उनका लोहू ही है" और सामान्यतः अपने मत का समाधान पेश नहीं करता।

हम साफ़ देख रहे हैं कि वह ऐसे लोगों को संबोधन कर रहा था जिनको शासित करने का प्रयोजन था न कि शिक्षा देने का, और जिन्होंने उसके निषेधों को विना किसी युक्ति माँगने के स्वीकार कर लिया।

इसके विपरीत, भारत में, इस बात की आवश्यकता थी कि वही

निषेध विकसित होता, समझ में आने योग्य बनता, और लोगों को यह समझाया जाता कि यह क्यों बनाया गया है, तब इससे संबंध रखनेवाले विमर्शों का गौरव उच्च होता। बाइबिल ने इसका अनुभव नहीं किया, क्योंकि इसका पाठ एक अपूर्ण अनुचिंता-मात्र था—

"लोहू प्राण है, यह वह दिव्य रस है जो उस उपादान को सींचता और उर्वर बनाता है जिससे शरीर बना है, जिस प्रकार कि गंगा की सैकड़ों शाखाएँ पुण्यभूमि को सींचती और उपजाऊ बनाती हैं।"

"महान् पूर्ण (परमेश्वर) से निकला हुआ विशुद्ध तत्त्व, जो प्राण है लहू के द्वारा ही शरीर से युक्त होता है।"

वेद के इस लक्षण पर विज्ञान चाहे हँस दे, परंतु विचारक इसकी प्रशंसा करेंगे।

मूसा ने अपने ठहराए हुए नियम का यह सरल समाधान लिखकर निश्चय ही अपनी अनुचिंताओं का संक्षिप्त कर दिया, "क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण उनका लोहू ही है।"

क्या ये स्पष्ट सादृश्य निर्विवाद रूप से यह सिद्ध नहीं करते कि बाइबिल पूर्वीय संस्थाओं की प्रतिध्वनि-मात्र है? पता नहीं कि मैं शायद भ्रम में हूँ, परंतु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि गंभीरता-पूर्वक विचार करने से, मूसा की छोड़ी हुई पुस्तक का सरल अध्ययन हमारे सामने स्वभावतः यही परिणाम उपस्थित करता है।

बाइबिल की जिन पाँच पुस्तकों का संबंध इस व्यवस्थापक से बताया जाता है उनमें प्रत्येक पग पर हम ऐसे विस्तार, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, प्रक्रियाएँ, यज्ञ-विधियाँ, और नियम, बिना किसी समाधान के दिए हुए पाते हैं जिनका सत्ताहेतु सिवाय प्राचीन सभ्यताओं के अनुकरण के और कुछ हो ही नहीं सकता। इस सापेक्ष अध्ययन में ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं त्यों-त्यों हम यह मानने पर अधिक विवश होते हैं कि मूसा ने इबरानियों के उपयोग के

लिये मिसर की उन संस्थाओं का केवल संक्षेप ही किया है, जो मिस्र में भारत से पहुँची थीं।

इसरायलवंशियों को उपासना-मंदिर (मिलापवाले तंबू) के सामने के अतिरिक्त और सब कहीं अपने बैलों, भेड़ों और बकरियों को मारने का निषेध है।

"लैव्यव्यवस्था" कहती है—

फिर यहोवह ने मूसा से कहा

"हारून और उसके पुत्रों से बल्कि सारे इसरायलवंशियों से कहा कि यहोवह ने यह आज्ञा दिखाई है कि "इसरायल के घराने में से कोई मनुष्य हो जो बैल अथवा भेड़ के बच्चे अथवा बकरी को, चाहे छावनी में चाहे छावनी से बाहर, बलि करके मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह के निवास के आगे यहोवह के चढ़ाने के निमित्त न ले जावे, तो उस मनुष्य को लोहू बहाने का दोष लगेगा और वह मनुष्य जो लोहू बहानेवाला ठहरेगा सो वह अपने लोगों के बीच से नष्ट किया जावे।

जंतुओं—बैल, भेड़ के बच्चे और बकरी—को, सिवा उपासना-मंदिर के द्वार पर और याजक के हाथों में, मारने के निषेध की विचित्र आज्ञा के सांकेतिक अर्थों की खोज करने के पहले आओ हम देखें कि इस विषय में हिंदुओं के नियम क्या हैं।

मनु, अध्याय ५ में लिखा है—

"स्वयंभू परमेश्वर ने स्वयं ही यज्ञ के लिये पशुओं की सृष्टि की है, और यज्ञ से इस जगत् की वृद्धि होती है। इसलिये यज्ञ के निमित्त हिंसा हिंसा नहीं है।

"जो विना विधि के पशु का वध करता है वह उस पशु के शरीर पर जितने रोम हैं उतनी बार जन्म लेता और प्रत्येक जन्म में अस्वाभाविक मृत्यु से मरता है।

"जो मनुष्य केवल अपने ख़रीदे हुए अथवा दूसरे के भेंट

"इस विधि का यह कारण है कि इसरायलवंशी जो अपने बलि-पशुओं को खुले चौगान में बलि किया करते हैं सो उन्हें मिलापवाले तंबू के द्वार पर याजक के पास यहोवह के लिये ले जाके उसी के लिये मेल-बलि जानके बलि किया करें।

"और याजक लोहू को मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह की वेदी के ऊपर छिड़के और चरबी को उसके लिये सुख-दायक सुगंध जान के जलावे।

"इस प्रकार से वे जो बकरों के पूजक होकर मानो व्यभि-चार करते हैं सो फिर अपने बलिपशुओं को उनके लिये बलि न करें। इसरायलियों की पीढ़ी-पीढ़ी में यह सनातन विधि ठहरे।

"सो हे मूसा, तू उनसे कह कि इसरायल के घरानेवालों में से अथवा उनके बीच रहनेवाले परदेशियों में से कोई मनुष्य क्यों न हो जो होम बलि अथवा मेल-बलि चढ़ावे।

किए हुए पशु का ही मांस, इसे परमेश्वर को चढ़ाने के उप-रांत, खाता है वह पापी नहीं होता, क्योंकि यज्ञ की सिद्धि के पश्चात् मांस का खाना ईश्वरीय विधि कहा गया है।

"मंत्रों मे संस्कार न किए हुए पशुओं के मांस को ब्राह्मण कभी न खाए, किंतु सनातन विधि का आश्रय लेनेवाला मनुष्य सदैव मंत्रों द्वारा शुद्ध किए हुए पशुओं के मांस को खा सकता है।

"खाने योग्य प्राणियों को खानेवाला प्रति दिन मांस खाता हुआ भी पापी नहीं होता, क्योंकि ब्रह्मा ने ही विशेष प्राणी खाए जाने के लिये और दूसरे उनको खाने के लिये रचे हैं।

"विधि का जाननेवाला द्विज, आपत्तिरहित काल में विना विधि के मांस न खाए।

"जो अहिंसक जीवों को केवल अपने सुख की लालसा से मारता है, उसका सुख न उसके जीवन में और न उसकी

"और उसको मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह के लिये चढ़ाने को न ले आवे वह मनुष्य अपने लोगों में से नष्ट किया जावे ।"

मृत्यु के पश्चात् ही बढ़ता है ।

"परंतु वन में निवास करता हुआ शुद्धात्मा द्विज आपत्ति में भी ऐसी हिंसा न करे, जो वेद-विहित नहीं है ।"

सामवेद के प्रमाण—

"हमें पशुओं का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि उनकी ऊनता संसार का शासन करनेवाली परम बुद्धि का कार्य है, और उस बुद्धि का उसके छोटे-से-छोटे कामों में भी सम्मान करना परमावश्यक है ।

"इसलिये तुम विना प्रयोजन, केवल सुख के लिये, पशुओं को मत मारो, क्योंकि वे तुम्हारी ही तरह ईश्वर के रचे हुए हैं ।

"तुम उनको दारुण पीड़ा मत दो ।

"तुम उन्हें मत सताओ ।

"तुम उनसे उनके वित्त से बाहर काम मत लो ।

"उन्होंने तुम्हारी जो सेवा की है उसको स्मरण करके तुम बुढ़ापे में उनका परित्याग मत करो ।

"मनुष्य पशुओं को केवल भोजन के लिये ही मारे; जो अपवित्र होने के कारण निषिद्ध हैं उनको ध्यानपूर्वक छोड़ दे ।

"यदि वह विहित विधियों का पालन नहीं करता, तो उनको भोजन के लिये मारने से भी वह पापी ठहरता है, और घोर दंड से दंडित होता है ।

"वह अपने पशु को मंदिर के सामने ले जावे, और पुरोहित इसकी परमेश्वर पर बलि चढ़ाते हुए इसका वध करे, और उसका लहू वेदी पर छिड़के ।

"क्योंकि लहू प्राण है, और प्राण, जुदा होकर, ईश्वर के पास लौट आना चाहिए ।

"जो मनुष्य वेद-विहित विधि के विना मांस खाता है वह अप-यश की मृत्यु मरता है, क्योंकि उसने सर्व पदार्थों के स्वामी परमेश्वर को बलि चढ़ाने के विना ही रक्तपात किया है।"

इसी विषय पर रामसरियर (टीकाएँ)—

"जो मनुष्य विहित-विधि का पालन करता है वह पशुओं का मांस तब तक नहीं खाता जब तक कि ऋत्विज् उनको परमेश्वर को बलि नहीं देता। याजक वेदी पर रक्त छिड़कता है, क्योंकि मृत्यु को पवित्र करने के लिये स्रष्टा को रक्त की बलि देना आवश्यक है।

"जो विना बलि दिए मांस खाता है वह इस लोक तथा परलोक में आक्रुष्ट ठहरता है, क्योंकि महर्षि मनु कहते हैं, 'जिसका मांस मैं इस लोक में खाता हूँ वह दूसरे लोक में मुझे खायगा।"

"लैव्यव्यवस्था" के ऊपर दिए वचन से प्रकट होता है कि मूसा ने इबरानियों के लिये, मृत्यु-दंड की धमकी देकर, मिलापवाले तंबू (उपासना-मंदिर) के द्वार को छोड़कर और किसी स्थान पर भी पशुओं का वध करने का निषेध किया है।

परंतु, सामान्यतः, यह व्यवस्थापक अपने प्रयोजनों और अपने निषेध के उद्देश की व्याख्या नहीं करता।

किस कारण, बाइबिल के शब्दों में, छावनी में अथवा छावनी से बाहर, सब जंतुओं के वध का निषेध है ?

"लैव्यव्यवस्था", अध्याय १७, वाक्य ७ में, जिसमें इस विषय का वर्णन है, इन शब्दों में व्याख्या का आभास मिलता है; "अब से वे झूठे देवताओं के लिये अपने पशुओं को बलि न करें।"

परंतु इस वचन से क्या सिद्ध होता है ? यह केवल इतना ही प्रकट करता है कि पूर्वकाल में, इसरायलवंशी उन देवताओं की मूर्तियों के लिये बलि चढ़ाया करते थे जिनको यहोवह ने परास्त किया था, और वही रीति नवीन पूजा के लाभार्थ जारी रही।

मूसा के ग्रंथों में हम उस विचार को ढूँढ़ना चाहते हैं जिससे प्रेरित होकर उसने मिलापवाले तंबू के द्वार के सिवा और सब कहीं बलिदान का निषेध किया कि मारा हुआ पशु परमेश्वर द्वारा पवित्र किया जाना चाहिए।

मूसा ने प्राचीन मिस्र और भारत के नियमों का केवल संक्षेप ही किया है, और उस रिवाज को बनाए रखने में वह सदैव उस मूलादर्श को भूल जाने का यत्न करता है (वह नक़ल करने में बहुत असावधान है) जिसने उसे जन्म दिया था।

आओ हम इसी विषय पर मनु और वेद के ऊपर दिए वचनों पर विचार करें। तब ही बाइबिल-वचन की अस्पष्टता को दूर करना, इसका युक्तिसंगत रीति से समाधान करना संभव होगा। इससे सदा यही स्वाभाविक परिणाम निकलेगा कि यह पुस्तक, बाक़ी सारी पुस्तकों की तरह, एक बुरी तरह से की हुई नक़ल का परिणाम-मात्र है।

सभी प्राचीन जातियाँ, और सबसे बढ़कर हिंदू, ईश्वरीय सृष्टि के रहस्यमय कार्य के प्रति अतीव सम्मान-भाव रखते थे, और उन्हें सदा यही चिंता रहती थी कि इसके साथ अमर्यादा न की जाय। रक्त और पशु-वध से उनके डरने का यही कारण था। एक ओर यह सम्मान-भाव था और दूसरी ओर जीवन-संबंधी उनकी भौतिक आवश्यकताएँ थीं, जो मांसाहार के लिये विवश करती थीं। इन दोनों के मध्य में उन्होंने यह धार्मिक परिकथा गढ़ ली जिसके अनुसार उनके निर्वाह के लिये निरूपित पशु को देवता के मंदिर के सामने मारना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार गिराए हुए रुधिर की स्रष्टा के लिये बलि चढ़ाकर उसे न्यायसंगत किया गया।

क्योंकि जैसा कि वेद कहता है—

"रुधिर प्राण है, और सारा प्राण निर्वाण के पश्चात् परमेश्वर के पास लौट आना चाहिए।"

इसी से मनु और पवित्र धर्म-पुस्तकें सारे ब्राह्मणों, पुजारियों, ईश्वर-

भक्तों, और धर्मपरायण लोगों के लिये ऐसे पशु के मांस खाने का निषेध करती हैं जो पहले ईश्वर के लिये बलि नहीं किया गया है। बाइबिल के इन शब्दों का कारण भी यही है।

"इसरायल के घराने में से कोई मनुष्य हो जो बैल अथवा भेड़ अथवा बकरी को, चाहे छावनी में चाहे छावनी के बाहर, बलि करके मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह के लिये चढ़ाने के निमित्त न ले जावे तो उस मनुष्य को लोहू बहाने का दोष लगेगा।"

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि सारे पूर्वी लोगों ने मांस को खाने के पहले, उसके रुधिर (उसके प्राण) को ईश्वर के लिये बलि चढ़ाकर उसे पवित्र कर लेने की रीति भारत से ही ग्रहण की थी।

पीछे से, प्राचीन कल्पना अव्यक्त और सांकेतिक हो गई; और प्रत्येक मारे जानेवाले पशु को परमेश्वर के लिये चढ़ाने की रीति बंद हो गई। इस दैनिक व्यवहार के स्थान में सामयिक उत्सव रख दिए गए। इन उत्सवों में लोग याजक से साधारण शुद्धि के निमित्त, वेदी पर बलिदान कराने के लिये सब प्रकार के पशु लाया करते थे।

एक भारत ही ऐसा है जिसने अपने प्राचीन व्यवहारों को नहीं छोड़ा और आज भी ऊँचे वर्ण और ब्राह्मण केवल वही मांस खाते हैं जिसका पहले मंदिर में संस्कार हो चुका हो।

इस प्रकार सभी प्राचीन सभ्यताएँ एक दूसरी से निकली हैं; और इस प्रकार, जीवन की अतीव छोटी-छोटी बातों में उनके अभ्यस्त व्यवहारों की तुलना करके हम उस मूल समाज को ढूँढ़ लेते हैं जो विरोधाभासात्मक कल्पना होना तो दूर, मानव-विकास के नियमों का अवश्यंभावी और युक्तिसंगत परिणाम है।

कैथोलिक (उदार) संप्रदाय, जो प्राचीन इबरानी व्यवहारों को न्यू चर्च का नमूना समझने पर ज़ोर देता है लैव्यव्यवस्था के इस अध्याय की व्याख्या एक और ही ढंग से करता है।

उसके मतानुसार परमेश्वर ने ही इबरानियों को मिलापवाले तंबू के सिवा और किसी स्थान में बलिदान चढ़ाने से रोकने के लिये ये निषेध बनाए थे।

मैं कहता हूँ कि बाइबिल इन शब्दों का प्रयोग करती है (Homo quilibet de domo Israeli;) अर्थात् इसरायल के वंश में से कोई भी मनुष्य जो मिलापवाले तंबू के द्वार को छोड़ किसी अन्य स्थान में पशु-वध करता है।

यदि परमेश्वर के लिये बलि चढ़ाने की अभिलाषा होती थी, तो केवल याजक को ही इसे चढ़ाने का अधिकार था; परंतु जो व्यवस्था हमारे सामने है उसमे प्रत्येक इबरानी को, यदि वह बलि के रुधिर को प्रायश्चित्त के रूप में वेदी पर छिड़कने के लिये याजक को देकर अपने कर्म को पवित्र कर लेता है, तो मिलापवाले तंबू के सामने वध करने का अधिकार है।

इसीलिये केवल उन्हीं पशुओं का वर्णन है जो आहार के लिये निरूपित हैं न कि उनका जो विशुद्ध धार्मिक प्रक्रियाओं के लिये नियत हैं।

(Ante ostium Tabernaculi testimonii immolent eas hostias pacificas.) वे अपनी मेल-बलि उपासना-मंदिर (मिलापवाले तंबू) के द्वार पर चढ़ाते हैं।

इबरानियों के लिये ऐसी ही आज्ञा है।

Fundetque sacerdos sanguinem super altare Domini. याजक परमेश्वर की वेदी पर रक्त छिड़कता है।

लेवी का ऐसा ही निर्दिष्ट कार्य है।

मैं दुबारा कहता हूँ कि यदि देवता के लिये सांकेतिक बलि चढ़ानी होती थी, तो केवल याजक को ही इसके चढ़ाने का अधिकार था, और वह भी मिलापवाले तंबू के द्वार पर नहीं बल्कि भीतरी

मंदिर में, जहाँ उसके सिवा और कोई नहीं जा सकता था।

इसके अतिरिक्त, जिस समाधान का प्रतिकार हम कर रहे हैं, वह मूल पाठ के विलक्षण तोड़-मरोड़ से ही संभव हो सकता है।

यहाँ हम इस वचन का वह अर्थ देते हैं जो फ़ादर डी करियर (Father de Carriere) ने बाइबिल के स्वीकृत संस्करण में दिया है।

"लैव्यव्यवस्था" का मूल वचन—

Homo qui libet de domo Israel, si occiderit bovem, aut capram, in castris vel extra castra.

Et non obtulerit ad ostuim Tabernaculi oblationem Domino, sangui nis reus erit, quasi si sanguinem fuderit, sic peribit de medio populi suio.

Ideo sacerdoti afferre debent filii Israel hostias suas quas occident in agro, ut sanctificentur Domino.

शब्दार्थ—

इसरायल के वंश का प्रत्येक मनुष्य जो छावनी के अंदर अथवा बाहर कोई बैल, अथवा भेड़, अथवा बकरी का वध करेगा, और जो मिलापवाले तंबू के द्वारों पर परमेश्वर के लिये उसकी बलि नहीं चढ़ाएगा, वह रक्तपात का दोषी होगा, और रक्तपात करने के कारण अपने लोगों के बीच से नष्ट हो जायगा।

इस कारण इसरायल की संतान खेतों में मारी हुई अपनी बलियों को याजक को दे, जिससे परमेश्वर द्वारा उनका संस्कार हो जाय।

जेज़ूइट फ़ादर डी केरियर का अनुवाद—

इसरायल के घराने का, अथवा उनके बीच रहनेवाले मतांतर-ग्राहियों का, प्रत्येक मनुष्य, जो परमेश्वर के लिये बलि चढ़ाने की इच्छा से, संकल्प के साथ छावनी में अथवा छावनी के बाहर, बैल, भेड़, अथवा बकरी का वध करता है। जो मिलापवाले तंबू के द्वार पर परमेश्वर के लिये इसको बलि नहीं चढ़ाता, उसे हत्या का दोष लगता है, और वह अपने लोगों के बीच नष्ट हो जाता है, मानो उसने मनुष्य का रक्तपात किया हो।

इस कारण इसरायल की संतान याजकों के सामने उन न्यासों को चढ़ाये, कि वह ईश्वर को चढ़ाना चाहती है, जिसमें वह, उनका मैदानी खेतों में वध करने के स्थान में, उन्हें मिलापवाले तंबू के आगे चढ़ावे।

जिन शब्दों के नीचे लकीर है उनका मूल पाठ में अभाव है; अनुवाद की ईमानदारी पर किसी टीका-टिप्पणी का प्रयोजन नहीं। परंतु हम कहते हैं कि ठीक ऐसे ही निःशंक प्रक्षेप इस अभियोग का समर्थन करते हैं कि इस अध्याय में लैव्यव्यवस्था केवल उन्हीं पशुओं का वर्णन करती है जिनको केवल यहोवह ही को बलि चढ़ाई जाती है, और उनका नहीं जो मनुष्यों के आहार के लिये निर्दिष्ट हैं।

इसके अतिरिक्त, लैव्यव्यवस्था का सातवाँ अध्याय इस समस्या का पूरा-पूरा वर्णन करता मालूम होता है, क्योंकि यह निर्विवेक रूप से, सभी मारे हुए पशुओं के रक्त और चरबी को, मृत्यु का भय दिखाकर, ईश्वर के लिये बलि चढ़ाने को, और प्रत्येक मारे हुए बलि का दायाँ कंधा और छाती याजक को देने की आज्ञा देता है।

अतएव यहाँ आहार के लिये निर्दिष्ट पशुओं का प्रश्न निर्विवाद है, और यह भी समान रूप से निर्विवाद है कि इन रीति-रिवाजों के उस समाधान के लिये जो बाइबिल हमें नहीं देती, हमारा सुदूर पूर्व की ओर लौटना आवश्यक है।

लैव्यव्यवस्था, अध्याय इक्कीस के अनुसार, मृतक से होनेवाली अशुद्धता और अशुचिता से रक्षा

"फिर यहोवह ने मूसा से कहा, हारून के पुत्र जो याजक हैं उनसे कह कि तुम्हारे लोगों में से कोई मरे तो उसके कारण तुमसे कोई अपने को अशुद्ध न करे।

हाँ अपने समीपी कुटुंबियों अर्थात् अपनी माता वा पिता वा बेटे वा बेटी वा भाई के लिये वह अपने को अशुद्ध करे तो करे।

और उसकी कुँवारी बहन जिसका विवाह न हुआ हो सो भी उसकी समीपिन है। इससे वह उसके लिये भी अपने को अशुद्ध करे तो करे। परंतु याजक अपने लोगों के राजा की मृत्यु पर भी अपने को अशुद्ध न करे।

इन अवसरों पर याजक न अपना सिर मुँडावें और न दाढ़ी, और न अपने शरीर ही चीरें।

वे अपने परमेश्वर के लिये पवित्र रहें, और उसका नाम अपवित्र न करें, क्योंकि वे परमेश्वर को धूप चढ़ाते हैं, और अपने परमेश्वर के भोजन को चढ़ाते हैं, इस कारण वे पवित्र ही रहें।"

लैव्यव्यवस्था, अध्याय २२

"यहोवह (परमेश्वर) ने मूसा से कहा—

हारून और उसके पुत्रों से कह दे कि, जब वे अशुद्ध हों, तब इस-रायलवंशियों की पवित्र बलियों को स्पर्श न करें, उन वस्तुओं को दूषित न करें जो वे मुझे चढ़ावें और मेरे लिये पवित्र करें, क्योंकि मैं परमेश्वर हूँ।

उनसे और उनकी संतानों से कह दे ; तुम्हारे वंश का जो कोई अशुचिता की अवस्था में, उन वस्तुओं के पास जावे जो इसरायल-वंशियों ने परमेश्वर को चढ़ाई हैं, और उसके लिये पवित्र की हैं वह परमेश्वर के सम्मुख नष्ट किया जावेगा।

हारून के वंश में से कोई क्यों न हो जो कोढ़ी हो अथवा उसके वीर्य झरता होवे वह मनुष्य जब लों चंगा न हो जावे। तब लों पवित्र की हुई वस्तुओं में से कुछ न खावे।

वैसे ही जो लोथ के हेतु अशुद्ध हुआ हो वा जिसका वीर्य स्खलित हुआ हो ऐसे किसी मनुष्य को जो याजक छूए।

और जो याजक किसी ऐसे रेंगनेवाले जंतु को छूए जिससे लोग अशुद्ध होते हैं अथवा किसी ऐसे मनुष्य को छूए जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धता होवे।

जो प्राणी इनमें से किसी को छूए सो साँझ लों अशुद्ध ठहरा रहे और तब भी यदि वह जल से स्नान न करे तो पवित्र की हुई वस्तुओं में से न खावे।

हाँ, यदि स्नान करे तो जब सूर्य अस्त हो जावे तब वह शुद्ध ठह-रेगा और उसके पीछे पवित्र की हुई वस्तुओं में से खा सकेगा, क्योंकि उसका भोजन वही है।

जो जंतु आप से मरा वा पशु से फाड़ा गया हो उसके खाने से वह अपने को अशुद्ध न करे।

इस रीति से याजक लोग मेरी व्यवस्थाओं की रक्षा करें, ऐसा न हो कि वे उनको अपवित्र कर दें, और धर्म-मंदिर को अशुद्ध करने के पश्चात् उसमें न मर जायँ, क्योंकि मैं पवित्र करनेवाला परमेश्वर हूँ।"

यदि बाइबिल को अधिकतर विना इसका भाव समझने के ही पढ़ने का हमारा स्वभाव न होता, तो हमने चिरकाल से इसका अनुभव कर लिया होता और हमें विश्वास हो गया होता कि यह पुस्तक उन प्राचीन रहस्यों का, जिनकी चाभियाँ केवल दीक्षितों के ही हाथ में थीं, और मिसर के अशिष्ट मूढ़-विश्वासों का, एक सम्मिश्रण-मात्र है।

ऊपर दिए दोनों वचनों का, उनके हिंदू-जन्य-नियमों के साथ, पीछा करने के पहले उन्हें कुछ विकसित करने का प्रयोजन है।

इक्कीसवाँ अध्याय आज्ञा देता है कि याजक अशुद्ध करनेवाले अंत्येष्टि-संस्कारों में सहायता न दे।

उन्हें केवल समीपी संबंधियों के अंत्येष्टि-संस्कार कराने की ही आज्ञा है, और वहाँ भी उन्हें सदा प्रत्येक ऐसी बात से बचते रहने के लिये कहा गया है, जो अशुद्ध करनेवाली हो।

लोगों के राजा की मृत्यु पर भी अंत्येष्टि-कर्म-संबंधी इस नियम को तोड़ने की आज्ञा नहीं।

बाईसवाँ अध्याय याजकों को अशुद्धता की अवस्था में, अर्थात् जब उन्हें कुष्ठ हो, वे विशेष रोगों से पीड़ित हों, अथवा लोथ के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छू जाने से अथवा पृथ्वी पर रेंगनेवाले जंतुओं, और लैव्य व्यवस्था के शब्दों के अनुसार, सामान्यतः अशुद्ध वस्तुओं के स्पर्श से दूषित हों, तब पवित्र वस्तुओं के स्पर्श का निषेध करता है।

और वे चाहते हैं कि हम इसे ईश्वरीय प्रत्यादेश स्वीकार कर लें। जो याजक अपने दूसरे मनुष्य भाई की परलोक-यात्रा में श्मशान तक साथ जाता है वह अशुद्ध हो जाता है। लोथ के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छूने से याजक दूषित हो जाता है। रोग से आक्रामतः पीड़ित होने से याजक अशुद्ध हो जाता है। रेंगनेवाले जंतुओं के स्पर्श से याजक अशुद्ध हो जाता है। हास्यजनक मूढ़-विश्वासों का कैसा विचित्र संग्रह है! ओशोनिया द्वीपसमूह की कुछ जंगली जातियों की ब्रह्मविद्या में ऐसी बातें देखकर हम करुणा से कैसे कंधे हिलाया करते हैं।

ऐं! क्या ऐसी बातें परमेश्वर के मुख से निकल सकती थीं! क्या परमेश्वर ने लोगों को ऐसे विचित्र अनुष्ठानों पर विवश करने के लिये ही अपना प्रकाश किया था!

मैं यह तो समझ सकता हूँ कि ये सब किसी सीमा तक, इन इस-रायल-वंशियों के लिये, जो दासता से नर-पशु बन चुके थे, और जिन्होंने अपनी मुक्ति में केवल लूट-मार में ही नाम पाया था, अच्छे थे; परंतु

वर्तमान काल में हमसे ऐसी असंगतियों के सामने सिर झुकाने को कहना, मैं यह कहने से रुक नहीं सकता, मानव-बुद्धि के निर्दोष नेतृत्व से सदा के लिये हाथ धो बैठना है।

सौभाग्यवश यह दिखलाने से बढ़कर कि इस रहस्योद्भेद में कोई भी नई बात नहीं बताई गई, कोई भी चीज़ सुगमतर नहीं। ऐसे ही यह सिद्ध करना आसान है कि मूसा ने पूर्व के ऐतिह्यों को जारी रखने, और ब्राह्मणों और मिसर के याजकों के नमूने पर लेवियों की स्थापना करने से बढ़कर और कुछ नहीं किया।

इबरानी व्यवस्थापक की बाइबिल में, अर्थात् उन पाँच पुस्तकों में जिनका संबंध उसके साथ ठहराया जाता है, यह बात ध्यान देने योग्य है कि दुराचार की, या यों कहिए कि अधर्म की, अशुद्धताओं के विषय में बहुत थोड़ा कहा गया है। अशुचिता का सारा स्रोत अशुद्ध वस्तुओं के स्पर्श को ठहराया गया है।

लोथ का, रेंगनेवाले जंतुओं का, और व्याधिग्रस्त व्यक्ति का स्पर्श मत करो, अन्यथा तुम परमेश्वर के सम्मुख नष्ट किए जाओगे—(Peribit Coram Domino)।

स्नान द्वारा अशुद्धताओं को दूर करने की यह शैली, (Cum laverit carnem suarm aqua,) स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी व्यवस्था की एक सरल संहिता है, जिसको उत्तर-एशिया की सभी जातियों ने, पूर्व के सभी लोगों ने ग्रहण किया था। मूसा का यहोवह कुछ मुहम्मद से बढ़कर ईश्वरीय रहस्यों का प्रकाशक नहीं; क्योंकि मुहम्मद ने भी स्नानों को (जो उन देशों में बहुत आवश्यक हैं) धर्म का अंग ठहराया था।

परंतु प्राचीन व्यवस्थापकों को गरमी से जलनेवाले देश के आलसी अधिवासियों के लिये सफ़ाई को अलंघनीय ठहराना आवश्यक मालूम हुआ, और मूसा ही, जो इन व्यवस्थाओं का संबंध परमेश्वर से ठहराता

है, एक ऐसा है, जो उनके अभिप्राय का भाव-मात्र भी नहीं छोड़ता, जिसके बिना कि वे असंगत हैं।

निम्नलिखित निषेध को वास्तव में असंगत से भी निकृष्टतर कह सकते हैं—

"Et ad omnem mortuum non ingreditur omnino; super patre quoque suo et matre non contaminabitur और वह किसी मृत व्यक्ति के पास न आवे, चाहे वह उसका पिता अथवा माता ही क्यों न हो; क्योंकि वह अशुद्ध हो जायगा।"

मैं भली भाँति जानता हूँ कि लोग कहेंगे कि बाइबिल को नहीं समझता। वे कहेंगे, उस सारी पुस्तक में ऐसे अलंकारात्मक अर्थ हैं, जिन तक मेरी पहुँच नहीं क्योंकि मेरे नेत्रों में श्रद्धा की ज्योति नहीं, ये रीति-रिवाज केवल आदर्श-स्वरूप हैं, और प्राचीन लेवियों के लिये आवश्यक ठहराई हुई यह शुचिता उस शुचिता का अलंकार-मात्र है, जो नवीन धर्म के पुरोहितों के लिये आवश्यक है।

मैं फ़ादर डी केरियर तथा दूसरों के मत को, और उनके शिष्यों के मत को भली भाँति जानता हूँ। मैं उनके अनुवाद करने और वचन को तोड़ने-मरोड़ने की पद्धति को भी जानता हूँ। अब वे नास्तिकों को यातना नहीं पहुँचा सकते।

हमसे यह मानने की आशा करना कि सारे रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों और जाति के जीवन के स्वभावों का ईश्वर ने एक ऐसे धर्म के चिह्न, रूप और भविष्य-कथन के तौर पर प्रत्यादेश किया था, जिसको भविष्य में प्रतिष्ठित करने का उसका संकल्प था, बड़ा ही असंगत होगा।

आह! महाशयगण, हम आपके विचारों को स्वीकार नहीं कर सकते; क्योंकि परमेश्वर कोई ऐसा अनाड़ी कारीगर नहीं, जिसके

पहले कच्चे काम को दुबारा साफ़ करने की आवश्यकता हो। उस निगूढ़ उद्देश्य से, जिसे हम केवल अगले जन्म में ही जान सकेंगे, उसने हमें उत्पन्न करते समय हम पर अपनी दिव्य विभूति की एक चिनगारी फेंककर हमें एक अतीव श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है—और विश्वजनीन मन अपने स्मरण को भुलाता नहीं।

अतएव इस इबरानी ईश्वरीय प्रत्यादेश को छोड़ दो, जिसको बुद्धि कभी स्वीकार नहीं कर सकती; और विश्वास करो कि ईसा के श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी आचरण को प्राचीन समयों के दीक्षितों द्वारा लौकिक आहार के रूप में छोड़े हुए गूढ़ विश्वासों-जैसे पूर्व चिह्नों का प्रयोजन नहीं।

मृतक से उत्पन्न होनेवाली अशुचिता पर मनु, वेद और टीकाकार रामसरियर का मत

मनु, अध्याय ५—

"लोथ के कारण उत्पन्न होनेवाला अशौच उसके बांधवों के लिये दस दिन तक रहता है, जब तक कि अस्थियाँ न चुन ली जायँ। पाठक जानते होंगे कि हिंदू सबको जलाते हैं।

"मृत्यु से होनेवाला अशौच सब संबंधियों को होता है।

"मृतक को स्पर्श करनेवाले उसके निकट संबंधी एक दिन-रात और तीन गुने तीन रात से शुद्ध होते हैं, और दूर के संबंधियों के लिये तीन दिन आवश्यक हैं।

"जो शिष्य मृत गुरुओं का पितृमेध (अंत्येष्टि) करता है, वह मृतक को उठाकर ले जानेवालों के समान दस रातों के पश्चात् शुद्ध होता है।

" (ब्राह्मण वर्ण के) उन बालकों की मृत्यु पर, जिनका चूड़ाकरण नहीं हुआ, एक रात से शुद्धि कही गई है, पर जिनका चूड़ाकरण हो चुका है, उनके मरने पर शुद्ध तीन रात से होती है।

"जो बालक दो वर्ष का होने के पहले मरा है और जिसका चूड़ा-करण नहीं हुआ, उसको माता-पिता ले जाकर शुद्ध भूमि में गाड़ देवें, जलावें नहीं, माता-पिता तीन दिन तक अशौच करें।

"सहाध्यायी के मरने पर द्विज एक दिन तक अशुद्ध रहता है।

"जिन कन्याओं की सगाई हो चुकी है, पर अभी विवाह नहीं हुआ, उनके मरने पर मातृ-पक्ष के संबंधी तीन दिन में शुद्ध होते हैं। पितृ-पक्ष के संबंधी भी उसी प्रकार शुद्ध होते हैं; वे इन तीन दिनों में नित्य स्नान करें।

"आचार्य के मरने पर, उसके पास जानेवाले सभी लोग केवल तीन रातों के लिये ही अशुचि रहते हैं।

"राजा के मरने पर, यदि वह दिन में मरे, उसके पास जानेवाले सभी लोग दिन की ज्योति तक, और यदि रात को मरे, तो तारों के प्रकाश के रहने तक अशुचि रहें।"

मृतक को स्पर्श करनेवालों के लिये मरण के अशौच के नियमों का यही सार है। अब देखना चाहिए कि याजक किस बात से अशुद्ध होता है, और लोथ के स्पर्श से उसे किस प्रकार अपने को शुद्ध करना चाहिए।

वेद के अवतरण (व्यवस्थाएँ)—

जिस ब्राह्मण का उपनयन हो चुका है, और जिसे इस प्रकार यज्ञ कराने और वेदों की व्याख्या करने का अधिकार दिया गया है, उसे लोथ का स्पर्श करने से सब प्रकार बचना चाहिए; क्योंकि लोथ अशुचि कर देती है और ऋत्विज् का सदा पवित्र रहना आवश्यक है।

"वह अशुद्ध व्यक्ति को देखने-मात्र से अशुद्ध हो जाता है, और उसे पूर्व निर्दिष्ट स्नान के अनंतर, धीमे स्वर से अशौच को दूर कर देनेवाले मंत्रों का पाठ करना चाहिए।

"परंतु अपने माता-पिता की मृत्यु पर अंत्येष्टि-संस्कार कराने से

ब्राह्मण अशुद्ध नहीं होता; क्योंकि सारे जगत् के स्वामी परमेश्वर ने कहा है—"जो अपने माता-पिता का इस जीवन में सम्मान करता है, और उनके मरण पर, जो ईश्वर में उनका जन्म है, याग करता है, वह कभी भी अशुद्ध नहीं हो सकता ।"

"यदि वह अपने भाइयों और अविवाहिता बहनों का अंत्येष्टि-संस्कार कराता है, तो वह संस्कार की समाप्ति तक अशुद्ध रहता है, और वह स्नान तथा ईश्वर-प्रार्थना द्वारा दूसरे सूर्यास्त तक अपने को शुद्ध करे ।

"अशुद्धता की अवस्था में वह देवालय में सर्वमेध यज्ञ अथवा अश्वनद यज्ञ के लिये कभी न जाय; क्योंकि उसका किया यज्ञ अशुद्ध होगा ।

"वह राजाओं के अंत्येष्टि-कार्य में सहायता दे, उनको अपने मंत्रों से पवित्र करे, परंतु लोथों को कभी न छुए ।"

इनके उपरांत इस व्यक्तिगत अशौच के नियमों को छोड़कर, जो इसे केवल गौण जान पड़ते हैं, वेद एक ऐसे उच्च आदर्श से, जिसे बाइबिल कभी प्राप्त नहीं कर सकी, कहता है—

"सच्चा ज्ञानी द्विज, जो सदा भगवद्भक्ति में लीन रहता है, इस संसार में किसी चीज़ से भी अशुद्ध नहीं हो सकता ।

"पुण्य सदा पवित्र है, और वह पुण्य है ।

"दान सदा पवित्र है, और वह दान है ।

"ईश्वर-प्रार्थना सदा पवित्र है, और वह ईश्वर-प्रार्थना है ।

"भलाई सदा पवित्र है, और वह भलाई है ।

"परमात्म-तत्त्व सदा पवित्र है, वह परमात्म-तत्त्व का एक अंश है ।"

"सूर्य की रश्मि सदा पवित्र है, और उसकी आत्मा सूर्य की रश्मि के सदृश है, जो अपने इर्द-गिर्द के सभी पदार्थों में जीवन का संचार करती है ।

"यहाँ तक कि मृत्यु भी उसे अशुद्ध नहीं करती; क्योंकि द्विज महात्मा के लिये मृत्यु ब्रह्म की गोद में पुनर्जन्म है।"

रामसरियर (वेद-भाष्य)—

"लोथ के अशुद्ध स्पर्श से, और उन सारे पदार्थों को छूने से, जिनको धर्म ने अशुद्ध ठहराया है, शरीर अशुद्ध हो जाता है।

"आत्मा पाप से अशुद्ध होती है।

"शारीरिक अशौच के ये नियम उसने बनाए थे, जो केवल अपनी इच्छा की शक्ति से ही विद्यमान है, ताकि मनुष्य अपने भौतिक जीवन की रक्षा कर सके, और जल के साथ, जो सर्वश्रेष्ठ शोधक है, स्नान करके इसे स्वास्थ्य और शक्ति प्रदान करे।

"आत्मा के अशौच वेदों के अध्ययन, और पावन-यज्ञों और ईश्वर-प्रार्थनाओं आदि से दूर होते हैं।

"और, जैसा कि महर्षि मनु ने कहा है, ब्राह्मण सब सांसारिक वासनाओं को छोड़ देने से शुद्ध होता है।"

मिलापवाले तंबू में प्रवेश करने के पहले लेवियों को मदिरा-पान का निषेध—लैव्य व्यवस्था, अध्याय १०

"फिर यहोवह ने हारून से कहा कि जब-जब तू या तेरे पुत्र मिलापवाले तंबू में आवें, तब-तब तुम में से कोई न तो दाख-मधु पिए हो और न किसी प्रकार का मद्य, नहीं तो मर जाओगे। तुम्हारी पीढ़ी-पीढ़ी में यह विधि ठहरी रहे।

देवालय में प्रवेश करने के पहले ब्राह्मणों के लिये मदिरा का निषेध। वेद ('ब्राह्मणों' अर्थात् व्यवस्थाओं की पुस्तक से संग्रह)—

प्रायश्चित्त की बलि चढ़ाने के लिये देवालय में जगत्-स्वामी की विभूति के अभिमुख होने के पहले ऋत्विजों को मादक द्रव्यों और विषय-भोगों से निवृत्त होना चाहिए।

"मदिरा से उन्माद पैदा

"इसका कारण यह है कि तुम पवित्र-अपवित्र में और शुद्ध-अशुद्ध में अंतर कर सको।

"और इसरायल-वंशियों को वे सब विधियाँ सिखा सको, जो मैंने उनको मूसा से सुनवा दी हैं।"

होता है, कर्तव्य छूट जाता है और प्रार्थना भ्रष्ट हो जाती है।

"मदिरा-पान से विषाक्त मुख से वेदों की ईश्वरीय आज्ञाओं का उच्चारण न होना चाहिए।"

मदिरा-पान सब पापों से बढ़कर है; क्योंकि यह विवेक को, जो स्वयं ब्रह्म से निकली हुई दिव्य-किरण है, अंधकार में छिपा देता है।

"जिन विषय-भोगों की मनुष्यों और भक्तों को आज्ञा है, वे पुरोहितों के लिये, जब वे जगन्नियंता के चिंतन के लिये अपने को तैयार कर रहे हों, निषिद्ध हैं।"

"पवित्र आत्मा और शुद्ध शरीर के साथ ही ब्राह्मण यज्ञ-वेदी के पास आ सकता है।"

इस बात का विचार करके कि सब पूर्वीय धर्म विकृत-पान (मद्य) का निषेध करने में एकमत हैं, ऊपर के वचनों में, शायद कोई विशेष महत्त्व नहीं दिखाई देगा।

याजकों के लिये मदिरा का निषेध करने, और विशेषतः यज्ञ करते समय काम-विलास को निषिद्ध ठहराने में अपनी धार्मिक व्यवस्था की पूर्णता स्थापित करने के लिये भारत की प्राचीनता आगे आती है।

इस पिछले निषेध को बाइबिल ने ग्रहण नहीं किया। पाप की शिक्षाएँ देने के अतिरिक्त यह तो नीति और अत्याचार के प्रश्नों में बहुत कम उलझती है।

वेद का यह अवतरण एक बार फिर इस बात को दिखलाता है कि इबरानी धर्म-पुस्तकें आदर्श की उच्चता और विचार की महत्ता में हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों से कितनी निकृष्ट हैं।

याजकों का विवाह—वे दोष जो याजकवर्ग से निकाल देते हैं—लैव्य व्यवस्था, अध्याय २१—

"याजक कुमारी से विवाह करे। वह विधवा से, अथवा, त्यागी हुई, अथवा भ्रष्ट अथवा वेश्या से विवाह न करे; किंतु वह अपने ही लोगों के बीच में की किसी कुआरी कन्या को ब्याहे।"

"वह अपने वर्ण के रुधिर को साधारण लोगों के रुधिर में न मिलावे; क्योंकि मैं उसको पवित्र करनेवाला यहोवह हूँ।"

"फिर यहोवह ने मूसा से कहा, हारून को मेरा यह वचन सुना कि तेरे वंश के और तेरी जाति के जिस व्यक्ति के शरीर में कोई दोष हो, वह अपने परमेश्वर को बलिदान न चढ़ावे।

पौराणिक संस्थाओं, और वेदों के अनुसार याजकों के विवाह—वेद (विधियों) से संग्रह—

ब्राह्मण विद्या की समाप्ति और समावर्तन हो चुकने के उपरांत एक निर्दोष ब्राह्मण-कुमारी से विवाह करे।

"वह विधवा से अथवा दुर्वृत्त अथवा अस्वस्थ कन्या से, या ऐसे कुल की लड़की से, जो वेदाध्ययन से विमुख हो, विवाह न करे।"

"जिसे वह अपनी पत्नी बनाने के लिये चुने, वह रुचिर और उत्तम शरीरवाली हो, उसकी गति विनीत और लज्जाशील हो, उसका चेहरा कोमल और हँसता हुआ हो, उसके मुख का किसी ने चुंबन न किया हो; उसका कंठ-स्वर

"यदि वह अंधा, अथवा लँगड़ा है, अथवा उसकी नाक बहुत छोटी, अथवा टेढ़ी, अथवा बहुत बड़ी है, अथवा उसका हाथ या पैर टूटा हुआ है।"

"यदि वह कुबड़ा, अथवा चिपड़ा हो, अथवा उसकी आँख पर बतौरी हो, यदि उसके असाध्य दाद, या खुजली, अथवा अंत्रवृद्धि हो, तो वह वेदी के पास न जावे।"

"हारून याजक के वंश का कोई भी मनुष्य जिसमें कोई दोष हो, पवित्र किए हुए भोजन के पास न जावे और न परमेश्वर को हव्य ही चढ़ावे।"

"हाँ, वह धर्म-मंदिर में चढ़ाए हुए भोजन को खावे-तो-खावे।

"किंतु वह दोष रखने के कारण न तो बीचवाले परदे में प्रवेश करे और न वेदी के पास जावे, और मेरे धर्म-मंदिर को अपवित्र न करे; क्योंकि मैं याजकों को पवित्र करनेवाला परमेश्वर हूँ।"

दत्यह (datyhoua) के सदृश सुरीला और प्यारा हो, उसकी आँखों से प्रेममयी निष्कपटता टपकती हो; क्योंकि इसी प्रकार पत्नी अपने घर को सुख और आनंद से भरा-पूरा करती, और समृद्धिशाली बनाती है।"

"वह अपवित्र और अशिष्ट कुल की स्त्रियों से बचता रहे—उनका स्पर्श उसे अपवित्र कर देता है, और इस प्रकार उसके कुल का अपकर्ष हो जाता है।"

"जिस स्त्री की वाणी, विचार और शरीर पवित्र हैं, वह दुःख को दूर करनेवाली एक स्वर्गीय मरहम है।"

"वह पुरुष सुखी होगा, जिस की पसंद की हुई स्त्री की सभी भद्र पुरुष प्रशंसा करते हैं।'

मनु, अध्याय ३—

"द्विजों के लिये अपने ही वर्ण की कन्या से विवाह का विधान है।"

"उसे ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिए, जो किसी अंग से व्यंग न हो, सौम्य नामवाली

हो, हंस और हाथी की चाल-वाली हो, जिसका शरीर सूक्ष्म लोमों से ढका हो, जिसके केश सूक्ष्म, दाँत छोटे, और अंग सुंदर और चारु हों।"

"जो कुल कर्मों (संस्कारों तथा वैदिक कर्मों) से हीन है, जिसमें नर-संतान उत्पन्न न होती हो, जिसमें वेद का अध्ययन नहीं है, जिसमें अशुद्ध करनेवाली व्याधियाँ हैं, उस कुल की कन्या से विवाह न करे।"

रामसरियर (टीकाएँ)—

"जो ब्राह्मण किसी ऐसी स्त्री से विवाह करता है, जो अक्षत नहीं है, विधवा है, या पति-परित्यक्ता है, अथवा जिसे लोग पवित्र नहीं कहते, उसे यज्ञ कराने की आज्ञा नहीं मिल सकती; क्योंकि वह अशुद्ध है और कोई भी वस्तु उसको उसके अशौच से मुक्त नहीं कर सकती।"

"महर्षि मनु कहते हैं कि न इतिहास में और न पुराण ही में यह कहीं लिखा है कि ब्राह्मण ने कभी, यहाँ तक कि बलात् भी, निचले वर्ण की कन्या से विवाह किया हो।

"वेद कहता है—ब्राह्मण ब्राह्मणी से विवाह करे।"

"इसलिये यह लिखा है कि ब्राह्मण नीच प्रभाव अथवा हीन वर्ण की स्त्री न ले।"

महर्षि मनु फिर कहते हैं—

"जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्री से समागम करता है, वह स्वर्ग से निकाल दिया जायगा।

"जिस पुरुष के ओष्ठ शूद्रा के अधरों से अपवित्र हो चुके हैं, और जिसने उसके अपवित्र श्वास को सूँघा है, धर्म उसके लिये किसी भी शुद्धि का विधान नहीं करता।"

वे दोष, जिनके कारण ब्राह्मण याजकों को यज्ञ कराने का अधिकार नहीं रहता—(रामसरियर की टीकाएँ)—

"जिस ब्राह्मण को कुष्ठ, श्लीपद, अथवा खुजली आदि कोई अशुचिकर रोग हो, वह चढ़ावा चढ़ाने के लिये मंदिर में न जाय; क्योंकि वह अपवित्र है और परमेश्वर उसके नैवेद्य को स्वीकार नहीं करता।

"जब तक उसको रोग रहे, और उसके दस दिन उपरांत तक वह अशुद्ध रहे, और वह मंदिर के पवित्र तालाब में स्नान कर के और शुद्धि के जल के तीन प्रोक्षणों से अपने को पवित्र करे।"

"यदि उसकी व्याधि असाध्य है, तो वह यज्ञ से सदा के लिये निकाल दिया जायगा; परंतु उसे चावल, मधु, घी, अन्न, और यज्ञार्थ मारे हुए पशुओं की बलि का भाग मिलेगा। क्योंकि महर्षि मनु ने कहा है कि जो ब्राह्मण असंस्कृत भोजन पर जीता है, वह अपने सभी अगले जन्मों में आक्रुष्ट होता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की धर्म-पुस्तकें और धर्म-पंडित यज्ञ और मंदिर में केवल उन्हीं दुर्बल ब्राह्मणों को आने से रोकते हैं, जिनको कोई छूत का रोग हो, और वह भी केवल उनके नीरोग और शुद्ध हो जाने तक।

इस सिद्धांत की नक़ल करते हुए बाइबिल ने इसके प्रयोग में अत्युक्ति से काम लिया है; और, सामान्यतः उसमें उपहास्य की सीमा तक पहुँची हुई विचार की संकीर्णता पाई जाती है।

मूसा के इस यहोवह को हम क्या समझें जो अपने मंदिर से उन सबको निकाल देता है जो भिनगे हैं! या जो दुर्भाग्य से बहुत बड़ी, अथवा बहुत छोटी, अथवा टेढ़ी नाकवाले उत्पन्न हुए हैं!

इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धा के प्रकाश में उन विषादपूर्ण विचित्र बातों का रहस्य पाया जायगा, जो ग्रंथकार के विचार की संकीर्णता और क्षुद्र बुद्धि का इतना भारी प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

भिनगी आँख अथवा भद्दी नाक को धार्मिक अयोग्यता समझना कैसी विचित्र बात है !

मिसर के मूढ़ विश्वासों को सशपथ छोड़ देना और मोलोच-(Moloch) के अनुयायियों का उन्मूलन करना प्रयोजनीय था !

किंतु हमारे लिये इबरानी और हिंदू आचार-व्यवहारों के बीच की इन तुलनाओं से निवृत्त होने का यह अच्छा समय है, इसलिये नहीं कि हेतु का अभाव है, अथवा मूल वचनों से सहायता नहीं मिलती, प्रत्युत इसलिये कि इस ग्रंथ को, दूसरे आवश्यक विषयों को छोड़कर, इन बातों से लादना निरर्थक जान पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, हमारे प्रतिपादित सिद्धांत का प्रमाण जो सामाजिक यहूदी-धर्म, वस्तुतः दूसरी सभी प्राचीन सभ्यताओं के सदृश्य ही, मिश्र के द्वारा पहुँचनेवाला हिंदू-उद्भव-मात्र है, हमें इतना पर्याप्त रूप से प्रतिष्ठित जान पड़ता है कि अब हम अपने कार्यक्रम के अधिक मनोरंजक भाग को हाथ में लेना ठीक समझते हैं।

इस ग्रंथ के प्रारंभिक भागों के साधारण पारायण के उपरांत, और ऐसे निर्णायक संपर्कों के होते, सारी प्राचीनता पर प्राक्कालीन पूर्वी समाजों के प्रभावों से इसलिये इनकार करना कि उन सादृश्यों का कारण केवल अंध-संयोग को ही ठहराया जाय, क्या प्रमाण से साफ़ इनकार करना नहीं ?

परंतु हमारे विपक्षियों के पास इन सचाइयों और उनसे निकलनेवाले परिणामों को उलटाने के लिये केवल दो मार्ग ही रह जाते हैं।

पहला मार्ग यह है कि प्राचीन जातियों पर पड़नेवाले जिस प्रभाव का संबंध हमने भारत से ठहराया है, उसे मूसा और बाइबिल के ईश्वरीय ज्ञान से उत्पन्न हुआ बताया जाय।

दूसरा यह है कि हिंदुओं की धर्म-पुस्तकों की प्रामाणिकता में संदेह किया जाय, अथवा कम-से-कम उन्हें मूसा के पीछे की बनी हुई ठहराया जाय।

ये दोनों आपत्तियाँ, जिन्हें मैं पहले ही सुन चुका हूँ, देखने में ही भारी जान पड़ती है; परंतु उचित यही है कि उनकी परीक्षा की जाय। यद्यपि इस ग्रंथ के प्रारंभिक पृष्ठ उनको काटने के लिये लिखे गए थे, पर यह सिद्ध करना बाक़ी रहता है कि वे एक दार्शनिक और ऐतिहासिक काल-विसंवाद का परिणाम-मात्र हैं।

यह प्रश्न जब एक बार ठीक हो गया, तब हिंदुओं की "सृष्टि-उत्पत्ति" के वे श्रेष्ठ ऐतिह्य और भी चमक उठेंगे, जिन पर हम पहुँचे हैं, और जिनको हम विशेष रूप से उन वाद-प्रतिवादों के अंधकार में छिपने से बचाने के उत्सुक हैं, जो केवल उनकी मनोरंजकता को ही घटाने का काम करेंगे।

आठवाँ अध्याय

प्राचीन जगत् पर बाइबिल के प्रभाव की असंभावना

कुछ कैथोलिक लेखकों ने सुगम चित्तोत्साह के साथ मूसा को प्राचीन समाजों का उपदेष्टा बनाने का यत्न किया है।

मैं समझता हूँ, विचारशील मनुष्य, जिन्होंने प्राचीनता में गहरी डुबकी लगाई है, इस मत के होंगे कि यह पक्ष इस सम्मान का पात्र नहीं कि इस पर विमर्श किया जाय; फिर भी ऐसे अभियोग से आपत्ति का आभास उत्पन्न हो सकता है।

इसलिये आओ हम देखें कि इसका मूल्य क्या है।

यह बात मेरी समझ में आ सकती है कि एक बड़ी जाति, रोमन-राज्य, विजय द्वारा अपनी व्यवस्थाओं के अधीन किए हुए लोगों पर अपना प्रभाव डाल सकती है।

यह बात मेरी समझ में आसकती है कि एक छोटी जाति, उदाहरणार्थ एथेंस के अधिवासी, साहित्यिक, दार्शनिक, नैतिक तथा औद्योगिक प्रतिभा के असाधारण विकास से, प्रगति के उस राज-पथ पर जो विश्व जगत् को उर्वर बनाता है, और किसी जातीयता का विचार नहीं करता, अगली पीढ़ियों के लिये आदर्श बन सकती है। पेरिक्लीस (Pericles) और ऑगस्टस (Augustus) के युग सभ्य-संसार के दृश्य से मिटाए ही जा सकते हैं।

क्या यहूदिया (Judea) इसी प्रकार के भूतकाल का दावा कर सकता है ?

उसके नाम के प्रभाव को दूर-दूर तक फैलानेवाली उसकी बड़ी-बड़ी विजय कहाँ हैं ?

उसके औद्योगिक, दार्शनिक और साहित्यिक स्मृति-स्तंभ कहाँ हैं ?

दासता की उत्पत्ति, मिसर के पतितों की संतान, इबरानी लोग चिर काल तक मरुभूमि में निष्कासितों के रूप में घूमने, और अपनी पड़ोसी जातियों द्वारा, जो न उनसे संधि करतीं और न अपने देशों में से उन्हें रास्ता ही देती थीं, निषिद्ध ठहराए जाने के उपरांत फ़िलिस्तीन (Palestine) की छोटी-छोटी उपजातियों को, क्षुधार्त नर-पशुओं के समूह के सदृश, जलाते, लूटते और मारते अंत को एक स्थान में बैठ गए ।

ये अमलक लोग (Amalekites) कौन हैं ? ये कनानी कौन हैं ? ये मिद्यानी कौन हैं ? ये एमोरी कौन हैं ? इत्यादि, इत्यादि ।

उनकी ऐसी विजयें !

लुटेरों की, व्यवसायशून्य चोरों की किसी पापिष्ठ सरणि ने अपने विध्वंस के मार्ग को रुधिर से इतना कभी नहीं भरा । यह सत्य है कि ये दौरात्म्य और अपहरण यहोवह के नाम से किए गए थे, जिसे आज भी अनेक लोग पर्याप्त हेतु समझते हैं ।......

वास्तव में, इस शांति और प्रेम के परमेश्वर को कभी अपने उपासक पर्याप्त रूप से मारात्मक और अपना रक्त-कुंड पर्याप्त रीति से परिपूर्ण नहीं देख पड़ा । यदि कहीं कोई अभागी माताएँ और उनके दूध-पीते बच्चे मारने से छूट गए, तो उसके क्रोध ने इबरानियों के विरुद्ध, उसकी आज्ञाओं का पूर्ण रूप से पालन न करने के कारण, आकाश को भयानक धमकियों के साथ थर्रा दिया, और एकदम सभी बूढ़ी स्त्रियों और निरर्थक बच्चों को मरवा डाला; केवल कुँआरी लड़कियाँ ही रहने दीं । क्या यह पर्याप्त रूप से नैतिक और विलक्षण रूप से पर्याप्त लंपट है ? मैंने अनेक बार अपने से प्रश्न किया है कि ईश्वरीय ज्ञान के पक्षपातियों ने क़ुरान को क्यों अस्वीकार किया; परंतु यह सत्य हैं कि उनको वहाँ मनुष्यता की ऐसी शिक्षाएँ मिलेंगी,

जिनको इबरानी गार्गन (Gorgon) ने जान बूझकर छोड़ दिया है।

सौभाग्य से संहार और दुष्टता के ये दृश्य यहूदिया की संकीर्ण सीमाओं के बाहर नहीं गए, और मिसर, असिरिया तथा बेबीलोन के प्राचीन स्वामी इन पागलों को, जो न कभी शांति से रह सकते और न अपने लूट-मार के स्वभाव को छोड़ सकते थे, दंडित करने के लिये कभी-कभी शस्त्र-ग्रहण करते रहते थे।

इसलिये प्राचीनता की जातियों के बीच दबी हुई, और अंत को रोमन-विजय में लीन हो जानेवाली, यह क्षुद्र जाति ऐसे उदाहरणों से महान् गौरव नहीं प्राप्त कर सकी।

यदि हम साहित्य, दर्शन, कला-कौशल और विज्ञान में उनकी उन्नति के परिमाण पर विचार करें, तो हमें यह स्वीकार करने को विवश होना पड़ता है (और जो हमारी भूल दिखलावेगा, उसे हम आशीर्वाद देंगे) कि हमें वहाँ अतीव घोर अंधकार और अत्यंत अगाध अविद्या के सिवा और कुछ भी नहीं मिलता।

संसार की किसी भी दूसरी जाति ने इनके समान थोड़ा काम, थोड़ा विचार और थोड़ा उत्पन्न नहीं किया।......

यद्यपि मिसर की निर्मित वस्तुएँ सौंदर्य और श्रेष्ठता में एथेंस की वस्तुओं के समान प्रशंसा की पात्र नहीं, तथापि उसके विशाल शिल्प के प्रकांड परिमाण के पीछे हम पागल-से हो रहे हैं।

समग्र पूर्व की कला की माता हिंदू-कला है, जो अपनी उच्चता और गौरव के लिये विख्यात है।

आधुनिक अन्वेषण ने बेबीलोन और ननवा की छिपी हुई पत्थर की प्रतिमाओं को खोदकर निकाला है।

यहूदिया के शिल्प-संबंधी खँडहर कौन-से हैं ?

हमें इसका उत्तर मालूम है।

यहूदियों के पास कोई शिल्प-कला न थी। बाइबिल और यहोवह

को समर्पित मंदिर का वर्णन पढ़िए। यहूदियों की कोई कविता—कोई साहित्य न था। बाइबिल को पढ़िए।

यहूदियों के पास नैतिक और दार्शनिक कोई भी विद्या न थी। बाइबिल को पढ़िए।

जो कुछ है बाइबिल-ही-बाइबिल है। प्रत्येक चीज़ उसी पुस्तक में है।

अस्तु, मैं सरलता से कहता हूँ कि इससे मुझे संतोष नहीं होता, और यदि मुझे कुछ कहना आवश्यक ही है, तो मैं कहता हूँ कि अफ़लातूँ या व्यास के ग्रंथ के एक अत्यंत क्षुद्र पृष्ठ से, सोफ़ोक्लीस (Sophocles) या यूरीपिडीज़ के अत्यंत सुगम करुणारस-प्रधान नाटक तथा शकुंतला के एक दृश्य से, फाईडियस (Phydias) की बनाई मूर्ति या दहुत (Dahoutx) की प्रतिमा की एक टूटी हुई भुजा से मैं कहीं अधिक शिक्षा ग्रहण कर सकता।

क्या तब हम साफ़ नहीं देखते कि इन इसरायलवंशियों को, जो दासता के कारण नर-पशु बन चुके थे, जो मरुस्थली में अपने भ्रमणों के ऐतिह्यों को स्मरण रक्खे हुए थे, जो निष्फल और निरंकुश लेवी-धर्म द्वारा पीड़ित थे, इसके अतिरिक्त, जिनको पड़ोसी जातियाँ निरंतर दासता के बधन में डालती रहती थीं, बड़ी-बड़ी बातों के लिये रुचि पैदा करने का विचार न था, और न उसके लिये समय हो? इसलिये जब हम यहूदी सभ्यता की बात करते हैं, तब केवल एक शून्य शब्द का उच्चारण करते हैं।

मिसर, ईरान और भारत के किन सादृश्यों में हम यहूदियों के प्रभाव को देख सकते हैं? यह उन देशों में केवल उनके अति अशिष्ट कुसंस्कारों में ही मिलता है।

मिसर में और सारे पूर्व में उच्च श्रेणियाँ विद्याओं के अध्ययन में, उन सनातन सचाइयों के अनुसंधान में अपना जीवन लगाती थीं, जिनका बीज मनुष्य-जाति के अंतःकरण में गड़ा हुआ है। वे एक

सर्वशक्तिमान्, रक्षक, परम मंगलकारी, पुण्य और बल के पुंज परमेश्वर के एकत्व में विश्वास रखती थीं; पशुओं की बलि, अन्न और रोटी के हव्य, जो यहूदी धर्म का एक बड़ा भाग हैं, वे दासों और अज्ञानियों के लिये समझती थीं।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि इबरानियों ने केवल अपने नीच ऐतिह्यों को जारी रखने से बढ़कर और कुछ नहीं किया। उनसे प्राचीन समयों का आरंभिक भाव निकालना बड़ा ही असंगत होगा।

जिस समय ये दास मिसर से भागकर या निकाले जाकर मरु-स्थली में फिर रहे थे, उस समय क्या मिसरी और हिंदू-समाज अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं थे ?

वैदिक भारत चिरकाल से अपना अंतिम शब्द कह चुका था। उसकी प्रभा अभी फीकी पड़ने लगी थी।

मिसर याजकीय जुए को फेककर अपने को राजों के चंगुल में डालने की तैयारी कर रहा था—यद्यपि वह अभी तक अपने तई उनके चंगुल में डाल नहीं चुका था।

यहूदिया (Judea) संभवतः वे रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार और मत दूसरों को कैसे सिखला सकता था, जिनको स्वयं उसने ठीक उस समय ग्रहण किया, जब कि इन रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों और मतों को दूसरे लोग, जिनके पास ये पहले से ही थे, रूपांतरित और परिवर्तित कर रहे थे ? अपने अग्रगामियों को वह संभवतः ये कैसे सिखला सकता था ?

क्या इबरानी लोग प्राचीन जगत् में विशुद्ध ईश्वरकर्तृक शासन के बहुत ही पिछले प्रतिनिधि नहीं थे ? क्या वे अंतिम लोग नहीं थे, जिन्होंने याजकों और लेवियों के उन वर्गों को बनाए रक्खा, जो कि मिसर के पुरोहितों के नमूने पर, लोगों पर अत्यंत घोर कुसंस्कारों और रहस्यों द्वारा शासन करते थे, और उन राजों को भी गद्दी से

उतार डालने में संकोच नहीं करते थे, जिनको उनकी इच्छा का दास बनना स्वीकार न होता था ?

इसरायल-वंशी प्राचीन जातियों में सबसे अधिक तिरस्कृत थे। पड़ोसी जातियों ने उनकी नीच उत्पत्ति को कभी नहीं भुलाया, और इसलिये जब उन्हें दासों का प्रयोजन होता था तो वे जानती थीं कि यहूदिया की भूमि पर आक्रमण करके हम उन्हें प्राप्त कर सकती हैं।

इस बात को सिद्ध करने के लिये, जैसा कि हम अनेक बार कह चुके हैं कि बाइबिल कोई मौलिक पुस्तक नहीं, केवल ध्यानपूर्वक पारायण का प्रयोजन है। जिन रीति-रिवाजों का यह विधान करती है, उनमें से एक भी इसका अपना नहीं। वे सब मिसर और पूर्व की अधिक प्राचीन सभ्यता में पाए जाते हैं।

क्या कोई यह कह सकता है कि इस पुस्तक ने संसार में पशु-बलि, उदाहरणार्थ गव्य होम जारी किया ? इस बात को भूल जाना कि ये बलिदान, मूसा के इनका विधान करने के बहुत काल पहले, मिसर, फ़ारस और भारत में प्रचलित थे, इतिहास के मुँह पर झूठ बोलना होगा।

एशियावासियों में स्नान द्वारा शुद्ध करने की रीति इतनी पुरानी है, जितना कि उनका जगत् और इसमें नवप्रवर्तन अभी तक असंभव है।

फिर बाइबिल उन प्राचीन धर्म-पुस्तकों का, जिनको मूसा ने शायद फ़िरऔन के दरबार में देखा होगा, इतना व्यक्त संक्षेप है कि यह निरंतर ऐसे वचन नक़ल करती है, जिनकी अपने में तो कोई व्याख्या नहीं हो सकती, परंतु जो मनु और वेदों की उन पुस्तकों में पूरे पाए जाते हैं, जिनकी परीक्षा करना यह भूल गई है।

इस प्रकार अनवरत रूप से हमें यह निषेध मिलता है—

"पुरोहित किसी मृत चीज़ को, किसी रेंगनेवाली चीज़ को और

किसी अपवित्र ठहराई हुई चीज़ को स्पर्श न करे; क्योंकि वह अपवित्र हो जायगा।" अपवित्र चीज़ों की, उन सब चीज़ों की जिनको अशौच के डर से छूने का उसे निषेध है, विशेष सूची कहाँ है?

यह बाइबिल में मौजूद नहीं। इसमें इधर-उधर पुरुष की, स्त्री की, और विशेष पशुओं की अशुचिताओं का उल्लेख है; किंतु उसका यह सारा कथन, दाएँ और बाएँ, खेदजनक पुनरुक्तियों की गडबड़ से भरा पड़ा है, जिससे उस कल्पना को बाहर निकालना, जिसने इस विषय की आज्ञा दी, असंभव है।

इसके विपरीत हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों में हमें अशौच की सारी अवस्थाओं, उसको पैदा करनेवाले विषयों, उसके प्रायश्चित्त की रीतियों, और ऐसी व्यवस्थाओं को सुझानेवाली कल्पना की एक पूर्ण तथा विशेष सूची मिलती है।

तब इन दो में से कौन पहले का है?

क्या इन विषयों पर यह भारत का सत्ताहेतु उसका विस्तृत सिद्धांत है? क्या, इसके विपरीत, ये बाइबिल के वे खंड हैं, जो जल्दी में विना किसी संबंध और क्रम के लिखे गए हैं, और जिनका समाधान केवल उन अधिक प्राचीन समाजों के पास लौटकर जाने से ही हो सकता है, जो हमें उनको कुंजी प्रदान करते हैं?

इसमें प्रश्न का कोई गुंजाइश नहीं।

क्या कोई कह सकता है कि परमात्मा के एकत्व की महान् कल्पना सबसे पहले बाइबिल ने ही प्रस्तुत की थी, इसके पहले कोई भी इसे रहस्यों और मूढ़-विश्वासों से अलग करने में समर्थ नहीं हुआ था?

इसका उत्तर हम यह देते हैं कि मूसा ने उस प्राथमिक कल्पना को, जो उसने मिसर की देवोत्पत्ति से ली थी, केवल कुरूप बना दिया है, और उसका क्रोधी, रक्तप्रिय और जातियों का विध्वंसक यहोवह, उत्कर्ष होना तो दूर रहा, प्राथमिक विश्वास का एक विपर्यय-मात्र है।

आपको शीघ्र ही मालूम हो जायगा कि जगन्नियंता परमेश्वर के विषय में भारत की ऐसी कल्पना न थी ।

मूसा के परमेश्वर की अपेक्षा मेरे मन में यूनानी देवता जूपीटर के प्रति बहुत अधिक सम्मान है; क्योंकि यदि उसके दिए हुए कुछ उदाहरण विशुद्ध नीति के नहीं, तो कम-से-कम वह अपनी वेदी को नर-रक्त की धाराओं में तो मग्न नहीं करता ।

क्या यह कहा जा सकता है कि मूसा ने हमारे लिये मनुष्य की उत्पत्ति और जल-विप्लव के ऐतिह्य सुरक्षित रक्खे ?

हम यह सिद्ध करेंगे कि उसने उनको केवल हास्यजनक कल्पित कथाओं के अंधकार में ही छिपाने का काम किया है, और वास्तव में उसने जिस किसी चीज़ को छुआ है, उसे इसी प्रकार तमसावृत्त करने में कसर नहीं छोड़ी ।

हम आरब्योपन्यास (अलिफ़लैला) की उस कहानी के विषय में क्या कहें, जो हमारे पहले माता-पिता के स्वर्ग से निकाले जाने, और उस समय से मनुष्य-समाज को पीड़ित करनेवाली सारी व्याधियों का कारण एक सेब की चोरी को ठहराती है ?

यह स्वीकार करना पड़ता है कि मानव-बुद्धि सुगमता से ही संतुष्ट हो जाती है; परंतु ऐसी बातों में विश्वास रखते हुए मुझे यह आश्चर्य होता है कि हम उन लोगों पर, जिनका अभी तक भी जादूगरों में विश्वास है, किस मुँह से हँसी उड़ाते हैं ।

किंतु अब पर्याप्त कथन हो चुका ! हमने शायद एक ऐसे विषय को बहुत लंबा कर दिया है, जिसके केवल ऐसे लोगों में ही पक्षपोषक मिल सकते हैं जिन्होंने अपनी पताकाओं पर यह आशय, जिसे हम पहले ही अपने मार्ग में देख चुके हैं, लिखा हुआ है—मेरा इसमें इसलिये विश्वास है; क्योंकि यह असंगत है (Credo quix absurdum) ।

नवाँ अध्याय

हिंदू-धर्म-ग्रंथों की मौलिकता

सब ओर से यही कहा जायगा—"यदि तुम हमसे अपनी पद्धति का स्वीकार कराना चाहते हो, तो हमारे सामने हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों की मौलिकता सिद्ध करो।"

कुछ लोग तो यह सुहितता से कहेंगे, और कई दूसरे जाल में फँसाने के लिये।

मैं व्याख्या करता हूँ।

यदि कोई योरपियन लेखक, चीनियों अथवा जापानियों को, ईवेंगलिस्टों (बाइबिल-लेखकों) की पुस्तकों से, मूसा और बाइबिल, ईसा और उसका जीवनोद्देश्य समझाने लगे, तो इन लोगों में से तार्किक यह उत्तर देने से न रुकेंगे—"यह सब बहुत अच्छा है, परंतु इन सब लोगों और उनकी कृतियों की मौलिकता हम पर सिद्ध कीजिए; क्योंकि हम यह स्वीकार करने के लिये विवश हैं कि हमने कभी उनका ज़िक्र तक नहीं सुना। यदि आप बुद्ध या कनफ़्यूशस के विषय में कहते, तो यह बिलकुल अलग बात थी।"

हमारा देश-बंधु क्या करेगा ? केवल एक ही उदाहरण ले लीजिए, इसमें वह अमोघ रूप से इस प्रकार अपने विचार प्रकट करेगा—

"विद्वान् जापानियो और विश्रुत चीनियो, आप लोग हमारे धर्म-नियमों की पुस्तक से सुपरिचित नहीं। इसलिये सुनिए, इसकी मौलिकता को सिद्ध करने से बढ़कर और कोई चीज़ सुगम नहीं।

यह चार भिन्न-भिन्न रचयिताओं की रची हुई है।

पहले संत योहन ने लिखा है—

"कृपया ठहर जाइए, और पहले इस मनुष्य का अस्तित्व सिद्ध कीजिए, फिर उसकी पुस्तक की ओर आइए।"

"बहुत अच्छा। संत योहन खीष्ट का चुना हुआ एक धीवर था।"—

"एक और का नाम! यदि आप योहन को खीष्ट द्वारा सिद्ध करते हैं, तो पहले खीष्ट को सिद्ध कीजिए; क्योंकि हमें उसके विषय में भी कुछ ज्ञान नहीं।"

"हे चीनी महानुभाव, मैं आपकी निर्दोष युक्ति के आगे सिर झुकाता हूँ। अब सुनिए। आगस्टस के राज्य के इकतीसवें वर्ष में, एक बालक, जिसके जन्म की भविष्यद्वाणी—"

जापानी झट बोल उठता है—"परंतु बात तो सदा वही रहती है। जिस आगस्टस की बात आप कहते हैं, वह कौन है?"

"आप यह पूछा चाहते हैं कि आगस्टस कौन है? यह सीज़र का दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी—"

चीनी अपनी बारी पर बोल उठेगा—"हाँ, बस काफ़ी है। आपको नामों के लिये उन्माद है। क्या आप अपनी पुस्तक की सचाई और उसका ऐतिहासिक अस्तित्व, इन सारे सज्जनों के विना, जिनके नाम हम पहली बार अभी सुन रहे हैं, सिद्ध नहीं कर सकते?"

हमारा अभागा देश-बंधु उत्तर देगा—"शोक है, नहीं! मुझे साफ़ दिखाई दे रहा है कि जो प्रमाण आप माँगते हैं, उस तक पहुँचने के लिये मुझे आपके सम्मुख पश्चिम की प्राचीन सभ्यताओं का पूरा इतिहास रखना पड़ेगा। इससे भी बढ़कर आपको जो मुझे प्रत्येक पग और प्रत्येक नाम पर ठहराने का पागलपन है, इससे मेरा ऐसी अस्पष्ट बातों पर पहुँच जाना अवश्यंभावी है, जिनका मैं समाधान नहीं कर सकता, जैसा कि वीरों, व्यवस्थापकों और राजों के नाम, जिनके पूर्वाधिकारी मुझे मिल नहीं सकते।"

तब चीनी और जापानी क्या करेंगे ?

श्रद्धालु दल कहेगा—"आपका कथन सत्य है।"

जिन लोगों ने केवल अपना जाल फैला रक्खा है, वे अपने श्रोताओं की ओर मुँह करके कहेंगे—

"यह मनुष्य हमारे साथ केवल दिल्लगी कर रहा है। जो कुछ उसके मुख से निकल रहा है, वह सब झूठ है।"

इसलिये यह आशा न कीजिए कि मैं केवल यही कहूँगा—

"भृगुऋषि ने ही, जो पूर्व के बहुत ही पुराने युगों में हुआ है, सबसे पहले मनु के बिखरे हुए नियमों को इकट्ठा किया। मनु का पहले ही भारत में चिरकाल से भारी सम्मान चला आता था। भृगु के उपरांत नारद, जो जल-प्रलय से पहले था—" इत्यादि, इत्यादि।

अथवा इस प्रकार—

"ब्राह्मणों के अनुसार वेदों का प्रकाश कृतयुग (पहले युग), अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ में हुआ था। इन धर्म-पुस्तकों पर पहला भाष्य भृगु के समकालीन पुण्यात्मा राजा भगीरथ के समय का है", इत्यादि, इत्यादि।

यह तो उसी जाल में फँसना होगा, जिसकी मैंने धज्जियाँ उड़ाई हैं, और इस पर विशेष मनुष्य विजय-ध्वनि करने से न रुक सकेंगे।

"छिः ! छिः ! तुम अपने भृगु, अपने नारद और अपने धर्मात्मा राजा भगीरथ को लेकर हमारे साथ दिल्लगी करते हो। ये लोग, जिनके नाम तुम प्रमाण के तौर पर लेते हो, कौन हैं ?"

और, सारी गुप्त चालाकी प्रकट हो जायगी।

क्योंकि मैं अपने विपक्षियों की युक्तियों को मटियामेट कर देने के लिये उत्तर में, पत्र-संपादकों के ऐसे दो लेखों में, सारी प्राचीन सभ्यताओं के

इतिहास का क्रम (जिसके लिये अनेक पीढ़ियों के जीवन का प्रयोजन होगा) नहीं दे सकता । इसलिये, विना इस बात को स्वीकार किए कि यदि इतने लोग प्राचीन समाजों के विषय में, जो हमसे सहस्रों वर्ष पूर्व इस धरातल पर हो गए हैं, अज्ञान में हैं, तो इसमें मेरा दोष नहीं—विना इस बात को स्वीकार किए कि यदि मातृ-भाषा संस्कृत की ओर लौटने के विना ही ग्रीक और लैटिन भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं, तो यह मेरा दोष नहीं—यदि प्राचीन इतिहास, मातृ-इतिहास—अर्थात् सुदूर पूर्व के इतिहास के पास लौटने के विना ही पढ़ाया जाता है, तो इसमें मेरा दोष नहीं । इस पुस्तक को रद्दी की टोकरी में फेक दिया जायगा ।

हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों की मौलिकता के सामान्य प्रमाण—अतीव स्पष्ट प्रमाण मैंने इस पुस्तक के पहले भाग में दे दिए हैं । जिस परीक्षा में मैं लगा हुआ हूँ इसका और कोई उद्देश्य न था । मैंने ये प्रमाण इबरानी और हिंदू-समाजों के विषय में अपनी खोजों में और उनके पीछे होनेवाली तुलनाओं में भी दिए हैं ।

मैंने उन्हें संस्कृत के अनुसार भी दिया है । यह वह भाषा है, जिसमें ये पुस्तकें लिखी हुई हैं, और जो मूसा के कई शताब्दियाँ पूर्व क्या बोलने की और क्या लिखने की भाषा के रूप में पहले ही बंद हो चुकी थी ।

इसके अतिरिक्त जब हम एक देश में और एक जाति में समग्र प्राचीनता के नियम, रीति-रिवाज, आचरण, धार्मिक विचार और काव्यमय ऐतिह्य पाते हैं, तब क्या हमारा यह सम्मति रखना कि प्राचीनता ने अवश्य ही अपनी सभ्यता का वहीं से संकलन किया होगा, युक्तिसंगत नहीं ?

इस शेषोक्त युग की किसी भी एक जाति ने भारत का पूर्ण चित्र प्रतिबिंबित नहीं किया । इसलिये किसी में भी वे सारे रीति-रिवाज

न थे, जो हम फ़ारस, मिसर, यहूदिया, यूनान और रोम में इधर-उधर, दाएँ-बाएँ बिखरे हुए पाते हैं—वे रीति-रिवाज, जो अपने पूर्ण और अखंड रूप में एकमात्र भारत में ही थे।

और, यदि हम इन सबमें वह प्राक्कालीन भाषा, वह विस्मयोत्पादक भाषा और जोड़ दें, जिसने न केवल पूर्व के सारे वाक्संप्रदाय ही, प्रत्युत ग्रीक, लैटिन, स्लैव और जर्मनिक भाषाएँ भी बनाई हैं, तो हमें यह कहने का अधिकार हो जाता है कि उस मौलिकता के यहाँ प्रमाण देखिए, जिसका हम हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के लिये अभियोग करते हैं ! यदि ढूँढ सकते हो तो, सारे संसार में, चाहे किसी भी विषय के क्यों न हों, इनसे बढ़कर हृदयग्राही और प्रत्यक्ष प्रमाण ढूँढ दिखाइए, विशेषतः सहस्रों राष्ट्रविप्लवों के विध्वंस-कार्य का मुक़ाबला करने, और उतने ही उत्तर-युगों के विनाश-कार्य से बच रहने के उपरांत।

दसवाँ अध्याय

बाइबिल का अध्यात्मवाद

यह अध्याय छोटा है—इसमें केवल एक ही बात पर ध्यान दिया गया है—परंतु उन थोड़ी सी पंक्तियों से ही एक ग्रंथ उत्पन्न हो सकता है।

मूसा का इस पुस्तक में एक भी विचार, एक भी पंक्ति, एक भी शब्द ऐसा नहीं, जिसमें आत्मा के अमरत्व की ओर बहुत ही हलका, बहुत ही दूर का और बहुत ही अस्पष्ट संकेत मिलता हो। मैंने इसकी प्रत्येक दृष्टि से बार-बार परीक्षा की है, परंतु फल कुछ नहीं हुआ।

लंपटता और प्रमाथ के इस उन्मत्त आमोद-प्रमोद में आकाश को जानेवाली कोई भी पुकार हृदय को प्रफुल्लित नहीं करती, भावी जीवन की कोई भी आशाजनक रश्मि दिखाई नहीं देती। इसमें बैलों के बलिदानों, घोर मूढ़-विश्वासों और यहोवह के नाम पर बहाई जानेवाली नर-रक्त की नदियों के सिवा और कुछ भी नहीं!

ग्यारहवाँ अध्याय

बाइबिल की नीति

एक सादा-सा उदाहरण पर्याप्त है।

गणना, अध्याय ३१-

"और मूसा सेना के प्रधान अफ़सरों, पंचायतों और योधशताधीशों से, जो लड़ाई से वापस आए थे, क्रुद्ध हो गया।

"उसने उनसे कहा, तुमने स्त्रियों और बच्चों को क्यों जीता छोड़ा ?

"इसलिये बाल-बच्चों में से प्रत्येक लड़के को और सभी विवाहिता स्त्रियों को मार डालो।

"परंतु युवती लड़कियों को, जो अभी कुमारी हैं, तुम अपने लिये रख लो।"